प्रकाशक—

राजमल बड़जात्या

मंत्री—

मुनि श्रीअनन्तकीर्ति दि० जैन ग्रन्थ-माला,

कालबादेवी, बम्बई ।
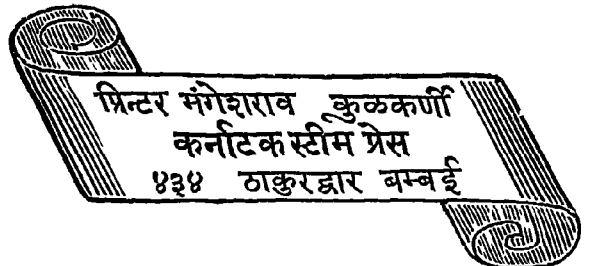
प्रस्तावना।

जब १०८ श्रीदिगम्बरजैनमुनि अनंतकीर्तिजी महाराज दक्षिणसे श्रीसम्मेद-शिखरजीकी यात्रार्थ पधारते समय बंबईमें पधारे तब उक्त मुनि महाराजकी श्रीमान् सेठ गुरुमुखरायजी सुखानन्दजीके यहाँ आहारविधि हुई। आहारके निर्विघ्न होजानेकी खुशीमें सेठ साहबने ११००) रु० इस उद्देश्यसे दानार्थ निकाले कि ये रुपये मुनि महाराजकी इच्छानुसार ही किसी धर्मकार्यमें लगाये जावें। परन्तु जैनसमाजके दुर्दैववश मुनिमहाराजका मोरेना (ग्वालियर) में अकस्मात् देहांत होगया। इसलिये मुनिमहाराज अपनी इच्छा कुछ भी प्रकट न कर सके। तब बंबईनिवासी प्रायः सभी सज्जनोंका यह विचार निश्चित हुआ कि उक्त मुनिमहाराजके नामसे एक ग्रंथमाला प्रकाशित की जाय। तदनुसार श्रीवट्टकेरआचार्यप्रणीत 'मूलाचार' नामक मुनि आचरणविषयक ग्रंथ वचनिका सहित इस ग्रंथमालाके प्रथमपुष्प स्वरूपमे प्रकाशित हुआ।

सं० १९७७ मे जब देहलीवाले सेठ हुकमचंदजी जगाधरमलजीने यात्रार्थ संघ निकाला था। तब वह संघ घूमता घूमता बंबई भी आया और संघस्थ ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी और लाला उम्मेदसिंहजी मुसद्दीलालजीकी प्रेरणासे उक्त ग्रंथमालाकी सहायता एवं उन्नतिके लिए चन्दा किया गया तो ३०१३) रुपयेका चंदा संघमेंसे हुआ। जिसमें मुख्य रकम १००१) संघनायक सेठ हुक्रमचंदजी तथा ११०१) लाला उम्मेदसिंह मुसद्दीलालजीने प्रदान की। बाकी खेरीज चन्दा हुआ। इस प्रकार संघसे सहायता मिलनेके अतिरिक्त सेठ गुरुमुखरायजी सुखानंदजीने फिरसे ११००), पंडित नाथूरामजी प्रेमी और छगनमल बाकलीवालने ५०१) सेठ नाथारंगजी गांधीने २५१) दिये इसके सिवा और भी कुछ फुटकर चन्दा हुआ। इस प्रकार कुल चंदा करीब ५५००) के होगया।

इसमें जिन उदार महाशयोंने सहायता दी है उनका मै आभार मानकर धन्यवाद देता हूँ।

* * *

ग्रंथकर्त्ता ।

इस ग्रंथके मूल कर्त्ता माथुरसंघके आचार्य अमितगति हैं । उक्त नामके दो आचार्य हुये हैं । जिनमेंसे एक तो मुंजराजाके शासनकाल विक्रमसंवत्की ११ वीं शताब्दीमें । जिन्होंने धर्मपरीक्षा, सुभापितरत्नसंदोह, पंचसंग्रह तथा इस श्रावकाचार आदि ग्रंथोंकी रचना की है । ये अमितगति माथुरसंघके आचार्य माधवसेनके शिष्य थे इसबातका उल्लेख उक्त आचार्यप्रवरने प्रायः अपने सभी ग्रंथोंमें किया है । इनकी विशेष प्रशस्तिका वर्णन सुभापितरत्नसंदोह, आदि प्रायः सभी ग्रंथोंमें है। इसलिए जिज्ञासु महोदयोंको वहांसे जानना चाहिये यहां विस्तारके भयसे और सुभापितरत्नसंदोहमें प्रशस्तिके मुद्रित होजानेसे विशेष वर्णन नहीं किया गया है ।

दूसरे अमितगति आचार्य इन्हीं आमितगतिके गुरुके गुरु आचार्य नेमिषेणके गुरु तथा देवसेनके शिष्य हुये हैं । योगसार नामक जो अमितगति कृत अध्यात्मविषयक ग्रंथ है उसके कर्त्ता शायद ये ही अमितगति हैं। क्योंकि योगसारकी शब्दार्थरचना तथा धर्मपरीक्षादि ग्रंथोंकी रचनामें विभिन्नताके अतिरिक्त एक पुष्ट प्रमाण यह भी है कि धर्मपरीक्षादि ग्रंथोंमें माधवसेनके शिष्य अमितगतिने अपने नामका उल्लेख प्रायः सभी अध्यायों परिच्छेदोंके अन्तमे अन्य शब्दोंके विशेपणरूपमें किया है। परन्तु योगसारके किसी अधिकारमें ऐसा नहीं है, सिर्फ एक अंतिम श्लोकमें अपना नाम स्पष्ट प्रकट कियाहै,—जैसेः—

> दृष्ट्वा सर्वं गगननगरस्वप्नमायोपमानं
> निःसंगात्मामितगतिरिदं प्राभृतं योगसारम् ।
> ब्रह्मप्राप्त्या परमकृत स्वेषु चात्मप्रतिष्ठं
> नित्यानंदं गलितकलिलं सूक्ष्ममत्यक्षलक्ष्यम् ॥

इसके अतिरिक्त धर्मपरीक्षादि सभी ग्रंथोंमें अमितगतिने अपने गुरुका नाम स्मरण किया है परन्तु योगसारमें नहीं । इसलिये योगसारके कर्ता देवसेनके शिष्य आमितगति ही होने चाहिये ।

भापाटीकाकार ।

इस ग्रंथकी हिन्दीभापाटीकाके कर्त्ता पंडित श्री भागचन्दजी हैं। आप ईसागढ़ जिला ग्वालियरके रहनेवाले ओसवाल जैन थे। परन्तु आप दिगम्बर जैनधर्मके ही कट्टर अनुयायी थे। आप वीसवीं शताब्दीके अच्छे गण्यमान्य जैनविद्वानोंमेसे हैं। आप संस्कृत एवं हिन्दीभापाके प्रतिभाशाली विद्वान् एवं कवि थे। संस्कृतमे आपका बनाया हुआ महावीराष्टक स्तोत्र है। जो सर्वत्र प्रचलित है। आपने अमितगतिश्रावकाचार, उपदेशसिद्धांतरत्नमाला, प्रमाणपरीक्षा, नेमिनाथपुराण और ज्ञानसूर्योदयनाटक इन ग्रंथोंकी भापा वचनिका की है। और उत्तमोत्तम अनेक भावरसपूर्ण पद भजन बनाये हैं। जिनका संग्रह छप भी चुका है। आप प्रतिभाशाली, प्रौढ, धार्मिष्ठ एवं अनुभवी विद्वान् थे।

हिन्दीभापा ।

इस ग्रंथकी हिन्दी भापा जैसी थी वैसी ही रक्खी गई है। नवीन बोलचालकी हिन्दीमें परिवर्त्तित नहीं की गई है क्योंकि भापा परिवर्त्तन करदेनेसे भापाटीकाकारकी कृतिका ज्योंका त्यों आस्वादन नहीं होता और स्वाध्यायप्रेमी सज्जनोंको यथापूर्व भापासे ही विशेप आनन्द होताहै।

निवेदक,
राजमल बड़जात्या,
मंत्री
मुनि श्रीअनंतकीर्त्ति दि० जैन ग्रंथ माला।

आपाढ शुक्ला अष्टमी
वि० संवत् १९७९

श्रीवीतरागाय नमो नमः ॥

श्री अमितगतिश्रावकाचार।

(पंडित भागचंद्रजीकृत वचनिकासहित)

दोहा।

सिद्धारथ प्रियकारिणी नंदन वीर जिनेश।
शिवकर वंदूं अमितगति कर्त्ता वृप उपदेश ॥ १ ॥

पंचपरमेष्टीकी स्तुति

(गीता छंद)

मनुज नाग सुरेन्द्र जाके उपरि छत्रत्रय धरे,
कल्यानपंचकमोदमाला पाय भवभ्रमतम हरे।
दर्शन अनंत अनंत ज्ञान अनंत सुख वीरज भरे,
जयवंत ते अरहंत शिवतियकंत मो उर संचरे ॥ १ ॥

जिन परमध्यान कृशानुवान सुतान तुरत जलादये,
युत मान जन्म जरा मरण मय त्रिपुर फेर नहीं भये।
अविचल शिवालय धाम पायो स्वगुणतैं न चलैं कदा
ते सिद्धप्रभु अविरुद्ध मेरे शुद्ध ज्ञान करो सदा ॥ २ ॥

---

(१) या दोहाके तीन अर्थ हैं।

जे पंचविध आचार निर्मल पंच अग्नि सु साधते,
पुनि द्वादशांग समुद्र अवगाहत सकल भ्रम बाधते ।
वर सूरि संत महंत विधिगण हरणको अतिदक्ष हैं,
ते मोक्षलक्ष्मी देहु हमकौं जहां नांहि विपक्ष हैं ॥ ३ ॥

जो घोर भव कानन कुअटवी पापपंचानन जहां,
तीक्ष्ण सकलजन दुःखकारी जासकौ नखगण महा ।
तहं भ्रमत भूले जीवकौं शिवमग बतावैं जे सदा,
तिन उपाध्याय मुनींद्रके चरणारविंद नमूं सदा ॥ ४ ॥

विन संग उग्र अभंग तपतैं अंगमें अति खीन हैं,
नहिं हीन ज्ञानानंद ध्यावत धर्मशुक्ल प्रवीन हैं ।
अतितपोकमलाकलित भासुर सिद्धपद साधन करैं
ते साधु जयवंतो सदा जे जगतके पातिक हरैं ॥ ५ ॥

दोहा ।

जिनवर सिद्धाचार्य पुन उपाध्याय मुनिराय ।
नमस्कार गुरु पंचकौं होउ सदा सुखदाय ॥ १ ॥
जयवंतो जिनधर्म सो वीतरागपरिनाम ।
कुगतिपाततैं जीवकौं काढि धरै शिवधाम ॥ २ ॥
वंदूं पुन जिनवचनकौं जाकै स्यात्पद केतु ।
स्वपर प्रकासै भ्रम हरै सबजगकौं सुख हेतु ॥ ३ ॥
भूषन वसन गदादिविन जिनप्रतिमा अभिराम ।
तीन लोकमें है जहां तहं नित करूं प्रनाम ॥ ४ ॥
सुरनर नागसमूह नित पूजित पावनद्वार ।
चैत्यालय जिनचंद्रके वंदूं मंगलकार ॥ ५ ॥

इम नव देव प्रणाम करि निजमतके अनुसार।
ग्रंथ श्रावकाचारकी रचूं वचनिका सार ॥ ६ ॥

ऐसें मंगल करि श्री अमितगत्याचार्यकृत श्रावकाचारकी वचनिका करिये है। तहाँ जो ज्ञानकी मंदतातै हीनाधिक अर्थ होय ताकौ विशेषज्ञानी सुधार लीज्यो, मोकौ मंदबुद्धी जानि हास्य मति कीज्यो यह विशेषज्ञानीनतै मेरी परोक्ष प्रार्थना है ॥

उपजातिछंद।

नापाकृतानि प्रभवंति भूयस्तमांसि यैर्दृष्टिहराणि सद्यः।
ते शाश्वतीमस्तमयानभिज्ञा जिनेंदवो वो वितरंतु लक्ष्मीम् ॥१॥

अर्थ—ते श्रीजिनरूप चंद्रमा तुम्हारे शास्वती जो मोक्षलक्ष्मी ताहि विस्तारहु। कैसे है जिनचंद्र अस्तकिये है अज्ञानी परवादी जिननै। बहुरि जिनकरि शीघ्र ही दूरि किये सम्यक्दृष्टिके हरणेवाले मोह अंधकार ते फेर न होय हैं ॥ १ ॥

विभिद्य कर्माष्टकशृंखलं ये गुणाष्टकैश्वर्यमुपेत्य पूतम्।
आप्तास्त्रिलोकाग्रशिखामणित्वं भवंतु सिद्धा मम सिद्धये ते ॥ २ ॥

अर्थ—ते श्री भगवान मेरे सिद्धिके अर्थ होऊ। जे सिद्ध भगवान ज्ञानावरणादि अष्टकर्मरूप सांकलकू छेदि करि अर सम्यक्त्वादि अष्ट गुणरूप पवित्र ऐश्वर्यकौ प्राप्त होय तीन लोकके चूडामणिपनेकौ प्राप्त भये है ॥ २ ॥

ये चारयंते चरितं विचित्रं स्वयं चरंतो जनमर्चनीयाः।
आचार्यवर्या विचरंतु ते मे प्रमोदमाने हृदयारविंदे ॥ ३ ॥

अर्थ—ते आचार्यवर्य कहिये आचार्यनिविषैं प्रधान आचार्य आनंदका देनेवाला जो मेरा हृदयकमल ता विषैं विचरहु। कैसे है आचार्य,

जे नानाप्रकार चारित्रकौं आचरन करते संते लौककौं आचरन करावैं है याहीतै पूजनीक हैं। भावार्थ—वीतरागरूप धर्मकौं आचरण करैहैं अर दयाल होय औरनिकौं आचरन करावै है तेही वीतराग भावनिके वांछकनि करि पूजनीक है अर ते ही ज्ञानानंदके कारन हैं। बहुरि इनतैं विपरीत अन्यरागद्वेषभावसहितहैं ते आचार्य नांही ॥ ३ ॥

येषां तपःश्रीरनघा शरीरे विवेचका चेतसि तत्त्वबुद्धिः।
सरस्वती तिष्ठति वक्त्रपद्मे पुनंतु तेऽध्यापकपुंगवा वः ॥ ४ ॥

अर्थ—ते उपाध्यायनिविषै प्रधान उपाध्यायभगवान तुमकौं पवित्र करहु। कैसे हैं उपाध्याय, जिनके शरीरविषै पापरहित तपोलक्ष्मी तिष्ठै है, अर जिनके चित्तविषै भेदविज्ञान करनेवाली तत्वबुद्धि तिष्ठै है, अर मुखकमलविषैं सरस्वती कहिये जिनवाणी तिष्ठै है।

भावार्थ—मन वचन कायरूप तीनौ योग जिनकै निर्मल भये हैं ॥४॥

कषायसेनां प्रतिबंधिनीं ये निहत्य धीराः समशीलशस्त्रैः।
सिद्धिं विबाधां लघु साधयंते ते साधवो मे वितरंतु सिद्धिम् ५

अर्थ—ते साधु हमारे अर्थि सिद्धि जो मोक्ष ताहि देहु। कैसे हैं ते साधु, जे धीर समशीलरूप शस्त्रनिकरि सिद्धिकी रोकनेवाली क्रोधादिकषायनकी सेनाकौं शस्त्रनितै नाशकरि अपनी सिद्धिकौ साधैं है तैसैं साधु कषायनिकौ क्षमादिभावनितैं नाशकरि परमनिराकुल अवस्थाकौं साधै है ॥ ५ ॥

विभूषितोऽह्नाय यया शरीरे विमुक्तिकांतां विदधाति वश्याम्।
सा दर्शनज्ञानचरित्रभूषा चित्ते मदीये स्थिरतामुपैतु ॥ ६ ॥

अर्थ—सो दर्शन ज्ञान चारित्ररूप भूषण मेरे चित्तविषै सदा स्थिरताकौ प्राप्त होहु। जिस आभूषणकरि भूषित जो जीव है सो शीघ्र ही मुक्तिस्त्रीकौ वश करै है।

भावार्थ—जैसे सुंदर शृंगारसहित पुरुषके स्त्री वशी होय है तैसै दर्शन ज्ञानसहित आत्माके ज्ञानानंदस्वरूप अवस्था प्राप्त होय है ॥ ६ ॥

मातेव या शास्ति हितानि पुंसो रजः क्षिपंती दधती सुखानि।
समस्तशास्त्रार्थविचारदक्षा सरस्वती सा तनुतां मतिं मे ॥७॥

अर्थ—सो सरस्वती मेरी बुद्धिको विस्तारहु। कैसी है सरस्वती, जो पुरुषकौं माताकी ज्यों हित जे कल्याणके कारण तिनहिं सिखावै है, अर रज जो अज्ञान ताहि डरावै है, अर सुखनिकौं पुष्ट करै है, अर समस्त शास्त्रनिके अर्थके विचारविषैं प्रवीण है।

भावार्थ—अनेकांतमयी जो जिनवाणी ताका नाम सरस्वती है, सो जैसैं चतुर माता पुत्रकौं लौकिक हिताहितके कारण सिखावै है, अर अंगकी धूलि झौरै है अर सुख वढावै है। तैसै जिनवाणी मोक्षमार्ग-विषैं हिताहित सिखावै है अर अज्ञान दूरि करै है अर ज्ञानानंद पुष्ट करै है ऐसा जानना ॥ ७ ॥

शास्त्रांबुधेः पारमियर्त्ति येषां निषेवमाणः पदपद्मयुग्मं।
गुणैः पवित्रैर्गुरवो गरिष्ठाः कुर्वंतु निष्ठां मम ते वरिष्ठाम्॥८॥

अर्थ—जिनके चरनकमलकौं ध्यावता संता पुरुष शास्त्रसमुद्रके पारकौं प्राप्त होय है, ते पवित्र गुणनि करि गुरवे ऐसे श्री गुरु मेरे श्रेष्ठ क्रियाकूं करहु ॥ ८ ॥

उपासकाचारविचारसारं संक्षेपतः शास्त्रमहं करिष्ये।
शक्नोति कर्तुं श्रुतकेवलिभ्यो न व्यासतोऽन्योहि कदाचनापि।९।

अर्थ—मैं जो हूं शास्त्रकार सो श्रावकाचारके विचारका सारभूत शास्त्रकौं संक्षेपतै करूंगा। जातैं श्रुतकेवलिनतै अन्य दूजा पुरुष विस्तार कहनेकूं कदाचित् समर्थ नहीं है।

भावार्थ—विस्तारसहिततौ श्रुतकेवलीके सिवाय दूजा कौन कहै, मै सो संक्षेपरूप श्रावकाचार कहूंगा ।। ९ ।।

क्षुद्रस्वभावाः कृतिमस्तदोषां निसर्गतो यद्यपि दूषयंते ।
तथापि कुर्वंति महानुभावास्त्याज्या न यूकाभयतो हि शाटी ।१०।

अर्थ—जो पुनः नीचपुरुष निर्दोष कार्यकौ स्वभावहीतै दूषन लगावैं है तौ भी महान पुरुष कार्यकौ करै है, जातै यूकानके भयतै साडी त्यागने योग्य नांही ।

भावार्थ—दुष्टनिके भयतैं सज्जन उत्तम कार्यकौं न त्यागै जैसैं लोक यूकानके भयतै वस्त्र न त्यागै ऐसा जानना ॥ १० ॥

संसारकांतारमपास्तसारं बंभ्रम्यमाणो लभते शरीरी ।
कृच्छ्रेण नृत्वं सुखशस्यबीजं प्ररूढदुःकर्मशमेन भूतं ॥ ११ ॥

अर्थ—साररहित संसारवनविषै अतिशयकरि भ्रमता यहु जीव है सो कष्टकरि मनुष्यपना पावै है । कैसा है मनुष्यपना, नित्यही सुखरूप धान्यका बीजसमान, अर फैल रह्या जो पापकर्म ताके उपशम करि उपज्या ऐसा है ।

भावार्थ—इस असारसंसारविषै मनुष्यपना दुर्लभ है बड़े पापके उपशम करि होय है, जातै इस ही करि मोक्षका कारन तपश्चरणादि होय सकै है ।। ११ ।।

नरेषु चक्री त्रिदशेषु वज्री मृगेषु सिंहः प्रशमो व्रतेषु ।
मतो महीभृत्सु सुवर्णशैलो भवेषु मानुष्यभवः प्रधानम् ।। १२ ।।

अर्थ—जैसे मनुष्यनिविषै चक्रवर्त्ती प्रधान है, अर देवनिविषै इंद्र प्रधान है, अर मृगनिविषै सिंह प्रधान है, अर व्रतनिविषै प्रशमभाव प्रधान है, अर पर्वतनिविषै मेरु प्रधान है; तैसै भवनिविषै मनुष्यभव प्रधान है ॥ १२ ॥

त्रिवर्गसारः सुखरत्नखानिर्धर्मः प्रधानो भवतीह येन।
सम्यक्त्वशुद्धाविव धर्मलाभः प्रधानता तेन मतास्य सद्भिः॥१३॥

अर्थ—जैसैं सम्यत्वकी शुद्धिता होतेसंतै धर्मका लाभ होय है तैसै इस नरभवविषै त्रिवर्ग जे धर्म अर्थ काम तिनविषै सार अर सुखरत्नकी खानि ऐसा प्रधान धर्म होय है; ता कारण करि इस नरभवकी प्रधानता संतनि करि मानी है।

भावार्थ—साक्षात् मोक्षका कारण धर्म नरभवविषै ही होय है तातै नरभव उत्तम कह्या है॥ १३॥

यथा मणिर्ग्रावगणेष्वनर्घ्यो यथा कृतज्ञो गुणवत्सु लभ्यः।
न सारवत्त्वेन तथांगिवर्गैः सुखेन मानुष्यभवो भवेषु॥ १४॥

अर्थ—जैसैं पथरनिके समूहविषै अमोलक रत्न सुलभ नांही तथा जैसै गुणवाननविषै कृतज्ञ सुलभ नांहीं, तैसै सारवानपनें करि सुखकरि सहित भवनिविषै मनुष्यभव सुलभ नांही।

भावार्थ—सर्व संसारविषै तपश्चरणादिकके साधनपनें करि सारभूत मनुष्यभव पावना अति कठिन है॥ १४॥

शमेन नीतिर्विनयेन विद्या शौचेन कीर्त्तिस्तपसा सपर्या।
विना नरत्वेन न धर्मसिद्धिः प्रजायते जातु जनस्य पथ्या॥१५॥

अर्थ—जैसै शमभावविना नीति न होय, अर विनयविना विद्या न होय, अर शौच कहिये निर्लोभपना ताविना कीर्ति न होय, अर तपविना पूजा न होय; तैसै मनुष्यपनें विना जीवकै हितरूप धर्मकी सिद्धि कदाचित् न होय है॥ १५॥

अन्नेन गात्रं नयनेन वक्त्रं नयेन राज्यं लवणेन भोज्यम्।
धर्मेण हीनं बत जीवितव्यं न राजते चंद्रमसा निशीथं॥१६॥

अर्थ—जैसै अन्न करि हीन शरीर, अर नेत्रनि करि हीन मुख, अर नीतिकरि हीन राज्य, अर लवण करि हीन भोजन, अर चंद्रमा करि हीन रात्रि न सोहै; तैसैं धर्मकरि हीन जीवितव्य नहीं सोहै है ॥१६॥

शस्येन देशः पयसाब्जखंडं शौर्येण शस्त्री विटपी फलेन।
धर्मेण शोभामुपयाति मर्त्यो मदेन दंती तुरगो जवेन ॥ १७ ॥

अर्थ—जैसै धान्यकरि देश, अर जलकरि कमलनिका वन, अर शूरवीरपनें करि शस्त्रधारी, अर फलकरि वृक्ष, अर मद करि हस्ती, अर वेगकरि घोडा शोभाकौं प्राप्त होय है तैसै मनुष्य धर्मकरि शोभाकूं प्राप्त होय है ॥ १७ ॥

मानुष्यमासाद्य सुकृच्छ्रलभ्यं न यो विबुद्धिर्विदधाति धर्मम्।
अनन्यलभ्यं स सुवर्णराशिं दारिद्र्यदग्धो विजहाति लब्ध्वा १८

अर्थ—जो बुद्धिरहित पुरुष कष्टकरि पावने योग्य जो मनुष्यपना ताहि पाय करि धर्मकौ न धारैहै सो दारिद्रय करि पीडित नर अन्य करि न पावने योग्य ऐसी पाई जो सुवर्णकी राशि ताहि तजैहै। भावार्थ—न ग्रहैहै ॥ १८ ॥

अनादरं यो वितनोति धर्मे कल्याणमालाफलकल्पवृक्षे।
चिंतामणिं हस्तगतं दुरापं मन्ये स मुग्धस्तृणवज्जहाति ॥ १९ ॥

अर्थ—जो पुरुष कल्याननिकी माला जो पंगति सोही भये फल ताके देनेकौं कल्पवृक्षसमान जो धर्म ता विषैं अनादरकौ विस्तारैहै, सो मूढ दुःखकारी पावनें योग्य हस्तविषै आया जो चिंतामणि ताहि तृणकी ज्यों तजैहै, ऐसी मै मानूं हूं ॥ १९ ॥

दुःखानि सर्वाणि निहंतुकामैर्निःपीडितप्राणिगणानि धर्मः।
उपासनीयो विधिना विधिज्ञैरग्निर्हिमानीव दुरुत्तराणि ॥ २० ॥

अर्थ—पीडित किये हैं जीवनिके समूह जिननै ऐसे जे समस्त दु:ख तिनहि नाश करनेंकी है इच्छा जाकै ऐसे पुरुषनि करि विधिसहित विधिके जाननेवालेनि करि धर्म सेवना योग्य है; जैसै दु:ख करि उतरे जाय ऐसे जाडेनकौं नाश करनेके वाछकनि करि अग्नि सेवन योग्य है तैसें।

भावार्थ—जैसैं शीत मेटे चाहत है तिनकरि अग्नि सेवना योग्य है, तैसै मिथ्याज्ञानजनित परद्रव्यनिकी तृष्णारूप दु:खकौ दूर करे चाहै है तिन करि धर्म सेवना योग्य है ॥ २० ॥

शस्यानि बीजं सलिलानि मेघं घृतानि दुग्धं कुसुमानि वृक्षं ।
कांक्षत्यहान्येप विना दिनेशं धर्म विना कांक्षति यः सुखानि २१

अर्थ—जो पुरुप धर्म विना सुखनिकौ चाहै है सो यहु बीज विना धान्यनिकौं चाहै है, अर मेघविना जलनिकौ चाहै है, अर दुग्धविना घृतनिकौं चाहै है, अर वृक्ष विना फूलनिकौ चाहै है, अर सूर्य विना दिनकौं चाहै है।

भावार्थ—जैसें वीजादिक है ते धान्यादिकनिके कारण है तैसै धर्म सुखनिका कारण है, अर कारण विना कार्यकी उत्पत्ति चाहै है सो होय नाही तातैं पुरुपार्थीनिकरि धर्मका संग्रह करना योग्य है ॥ २१ ॥

आयांति लक्ष्म्यः स्वयमेव भव्यं धर्म दधानं पुरुषं पवित्राः ।
प्रसूनगंधस्थगिताखिलाशं सरोजिनीखंडमिवालिमाला ॥ २२ ॥

अर्थ—फूलनिकी सुगंध करि व्याप्त करी है समस्त दिशा जानैं ऐसा जो कमलनीनिका वन ता प्रति जैसै भौरानिकी पंकति स्वयमेव आय प्राप्त होय है तैसै धर्मकौ धारन करता जो भव्यपुरुप ता प्रति पवित्र लक्ष्मी स्वयमेव आय प्राप्त होय है ॥ २२ ॥

निषेवते यो विषयं निहीनो धर्मं निराकृत्य सुखाभिलाषी।
पीयूषमत्यस्य स कालकूटं सुदुर्जरं खादति जीवितार्थी ॥ २३ ॥

अर्थ—जो नीच पुरुष धर्मका निराकरण करि सुखका अभिलाषी विषयनिकौं सेवै है सो अमृतकौं त्यागि करि जीवनेका अर्थी प्रबल कालकूट विषकूं खाय है ॥ २३ ॥

भोगोपभोगाय करोति दीनो दिवानिशं कर्म यथा सयत्नः।
तथा विधत्ते यदि धर्ममेकं क्षणं तदानीं किमु नैति सौख्यम् २४

अर्थ—जैसैं यहु दीन भया संता यत्नसहित रातदिन भोगोपभोगके अर्थ कर्म करै तैसैं जो क्षणमात्र भी धर्मकौं धारै तौ कहा सुखकौं प्राप्त नहीं होय, होय ही होय ॥ २४ ॥

ये योजयंते विषयोपभोगे मानुष्यमासाद्य दुरापमज्ञाः।
निकृत्य कर्पूरवनं स्फुटं ते कुर्वंति वाटीं विषपादपानां ॥ २५ ॥

अर्थ—जो अज्ञानी दुःख करि पावने योग्य जो मनुष्यपना ताहि पाय करि विषयभोगनि विषै लगावै है, ते प्रगट कर्पूरके वनकूं काटि करि विषवृक्षनिकी वाडी करैं है ॥ २५ ॥

गृह्णंति धर्मं विषयाकुला ये न भंगुरे मंक्षु मनुष्यभावे।
प्रदह्यमाने भवनेऽग्निना ते निःसारयंते न धनानि नूनं ॥ २६ ॥

अर्थ—जे विषयनि विषै आकुलित जन क्षणभगुर जो मनुष्यभव ता विषैं शीघ्र धर्मका ग्रहण न करैं हैं, ते निश्चयतैं अग्नि करि घर जलते संतैं धननिकौं न निकासैं है ॥ २६ ॥

सर्वेऽपि भावाः सुखकारिणोऽमी भवंति धर्मेण विना न पुंसः।
तिष्ठंति वृक्षाः फलपुष्पयुक्ताः कालं कियंतं खलु मूलहीनाः ॥२७॥

अर्थ—पुरुषकै ये सुखकारी सब ही पदार्थ धर्म बिना न होय है, जैसै फल फूलनि करि सहित वृक्ष जडरहित निश्चयकरि कितने काल तिष्ठै ? किछू भी रहै नांही ॥ २७ ॥

मोक्षावसानस्य सुखस्य पात्रं भवंति भव्या भवभीरवो ये।
भवंति भक्त्या जिननाथदृष्टं धर्मं निरास्वादमदूषणं ते ॥ २८॥

अर्थ—जे संसारतैं भयभीत भव्यजीव जिननाथ करि उपदेश्या जो धर्म ताहि भक्तिसहित सेवै है, ते मोक्षपर्यंत सुखके भाजन होय हैं। कैसा है धर्म, नाही है इंद्रियजनित विषयनिका आस्वाद जाविषै, अर रागादि दूषन करि रहित ऐसे।

भावार्थ—जे पुरुष विषयरहित निर्दोष धर्म सेवै हैं ते चक्रवर्त्ती इंद्र अहमिंद्र मोक्षपर्यंत सुख पावै है ॥ २८ ॥

लक्ष्मीं विधातुं सकलां समर्थं सुदुर्लभं विश्वजनीनमेनं।
परीक्ष्य गृह्णंति विचारदक्षाः सुवर्णवद्वंचनभीतचिंताः ॥ २९ ॥

अर्थ—समस्त लक्ष्मीके रचनेंकूं समर्थ, अर महादुर्लभ, अर समस्तका हित उपजावनें वाला ऐसा जो धर्म ताहि विचार विषै प्रवीन अर ठिगायवे करि भयभीत है चित्त जिनके ऐसे पुरुष है ते सुवर्णकी ज्यों परीक्षा करि ग्रहण करै है।

भावार्थ—धर्म धर्म सब ही कहै है परंतु परीक्षाप्रधान है ते असाधारण लक्षणतै परखि ग्रहण करै है ॥ २९ ॥

स्वर्गापवर्गामलसौख्यखानिं धर्मं ग्रहीतुं परमो विवेकः।
सदा विधेयो हृदये प्रविष्टैर्बुधैरतु तं रत्नमिवापदोषं ॥ ३० ॥

अर्थ—स्वर्ग मोक्षके निर्मल सुखनिकी खानि जो धर्म ताहि ग्रहण करनेंकौ पंडित जन करि हृदयविषै परम विवेक सदा करने योग्य है। बहुरि ज्ञानवान तिस धर्मकौ निर्दोष रत्नकी ज्यों ग्रहण करै है ॥३०॥

तं शब्दमात्रेण वदंति धर्मं विश्वेपि लोका न विचारयंते।
स शब्दसाम्येऽपि विचित्रभेदैर्विभिद्यते क्षीरमिवार्चनीयं॥ ३१॥

अर्थ—तिस धर्मकौ शब्दमात्र करि सब ही लोक कहैं है, अर विचार न करै है। बहुरि सो पूजनीक धर्म शब्दकी समानता होतैं भी नानाप्रकारके भेदनि करि भेदरूप कीजिये हैं।

भावार्थ—जैसै आकका दूध गायका दूध नाममात्र तौ समान है, परंतु गुणनि करि बड़ा भेद है, तैसैं धर्म धर्म तौ सब कहै है, परंतु वीतरागभावरूप जिनधर्मविषैं अर अन्य धर्म विषै बड़ा अंतर है॥ ३१॥

हिंसानृतस्तेयवरांगसंगग्रंथग्रहा दत्तदुरंतदुःखाः।
धर्मेषु येष्वत्र भवंति निंद्यास्ते दूरतो बुद्धिमता विवर्ज्याः॥३२॥

अर्थ—इहां जिन धर्मनिविषैं निंदनीक अर दिये है महादुःख जिननै ऐसे हिंसाझूंठ चौरी मैथुन परिग्रहरूप पिशाच हैं ते धर्म बुद्धिवान करि दूरितै त्यागने योग्य है॥ ३२॥

निहन्यते यत्र शरीरवर्गो निपीयते मद्यमुपास्यते स्त्री।
वोभुज्यते मांसमनर्थमूलं धर्मस्य मात्रापि न तत्र नूनं॥ ३३॥

अर्थ—जिस विषै जीवनिके समूह हनिए हैं, अर मदिरा पीइये है, अर परस्त्री भोगिए है, अर अनर्थका मूल मांस भखिये है, तहाँ निश्चय करि धर्मका अंश नांही है॥ ३३॥

वधादयः कल्मषहेतवो ये न सेवितास्ते वितरंति धर्मम्।
न कोद्रवाः क्वापि वसुंधरायां निधीयमाना जनयंति शालीन् ३४

अर्थ—जे पापके कारण हिंसादिक ते सेये संते धर्मकौं न विस्तरै है। जैसैं कोदू पृथ्वीविषै धरे संते कहूँ भी धान्य न उपजावैं हैं तैसै॥ ३४॥

हिंसापरस्त्रीमधुमांससेवां कुर्वंति धर्माय विबुद्धयो ये।
पीयूषलाभाय विवर्द्धयंते विषद्रुमाँस्ते विविधैरुपायैः ॥ ३५ ॥

अर्थ—जे दुर्बुद्धि धर्मके अर्थ हिंसा परस्त्री मधु मांसका सेवन करै है ते अमृतके आर्थि नाना उपायनि करि विषवृक्षनिकौ वढावै है ॥ ३५ ॥

यैर्मद्यमांसांगिवधादयोयैर्निर्माणयुक्ताः कुशलाय शास्त्रैः।
आकर्णनीयानि न तानि दक्षैः शत्रूदितानीव वचांसि जातु ॥३६॥

अर्थ—जिन शास्त्रनि करि यहु मद्य मांस जीवहिंसादिक करि रचेभये मंगलके अर्थ कहे, ते शास्त्र शत्रूके वचननिकी ज्यौ पंडितनि करि कदाचित् सुनना योग्य नांही ॥ ३६ ॥

पठंति शृण्वंति वदंति भक्त्या स्तुवंति रक्षंति नयंति वृद्धिं।
ये तानि शास्त्राण्यनुमन्यमानास्ते यांति सर्वेऽपि कुयोनिमज्ञाः ३७

अर्थ—जे पुरुष तिन पापरूप शास्त्रनिकौ नमते संते भक्ति करि पढै है सुनै हैं कहै हैं स्तुति करै हैं रक्षा करैं है वृद्धिकौ प्राप्त करैं है, ते सर्व ही अज्ञानी कुगतिकौं प्राप्त होय है, नरक तिर्यंचादि गतिनमें अनंतकाल भ्रमै है ॥ ३७ ॥

धर्म ददंतेऽगिवधादयोऽमी विधीयमाना यदि नाम तथ्यं।
सांसारिकाचारविधौ प्रवृत्ता न पापिनः केऽपि तदा भवंति ३८

अर्थ—ये जीवहिंसा आदि करि भये जो प्रगटपने सत्यार्थधर्मकौ देय है तौ लौकिक आचारकी विधि विषै प्रवर्त्तते कोई भी पापी न होय।

भावार्थ—जो हिंसादिक ही धर्म होय तौ कसाई भील धीवर इत्यदिक सर्व ही धर्मात्मा ठहरै। तातै हिंसादिक है ते धर्म नांही ऐसा जानना ॥ ३८ ॥

रागादिदोषाकुलमानसैर्ये ग्रंथाः क्रियंते विषयेषु लोलैः।
कार्याः प्रमाणं न विचक्षणैस्ते जिघृक्षुभिर्धर्ममगर्हणीयम् ॥३९॥

अर्थ—रागादि दोषनि करि व्याकुल अर विषयनि विषै चंचल जो पुरुष तिनकरि जे ग्रंथ कहिये है ते ग्रंथ अनिंद्य धर्मकूं ग्रहण करनेंके वांछक प्रवीण पुरुषनि करि प्रमाण करना योग्य नाहीं।

भावार्थ—रागीद्वेषीनि करि रचे शास्त्रहैं ते अप्रमाण है ॥ ३९ ॥

ये द्वेषरागाश्रयलोभमोहप्रमादनिद्रामदखेदहीनाः।
विज्ञातनिःशेषपदार्थतत्वास्तेषां प्रमाणं वचनं विधेयम् ॥४०॥

अर्थ— जे द्वेष रागके आश्रय लोभ मोह प्रमाद निद्रा मद खेद इनिकरि रहित है, अर जाने है समस्त पदार्थनिके स्वभाव जिननैं तिनके वचन प्रमाण करना योग्य है।

भावार्थ—सर्वज्ञ वीतरागके वचन प्रमाण करना योग्य है। जातैं रागी होय तौ असत्य कहै। अर सर्वज्ञ न होय तौ यथार्थ जानें विना कहा कहै? । तातै सर्वज्ञ वीतरागहीके वचन प्रमाण है ॥ ४० ॥

रागादिदोषा न भवंति येषां न संत्यसत्यानि वचांसि तेषां।
हेतुव्यपाये न हि जायमानं विलोक्यते किंचन कार्यमार्यैः॥४१॥

अर्थ—जिनके रागद्वेष नहीं हैं तिनके वचन असत्य नहीं हैं, जातैं कारणके नाश भये संतै किछू कार्य बडे पुरुषनिकरि न विलोकिए है।

भावार्थ—जैसैं माटी आदि कारणके अभाव होतैं घटादिक कार्य न देखिए है तैसै रागादिक है ते असत्यवचनके कारण हैं। रागादि विना असत्य वचन न होय हैं ऐसा जानना ॥ ४१ ॥

विना गुरुभ्यो गुणनीरधिभ्यो जानाति धर्मं न विचक्षणोऽपि ।
निरीक्षते कुत्र पदार्थजातं विना प्रकाशं शुभलोचनोऽपि ॥४२॥

अर्थ—चतुरपुरुष भी गुणनिके समुद्र जे गुरु तिन विना धर्मकौ न जानै है । जैसें शुभनेत्रसहित पुरुष भी प्रकाश विना पदार्थनके समूहकौ कहूं देखै है ? अपि तु नांही देखै है ॥ ४२ ॥

ये ज्ञानिनश्चारुचरित्रभाजो ग्राह्यो गुरूणां वचनेन तेषाम् ।
संदेहमत्यस्य बुधेन धर्मो विकल्पनीयं वचनं परेषाम् ॥ ४३ ॥

अर्थ—जे ज्ञानवान सुंदर चारित्रके धरनेवाले हैं तिन गुरुनिके वचन करि संदेह छोडि पंडित पुरुषकरि धर्म ग्रहण करना योग्य है । बहुरि ऐसे गुरूनि विना औरनिका वचन विकल्पनीय कहिये संदेह योग्य है ॥ ४३ ॥

भीतैर्यथा वंचनतः सुवर्णं प्रताडनच्छेदनतापघर्षैः ।
तथा तपःसंयमशीलबोधैः परीक्षणीयो गुरुशब्दबोधैः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जैसे ठिगायवेतैं भयभीत जे पुरुष तिनकरि सुवर्ण जो है सो कूटना छेदना तपावना घिसना इनकरि वा गुरुवे शब्दके देवा-करि परखना योग्य है तैसें तप संयमशील निर्लोभपना इनि करि तथा गुरुके वचननिके ज्ञाननि करि धर्म परखना योग्य है । इहां " गुरुश-ब्दबोधैः " इस पदका अर्थ सुवर्णपक्षमैं गुरुवे भारी शब्दके ज्ञान करि ऐसा लगाय लेना ॥ ४४ ॥

संसारमुद्भूतकषायदोषं लिलंघयंते गुरुणा विना ये ।
विभीमनक्रादिगणं ध्रुवं ते वार्धिं तितीर्षति विना तरंडम् ॥४५॥

अर्थ—जे पुरुष उपजे हैं कषायरूप दोष जातैं ऐसा जो संसार समुद्र ताहि श्रीगुरु विना अतिशयकरि उलंघे चाहै हैं, ते निश्चयकरि

महाभयानक है नक्रादिकके समूह जा विषै ऐसे समुद्रकू नाव विना तैरना चाहै है ॥ ४५ ॥

येषां प्रसादेन मनःकरींद्रः क्षणेन वश्यो भवतीह दुष्टः।
भजंति ये तान् गुणिनो न भक्त्या तेभ्यः कृतघ्ना न परे भवंति ४६

अर्थ—इहां लोकविषै जिनके प्रसादकरि मनरूप गजेंद्र क्षणमात्र करि वश होय है, तिन गुणवान गुरूनिकौ जे भक्तिसहित न सेवै हैं तिनतै सिवाय और कृतघ्नी कौन है ? ॥ ४६ ॥

कृतोपकारो गुरुणा मनुष्यः प्रपद्यते धर्मपरायणत्वम्।
चामीकरस्येव सुवर्णभावं सुवर्णकारेण विशारदेन ॥ ४७ ॥

अर्थ—गुरुनै करया है उपकार जापै ऐसा जो मनुष्य है सो धर्मविषै परायणपनांकौ प्राप्त होय है। जैसैं चतुर सुनार करि सुवर्णकैं भले वर्णका भाव होय तैसैं।

भावार्थ—जैसै सुनारकी संगति करि सोना सोलहवानीका होय है तैसै श्रीगुरुके प्रसादकरि जीव धर्मकौ प्राप्त होय है ऐसा जानना ॥ ४७ ॥

विवर्त्तमानो व्रततो गुरुभ्यो न शक्यते वारयितुं परेण।
व्यलीकवादी व्यवहारकार्ये साक्षीकृतैरेव नियम्यते हि ॥ ४८ ॥

अर्थ—व्रततैं पराङ्मुख होता जो पुरुष सो गुरू विना और करि रोकनेकूं समर्थ न हूजिये है। जैसै व्यवहारकार्य विषै झूंठ बोलने वाला पुरुष जे साक्षी करै है तिन करि ही निश्चय करि रोकिए है तैसै ॥ ४८ ॥

दुग्धेन धेनुः कुसुमेन वल्ली शीलेन भार्या सरसी जलेन।
न सूरिणा भाति विना व्रतास्था शमेन विद्या नगरी जनेन ॥४९॥

अर्थ—दुग्धसैं गाय सोहै है, अर फूलनिसै बेलि सोहै है, अर शीलसैं स्त्री सोहै है अर जलसै तलाई सोहै है, आचार्यकै विना व्रतकी स्थिति नहीं होय है, शांतभावसै विद्या सोहै है, मनुष्यनितै नगरी सोहै है ॥ ४९ ॥

विधीयते सूरिवरेण सारो धर्मो मनुष्ये वचनैरुदारैः।
मेघेन देशे सलिलैः फलाढ्ये निरस्ततापैरिव सस्यवर्गः ॥ ५० ॥

अर्थ—जैसै दूरकिया है ताप जिननै ऐसे जलनि करि फलसहित देशमें मेघकरि धान्यका समूह उपजाइए है तैसै उदार वचननि द्वारा आचार्यकरि मनुष्यविषै सारभूत धर्म उपजाइए है ॥ ५० ॥

लब्ध्वोपदेशं महनीयवृत्तेर्गुरोरनुष्ठाय विनीतचेताः।
पापस्य भव्यो विदधाति नाशं व्याधेरिव व्याधिनिषूदनस्य॥५१॥

अर्थ—जैसै रोगी वैद्यका उपदेश ग्रहण करि वाकी बताई औषधिकौ लेकरि व्याधिका नाश करैहै तैसै विनययुक्त है चित्त जाका ऐसा भव्य, पूज्य है आचरण जाका ऐसे गुरुके उपदेशको प्राप्त करि अर वाकूं अनुष्टान करि पापका नाश करै है।

भावार्थ—जैसैं रोगी वैद्यके उपदेशतै रोगकूं नाशैहै तैसै भव्य गुरुके उपदेशतै पापकौं नाशै है ॥ ५१ ॥

सर्वोपकारं निरपेक्षचित्तः करोति यो धर्मधिया यतीशः।
स्वकार्यनिष्ठैरुपमीयतेऽसौ कथं महात्मा खलु बंधुलोकैः ॥ ५२ ॥

अर्थ—जो आचार्य विनास्वार्थके धर्मबुद्धिकरि सर्वका उपकार करै है सो यह्व महात्मा अपने अपने कार्यसाधने विषै तत्पर ऐसे बंधुलोकनि करि कैसै बराबर हूजिए है ॥ ५२ ॥

निषेव्यमाणानि वचांसि येषां जीवस्य कुर्वत्यजरामरत्वम्।
नाराधनीया गुरवः कथं ते विभीरुणा संसृतिराक्षसीतः ॥ ५३ ॥

अर्थ—जिन आचार्यनके वचन सेवन किये भए जीवकै अजरामरपना करिए है वे गुरु संसाररूप राक्षसीतै डरे भए पुरुप करि कैसैं आराधना न किये जाय है, अपि तु आराधना किये ही जाय है ॥५३॥

माता पिता ज्ञातिनराधिपाद्या जीवस्य कुर्वत्युपकारजातम्।
यत्सूरिदत्तामलधर्मनुन्नास्तेनैष तेभ्योतिशयेन पूज्यः ॥ ५४ ॥

अर्थ—माता पिता जाति राजा आदिक जे है ते आचार्य करि दिये हुए निर्मल धर्मसै प्रेरित हुए थके जीवके उपकारनिके समूहकौ करै हैं अर आचार्य विना प्रेरे हुए ही करै है तातै या अतिशय करि गुरु जो है सो माता पिता जाति राजादिक करि भी पूज्य है ॥५४॥

निषेवमाणो गुरुपादपद्मं त्यक्तान्यकर्मा न करोति धर्मम्।
प्ररूढसंसारवनक्षयाग्निं निरर्थकं जन्म नरस्य तस्य ॥ ५५ ॥

अर्थ—छोडे हैं अन्य कार्य जानै ऐसा गुरुके चरणकमल कोंही सेवन करै ऐसा जो पुरुष, अंकुरित ऐसा जो संसार वन ताके नाश करनेमें अग्निसमान ऐसे धर्मकौ न करै है वा पुरुषका जन्म निरर्थक है ॥५५॥

यं सूरयो धर्मधिया ददंति यं बांधवः स्वार्थधिया जनानाम् ॥
अर्थं तयोरंतरमत्र वेद्यं सताणुमेर्वोरिव जायमानम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—जा अर्थकौ आचार्य तौ धर्मबुद्धिकरि मनुष्यनिकौं देवैं हैं अर भाई बंधु जन स्वार्थबुद्धिकरि देवै है सो यहां सत्पुरुषनिकरि इन दोऊनि में परमाणु अर मेरु में होय ऐसे अंतर समान अंतर जानना योग्य है।

भावार्थ—आचार्य अर भाई बंधुनिमें इतना अंतर है जितना सुमेरु अर परमाणुमें है ॥ ५६ ॥

लक्ष्मीं करींद्रश्रवण-स्थिरत्वां
तृणाग्रतोयस्थिति जीवितव्यम् ।
विसृत्वरीं यौवनिकां च दृष्ट्वा
धर्मं न कुर्वंति कथं महांतः ॥ ५७ ॥

अर्थ—लक्ष्मीकूं हाथीके कानसमान चंचल देखि करि अर तृणनिकी अनीपर लग्या जलकी स्थिति समान जीवितव्य देखकरि अर यौवन अतिशयकरि जानेवाला देखि करि महंत पुरुष धर्म कैसैं न करैं हैं ? करैही है ॥ ५७ ॥

अनश्वरीं यो विदधाति लक्ष्मीं
विधूय सर्वां विपदं क्षणेन ।
कथं स धर्मः क्रियते न सद्भि-
स्त्याज्येन देहेन मलालयेन ॥ ५८ ॥

अर्थ—जो धर्म क्षणमात्रमे सर्व विपदानिकौ दूरि करि अविनश्वर लक्ष्मीकूं करैहै सो धर्म सत्पुरुपनिकरि मलका घर अर त्यागने योग्य ऐसे देहकरि कैसे न करिये है ॥ ५८ ॥

पिंडं ददाना न नियोजयंते
कलेवरं भृत्यमिवात्मनीने ।
कार्ये सदा ये रचितोपकारे
ते वंचयंते स्वयमेव मूढाः ॥ ५९ ॥

अर्थ—जे पुरुष भोजन देते सते अर शरीरको चाकरकी ज्यों सदाकाल करया है उपकार जानै ऐसे अपने हितरूप कार्यविषैं न लगावैहैं ते मूढ स्वयमेव ठिगावै है ।

भावार्थ—जैसे कोई चाकरकौ भोजनादि सामग्री तौ देवै अर अपने हितरूप कार्यमें न लगावै तब वो स्वच्छंद होय है अर मालिक

ठिगाया जाय है तैसै शरीरकौं भोजनादि सामग्रीतै तो पोषैहैं अर हितरूप तपश्चरणादि कार्यमे न लगावै हैं ते ठिगाये जायहै ऐसा जानना ॥ ५९ ॥

गृहांगजापुत्रकलत्रमित्र-
स्वस्वामिभृत्यादिपदार्थवर्गे ।
विहाय धर्म न शरीरभाजा-
मिहास्ति किंचित्सहगामि पथ्यम् ॥६०॥

अर्थ—इस लोकमें गृह पुत्री पुत्र स्त्री मित्र धन स्वामी चाकर आदि पदार्थनिके समूहविषै धर्मकौं छोड और किछू जीवनिके साथ जानेवाला हितकारी नाहीं।

भावार्थ—इस जीवका साथी धर्मही है और पदार्थ साथी नाहीं ॥ ६० ॥

घातिक्षयोद्भूतविशुद्धबोध-
प्रकाशविद्योतितसर्वतत्वाः ।
भवंति धर्मेण जिनेन्द्रचन्द्रा-
स्त्रिलोकनाथार्चितपादपद्माः ॥ ६१ ॥

अर्थ—घातिया कर्मनिके क्षयतैं उपज्या जो निर्मल केवलज्ञान ताके प्रकाश करि प्रकाशे है सर्व पदार्थ जिनने अर तीनलोकके नाथ जे इंद्र धरणेंद्र चक्रवर्ती तिन करि पूजित हैं चरणकमल जिनके ऐसे जे जिनेद्रचंद्र तीर्थकर भगवान हैं ते धर्मकरि होय है ॥ ६१ ॥

आराध्यमानस्त्रिदशैरनेकै-
र्विराजते स्वैः प्रतिबिंबकैर्वा ।
धर्मप्रसादेन निलिंपराजः
सुरांगनावक्त्रसरोजभृङ्गः ॥ ६२ ॥

अर्थ—धर्मके प्रसादकरि अपने प्रतिबिंब समान अनेक देवनि करि सेव्यमान देवनिका राजेंद्र सोहै है, कैसा है इंद्र देवांगनानिके मुख कमलनिविषै भृंगसमान है।

भावार्थ—इंद्रपद धर्म करि मिलै है ऐसा जानना ॥ ६२ ॥

द्वात्रिंशदुर्वीशसहस्रमूर्द्ध-
प्रसूनमालापिहितांघ्रिपद्मः।
धर्मेण राज्यं विदधाति चक्री
विलंबमानस्त्रिदशेशलीलाम् ॥ ६३ ॥

अर्थ—धर्मकरि चक्रवर्ती राज्यकों धारै है, कैसा है चक्रवर्त्ती बत्तीस हजार राजानिके मस्तकनिकी जे पुष्पनिकी माला तिनकर मिले है चरणकमल जाके अर इंद्रकी लीलाकौं धरै ऐसा चक्रवर्ती धर्म करि होय है ॥ ६३ ॥

मनोभवाक्रांतविदग्धरामा-
कटाक्षलक्षीकृतकांतकायः।
दिगंगनाव्यापिविशुद्धकीर्ति-
र्धर्मेण राजा भवति प्रतापी ॥ ६४ ॥

अर्थ—कामकरि भरी अर चतुर जे स्त्री तिनके कटाक्षनि करि निसानारूप किया है दैदीप्यमान शरीर जाका अर दिशारूप स्त्रीनि विषैं व्यापी है निर्मल कीर्ति जाकी ऐसा प्रतापी राजा धर्म करि होय है ॥ ६४ ॥

मतंगजा जंगमशैललीला-
स्तुरंगमा निर्जितवायुवेगाः।
पदातयः शक्रपदातिकल्पाः
रथा विवस्वद्रथसन्निकाशाः ॥ ६५ ॥

योषाः स्वशोभाजितदेवयोषाः
निर्लिंपवासप्रतिमा निवासाः ।
अनन्यलभ्या धनधान्यकोशाः ॥
भवंति धर्मेण पुरार्जितेन ॥ ६६ ॥

अर्थ—चालते पर्वतनिकी लीला धरे ऐसे हस्ती, अर जीत्या है पवनका वेग जिननैं ऐसे घोडे, अर इंद्रके पयादेसमान पयादे, अर सूर्यके रथके तुल्य रथ ॥ ६५ ॥

बहुरि अपनी शोभाकरि जीती है देवांगना जिननैं ऐसी स्त्री, अर इंद्रके मंदिरसमान महल, अर औरनिकरि न पावने योग्य ऐसे धन धान्यनिके भंडार पूर्वोपार्जित धर्मकरि होयहैं ॥ ६६ ॥

परेऽपि भावा भुवने पवित्रा
भवंति पुण्यैर्न विना जनस्य ।
विना मृणालैः क्वचनापि दृष्टाः
संपद्यमाना न पयोजखंडाः ॥ ६७ ॥

अर्थ—लोकविषै और भी जे पदार्थहैं ते पुण्यविना जीवके न होयहैं जैसैं मृणाल जो कमलकी जड तिनविना कमलनिके वन कभी प्राप्त भए न देखे ॥ ६७ ॥

स्वपूर्वलोकानुचितोऽपि धर्मो
ग्राह्यः सतां चिंतितवस्तुदायी ।
पप्रार्थयंते न किमीश्वरत्वं
स्वजात्ययोग्यं जनता सदापि ॥ ६८ ॥

अर्थ—अपने पूर्वलोक जे पितादिक तिनके अनुचित भी धर्म सत्पुरुषनिकौं वांछित वस्तुका देनेवाला ग्रहण करना योग्य है, जैसैं

अपनी जातिके अयोग्य जो ईश्वरपना ताहि लोक कहा अतिशयकरि सदा न चाहैहै ? अपितु चाहैही है।

भावार्थ—कोऊ कहै हमारे कुलमें जिनधर्म नांही हम कैसैं ग्रहण करैं ताकूं कहैंहै जो अपने कुलमें जिनधर्म नांही तो भी नवीन ग्रहण करना योग्य है जैसैं कोऊकौं नवीन राज्य मिलैतौ कहा ग्रहण न करै ? ॥ ६८ ॥

त्यजंति वंशागतमप्यवद्यं
संप्राप्य पुण्यं जनतार्चनीयम्।
कुष्ठं कुलायातमपि प्रवीणः
कल्पत्वमासाद्य परित्यजंति ॥ ६९ ॥

अर्थ—जैसै सुंदरशरीर निरोगपनांकूं पायकरि प्रवीण पुरुष कुल-विषैं चल्या आया भी जो कुष्ट रोग ताहि तजैहै तैसै लोकपूज्य धर्मकौ पायकरि कुलमें चल्या आया भी जो पाप ताहि तजैहै ॥ ६९ ॥

मूर्खापवादत्रसनेन धर्मं
मुंचंति संतो न बुधार्चनीयम्।
ततो हि दोषः परमाणुमात्रो
धर्मव्युदासे गिरिराजतुल्यः ॥ ७० ॥

अर्थ—मूर्खनके अपवादक भयकरि पंडितनिकरि पूज्य जो धर्म ताहि सत्पुरुप न त्यागैहै, जातै तिस मूर्खापवादतै तौ दोष परमाणु-मात्र है अर धर्मनाश भए सुमेरुतुल्य दोष है ऐसा जानना ॥ ७० ॥

मालिनी

निखिलसुखफलानां कल्पने कल्पवृक्षं
कुमतिमतविभीता ये विमुंचंति धर्मम्।

विमलमणिनिधानं पावनं दुष्टतुष्टयै
स्फुटमपगतबोधाः प्राप्य ते वर्जयंति ७१

अर्थ—जे कुबुद्धिनिके मततै भयभीत भए संते समस्तसुखरूप फलनिके देनेविषैं कल्पवृक्ष तुल्य जो धर्म ताहि तजैंहैं ते अज्ञानी पवित्र निर्मल रत्नका भंडारकौं प्रगट पायकरि दुष्टनिकी प्रसन्नताके अर्थ त्यागैंहैं ॥ ७१ ॥

अमरनरविभूतिं यो विधायार्थनीयां
नयति निरपवादां लीलया मुक्तिलक्ष्मीम्।
अमितगतिजिनोक्तः सेव्यतामेष धर्मः
शिवपदमनवद्यं लब्धकामैरकामैः ॥ ७२ ॥

अर्थ—जो धर्म, प्रार्थना योग्य जो देवमनुष्यानिकी विभूति ताहि रचि, अर लीलामात्र करि निर्दोष लक्ष्मीकौ प्राप्त करैहै सो अमितगति-जिनोक्त कहिए अनंत है ज्ञान जाका ऐसे जिनदेव करि कह्या अथवा अमितगत्याचार्यकरि कह्या यहु धर्म पापरहित शिवपद लेनेके वांछक अर रहित काम जे जीव तिनकरि सेवना योग्य है ॥ ७२ ॥

छप्पय

दुर्लभनरभव पाय अन्य कारज तजदीजे,
होय विषयतैं विमुख सुगुरुवचनामृत पीजे।
मिथ्याभाव निवार सार जिनधर्म धार उर
इंद्रादिक पद पाय धर्मतैं होय जगतगुर ॥
कल्याणकार कलिमलहरन धर्म परम उत्तम सरन।
जिनराज अमितगति कथित तसु भागचंद बंदित चरन ॥

ऐसैं श्री अमितगति आचार्यकृत श्रावकाचारविषैं
पहला परिच्छेद समाप्त भया।

अथ द्वितीय परिच्छेद ।

मिथ्यात्वं सर्वथा हेयं धर्मं वर्द्धयता सता ।
विरोधो हि तयोर्वाढं मृत्युजीवितयोरिव ॥ १ ॥

अर्थ—धर्मकौं वढावता जो सत्पुरुप ताकरि मिथ्यात्व सर्व प्रकार त्यागना योग्य है, जातै मिथ्यात्व अर धर्म इन दोउनिका मरन अर जीवनकी ज्यो अतिशय करि वड़ा विरोध है ॥ १ ॥

संयमा नियमाः स नाश्यंते तेन पावनाः ।
क्षयकालानलेनेव पादपाः फलशालिनः ॥ २ ॥

अर्थ—जैसैं प्रलयाग्नि करि फलनि करि शोभित जे वृक्ष हैं ते नाशकूं प्राप्त होय है तैसै तिस मिथ्यात्व करि पवित्र संयम नियम सर्व नाशकौं प्राप्त होय है ॥ २ ॥

अतत्वमपि पश्यंति तत्वं मिथ्यात्वमोहिताः ।
मन्यंते तृपितास्तोयं मृगा हि मृगतृष्णिकां ॥ ३ ॥

अर्थ—मिथ्यात्व करि मोहित जीव है ते अतत्वकौं तत्व मानै हैं, जैसै तिसारा मृग है ते मृगतृष्णाकूं निश्चय करि जल मानै है ॥ ३ ॥

विभ्रांता क्रियते वुद्धिर्मनोमोहनकारिणा ।
मिथ्यात्वेनोपयुक्तेन मद्येनेव शरीरिणः ॥ ४ ॥

अर्थ—मनको अचेत करनेवाला उपयुक्त भया जो मिथ्यात्व ता करि मदिराकी ज्यौ जीवकी वुद्धि विशेप भ्रांतिरूप करिये है ॥ ४ ॥

पदार्थानां जिनोक्तानां तदश्रद्धानलक्षणम् ।
ऐकांतिकादिभेदेन सप्तभेदमुदाहृतम् ॥ ५ ॥

अर्थ—जिन भाषित जीवादिक पदार्थनिका अश्रद्धान है लक्षण जाका ऐसा, सो मिथ्यात्व ऐकांतिक आदि भेद करि सात प्रकार कह्या है ॥ ५ ॥

अब एकांत, संशय, विनय, गृहीत, विपरीत, निसर्ग, मूढदृष्टि, ऐसे सात प्रकार मिथ्यात्वका स्वरूप कहै है,—

क्षणिकोऽक्षणिको जीवः सर्वथा सगुणोऽगुणः।
इत्यादि भाषमाणस्य तदैकांतिकमिष्यते ॥ ६ ॥

अर्थ—जीव एकांत करि सर्व प्रकार क्षणिकही है, वा नित्यही है, वा निर्गुण ही है, वा सगुणही है, इत्यादिक कहनेवाले कैं एकांत मिथ्यात्व कहिए ॥ ६ ॥

सर्वज्ञेन विरागेण जीवाजीवादि भाषितम्।
तथ्यं न वेति संकल्पे दृष्टिः सांशयिकी मता ॥ ७ ॥

अर्थ—सर्वज्ञ वीतरागकरि कह्या जो जीव अजीव आदि तत्व सो सत्य हैं अथवा असत्य है ऐसै विकल्प होतेसंतै संशयजनित दृष्टि कही है।

भावार्थ—सो संशयमिथ्यात्व कह्या है ॥ ७ ॥

आगमा लिंगिनो देवाः धर्माः सर्वे सदासमाः।
इत्येषा कथ्यते बुद्धिः पुंसो वैनयिकी जिनैः ॥ ८ ॥

अर्थ—सर्व आगम, अर सर्वभेषी, अर सर्व देव अर सर्व धर्म सदा समान है ऐसी यह्नु पुरुषकी बुद्धि, जिनदेवनिकरि विनय-मिथ्यादृष्टि कहिए है ॥ ८ ॥

पूर्णः कुहेतुदृष्टांतैर्न तत्वं प्रतिपद्यते।
मंडलश्चर्मकारस्य भोज्य चर्मलवैरिव ॥ ९ ॥

अर्थ—खोटे हेतु दृष्टांतनि करि भरया पुरुष तत्वकौ प्राप्त न होय है जैसे चर्मके टूकडानि करि पूर्ण चमारका कुत्ता भोजनकौ प्राप्त न होय है ।

भावार्थ—जैसै चमारका कुत्ता चर्मके टूकडे खाय है ताको भोजन न रुचै तैसै खोटे हेतु दृष्टांतनि करि सहित मिथ्यादृष्टी तत्वकौ न पावै है सो गृहीत मिथ्यादृष्टी है ॥ ९ ॥

अतथ्यं मन्यते तथ्यं विपरीतरुचिर्जनः ।
दोषातुरमनास्तिक्तं ज्वरीव मधुरं रसम् ॥ १० ॥

अर्थ—जैसै वातपित्तादि दोषनि करि आतुर जो ज्वरसहित पुरुष सो मिष्टरसकौ कटुक मानै है तैसै विपरीत है रुचि जाकै ऐसा जीव सत्यार्थको असत्यार्थ मानै है, यहु विपरीत मिथ्यादृष्टी जानना ॥ १० ॥

दीनो निसर्गमिथ्यात्वात्तत्वातत्वं न बुध्यते ।
सुंदरासुंदरं रूपं जात्यंध इव सर्वथा ॥ ११ ॥

अर्थ—जैसै जनमका अंधा पुरुष सर्वथा सुंदर वा असुंदर रूपकौ न जानै है तैसै दीन एकेन्द्रियादि अज्ञानी जीव स्वभावजनित मिथ्यात्वतैं तत्वकौ न जानैहै, ऐसा निसर्ग मिथ्यात्वका स्वरूप कह्या ॥ ११ ॥

देवो रागी यतिः संगी धर्मः प्राणिनिशुंभनम् ।
मूढदृष्टिरिति ब्रूते युक्तायुक्ताविवेचकः ॥ १२ ॥

अर्थ—योग्य अयोग्यके विवेकरहित मूढहै दृष्टि जाकी ऐसा पुरुष सो रागी देव अर परिग्रहधारी गुरू, जीवनिकी हिंसारूप धर्म ऐसे कहैहै यह विपरीतमिथ्यादृष्टिलक्षण कह्या ॥ १२ ॥

सप्तप्रकारमिथ्यात्वमोहितेनेति जंतुना ।
सर्वं विषाकुलेनेव विपरीतं विलोक्यते ॥ १३ ॥

अर्थ—ऐसे सातप्रकार मिथ्यात्वकरि मोहित जो जीव ताकरि विषाकुलकी ज्यौं सर्व विपरीत देखिए है ॥ १३ ॥

न तत्वं रोचते जीवः कथ्यमानमपि स्फुटम् ।
कुधीरुक्तमनुक्तं वा निसर्गेण पुनः परम् ॥ १४ ॥

अर्थ—कुबुद्धी जीव प्रगट उपदेश्या तत्वकौं भी नहीं श्रद्धान करैहै। बहुरि कह्या वा विना कह्या जो अतत्व ताहि स्वभावकरिही श्रद्धान करैहै ॥ १४ ॥

पठन्नपि वचो जैनं मिथ्यात्वं नैव मुंचति ।
कुदृष्टिः पन्नगो दुग्धं पिवन्नपि महाविषम् ॥ १५ ॥

अर्थ—जैसै दुग्धकौ पीवता भी सर्प महाविषकौं न त्यागैहै तैसैं मिथ्यादृष्टि जीव जिनवचनकौ पढता भी मिथ्यात्वकौ न त्यागैहै ॥१५॥

उदये दृष्टिमोहस्य मिथ्यात्वं दुःखकारणं ।
घोरस्य सन्निपातस्य पंचत्वमिव जायते ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसै घोर सन्निपातके उदय होतसंतै मरण होय है तैसैं दर्शनमोहका उदय होतसंतै दुःखका कारण मिथ्यात्व होयहै ॥ १६ ॥

बहु बध्नाति यःकर्म्म स्तोकं भुंक्ते कुदर्शनः ।
स भवारण्यदुःखेभ्यो विमोक्षं लक्ष्यते कथं ॥ १७ ॥
अंजलिं वल्भमानस्य पुरुषस्य दिने दिने ।
धान्यस्य गृह्णतः खारी कदा धान्यविमुक्तता ॥ १८ ॥
न वक्तव्यमिति प्राज्ञैः कदाचन यतो भवी ।
कर्म भुंक्ते बहु स्तोकं स्वीकरोति विसंशयं ॥ १९ ॥
अन्यथैकेन जीवेन सर्वेषां कर्मणां ग्रहे ।
सर्वेषां जायतेऽन्येषां न कथं मुक्तिसंगतिः ॥ २० ॥

समस्तानां तथैकेन पुद्गलानां ग्रहेंगिना।
अनंतानंतकालेन न बंधः सांतरः कथम् ॥ २१ ॥

अर्थ—जो मिथ्यादृष्टी बहुत कर्म बांधैहै अर थोडा कर्म भोगैहै सो संसारवनके दुःखनितै मोक्ष कैसै पावैगा ॥ १७ ॥

अर्थ—जैसै दिनदिन विषै धान्यकी अंजली खाते अर खारी ग्रहण करते कै धान्यका वीतना कदे हूनौ होय ॥ १८ ॥

ऐसैं कोऊ कहै तासै आचार्य कहै है,—

वुद्धिवाननि करि " न वक्तव्यं " कहिए ऐसा कहना कदाचित् योग्य नाहीं, जातै संसारी जीव निश्चयतै बहुत कर्म भोगै है अर थोडा अंगीकार करै है ॥ १९ ॥

जो ऐसे नहीं होय तौ एक जीव करि सर्व कर्मनिका ग्रहण होतसंतै वाकी और सर्व जीवनिकै मुक्तिकी प्राप्ति कैसै न होय ॥ २० ॥

वहुरि तैसैंही एक जीवकरि सर्व पुद्गलनिका ग्रहण न होतै जीवनिकै अनंतानंत कालकरि अंतरसहित वंध कैसै न होय ऐसा उत्तर है ॥ २१ ॥

सस्यानीवोपरे क्षेत्रे निक्षिप्तानि कदाचन।
न व्रतानि प्ररोहंति जीवे मिथ्यात्ववासिते ॥ २२ ॥

अर्थ—जैसै ऊपर भूमिविषै वोए भए धान्य कदाचित् न उपजै है तैसै मिथ्यात्वकरि वासित जो जीव ताविषै व्रत नाहीं होय है॥२२॥

मिथ्यात्वेनानुविद्धस्य शल्येनेव महीयसा।
समस्तापन्निधानेन जायते निर्वृतिः कुतः ॥ २३ ॥

अर्थ—जैसै महाशल्यकरि अनुविद्ध पुरुषकै सुख कहांतै होय? तैसैं समस्त आपदानिका निधान जो मिथ्यात्व ताकरि अनुविद्ध पुरुषकैं सुख काहेतै होय है? नांहीं होय है ॥ २३ ॥

षोढानायतनं जंतोः सेवमानस्य दुःखदं।
अपथ्यमिव रोगित्वं मिथ्यात्वं परिवर्द्धते ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसैं अपथ्यकौं सेवन करते कै रोगीपना बढै है तैसें दुःखदायक जो छह प्रकार अनायतन ताकूं सेवता जो पुरुष ताकै मिथ्यात्व बढै है ॥ २४ ॥

मिथ्यादर्शनविज्ञानचारित्रैः सह भाषिताः।
तदाधारजनाः पापाः षोढाऽनायतनं जिनैः ॥ २५ ॥

अर्थ—मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र इन तीननि करि सहित पापरूप तिन मिथ्यादर्शनादिकके आधार मनुष्य ऐसे छह प्रकार अनायतन जिनदेवनि करि कहे है।

भावार्थ—मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र ये तीन; अर तिनके धारक पुरुष तीन, ऐसै छह अनायतन जानना। आयतन नाम ठिकानेका है सो ये धर्मके ठिकाने नांहीं तातै अनायतन कहे हैं ॥ २५ ॥

एकैकं न त्रयो द्वे द्वे रोचंते न परे त्रयः।
एकस्त्रीणीति जायंते सप्ताप्येते कुदर्शनाः ॥ २६ ॥

अर्थ—तीन तौ सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रविषै एककौ न मानैहै। अर और तीन मिथ्यादृष्टी दोयकौं न मानैंहै। बहुरि एक तीननकौ न जानैहै ऐसै ये सात मिथ्यादृष्टी होय हैं ॥ २६ ॥

दवीयः कुरुते स्थानं मिथ्यादृष्टिरभीप्सितम्।
अन्यत्र गमकारीव घोरैर्युक्तो व्रतैरपि ॥ २७ ॥

अर्थ—घोर व्रतनि करि सहित भी मिथ्यादृष्टि वांछित स्थानकौं अन्य स्थान जानेवालेकी ज्यौं अतिदूर करै है।

भावार्थ—जैसै मारगतै अन्यत्र चलनेवाला बहुत चालता भी वांछित स्थानकौं उलटा दूर करैहै तैसैं मिथ्यादृष्टी घोर तप करता भी वांछित मोक्षपदकौ उलटा दूरि करैहै कर्म बांधैहै, ऐसा जानना ॥ २७ ॥

न मिथ्यात्वसमः शत्रुर्न मिथ्यात्वसमं विषम्
न मिथ्यात्वसमो रोगो न मिथ्यात्वसमं तमः ॥ २८॥

अर्थ—मिथ्यात्वसमान वैरी नांहीं, अर मिथ्यात्वसमान विष नांहीं, अर मिथ्यात्वसमान रोग नांहीं, अर मिथ्यात्वसमान अंधकार नांहीं२८

द्विषद्विषतमोरोगैर्दुःखमेकत्र दीयते।
मिथ्यात्वेन दुरंतेन जंतोर्जन्मनि जन्मनि ॥ २९ ॥

अर्थ—वैरी, विष, अंधकार रोग इन करि दुःख एक जन्मविषै दीजिए है। अर दूर है अंत जाका ऐसा जो मिथ्यात्व ताकरि जीवकौं जन्म जन्मविषै दुःख दीजिए है ॥ २९ ॥

वरं ज्वालाकुले क्षिप्तो देहिनात्मा हुताशने।
न तु मिथ्यात्वसंयुक्तं जीवितव्यं कथंचन ॥ ३० ॥

अर्थ—ज्वालानि करि आकुल जो अग्नि ताविषै तौ आत्मा खेप्या भला परंतु मिथ्यात्वसहित जीवना कोई प्रकार भला नाहीं ॥ ३० ॥

पापे प्रवर्त्यते येन येन धर्मान्निवर्त्यते।
दुःखे निक्षिप्यते येन तन्मिथ्यात्वं न शांतये ॥३१॥

अर्थ—जिस मिथ्यात्व करि पापविषै प्रवृत्ति कराइये है, अर धर्मतैं पराम्मुख करिए है, अर दुःखविषै पटकिये है सो मिथ्यात्व शांतिके अर्थ नांहीं।

भावार्थ—मिथ्यात्वसेवन करि कोऊ शांति मानै सो मिथ्यात्वकरि शांति न होय है उलटा विघ्न होयहै ऐसा जानना ॥ ३१ ॥

क्षेत्रस्वभावतो घोरा निरंता दुःसहाश्चिरम्।
विविधा दुर्वचाः श्वभ्रे कायमानससंभवाः ॥ ३२ ॥
दाहवाहांकनच्छेदशीतवातादिगोचराः।
परायत्तेषु तिर्यक्षु विवेकरहितात्मसु ॥ ३३ ॥
दैन्यदारिद्र्यदौर्भाग्यरोगशोकपुरःसराः।
आर्यम्लेच्छप्रकारेषु मानुषेषु निरंतराः ॥ ३४ ॥
स्वस्य हानिं परस्पार्द्धिमीक्षमाणेषु मानिषु।
योज्यमानेषु देवेषु हठतः प्रेष्यकर्मणि ॥ ३५ ॥
मिथ्यात्वेन दुरंतेन विधीयंते शरीरिणाम्।
वेदना दुःसहा भीमा वैरिणेव दुरात्मना ॥ ३६ ॥

अर्थ—क्षेत्रके स्वभाव करि भयानक अर अंतरहित दुःख करि सहे जाय ऐसे नानाप्रकार दुर्वचनतै उपजी वा शरीर मनतैं उपजी बहुत कालपर्यंत नरकविषै जे दुःखवेदना होते, बहुरि विवेकरहित पराधीन तिर्यंचयोनि मे दाहदेना बांधना चिह्नकरना शीत वात इत्यादिकतैं उपजी पीडा, बहुरि आर्यम्लेच्छ है भेद जिनके ऐसे मनुष्यनिविषै निरंतर दीनपना दारिद्र्यपना दुर्भाग्यपना रोग शोक आदि अनेक वेदना, बहुरि हठतै चाकरके कर्मविषै युक्त भये अर अपनी हानि अर दूसरेनकी वृद्धि देखनेतै ऐसे मानी देवनिविषै दुःखकरि सुनी जाय ऐसी भयानक वेदना दुष्ट वैरीकी ज्यों दूर है अंत जाका ऐसा जो मिथ्यात्व ता करि जीवनिकै करिये है।

भावार्थ—चारगति संबंधी दुःखनिका मूल कारण एक मिथ्यात्व है ऐसा जानना ॥ ३६ ॥

यान्यन्यान्यपि दुःखानि संसारांभोधिवर्त्तिनाम्।
न जातु यच्छता तानि मिथ्यात्वेन विरम्यते ॥ ३७ ॥

अर्थ—संसारसमुद्रवर्त्ती प्राणीनिकौ और भी जे दुःख है। तिनहिं देता जो मिथ्यात्व ताकरि अंतकौ प्राप्त न हूजिये है।

भावार्थ—और भी अनेक दुःखनिकौ देता मिथ्यात्व गमन न पाय है, निरंतर दुःख देय है॥ ३७॥

विवेको हन्यते येन मूढता येन जन्यते।
मिथ्यात्वतः परं तस्मात् दुःखदं किमु विद्यते॥ ३८॥

अर्थ—जिस करि विवेक हनिये है अर अचेतपना उपजाइयेहै, ता मिथ्यात्वसिवाय कहा और दुःख देनेवाला है? अपि तु नांहीहै॥ ३८॥

लब्धं जन्मफलं तेन सार्थकं तस्य जीवितम्।
मिथ्यात्वविषमुत्सृज्य सम्यक्त्वं येन गृह्यते॥ ३९॥

अर्थ—जिस जीव करि मिथ्यात्वविषकौ त्यागिकै सम्यक्त्वकौं ग्रहण करिये है, तिस जीव करि जन्मका फल पाया, अर ताका जीवना सार्थक है प्रयोजन सहित है॥ ३९॥

भव्यः पंचेंद्रियः पूर्णो लब्धकालादिलब्धिकः।
पुद्गलार्द्धपरावर्त्ते काले शेषे स्थिते सति॥ ४०॥
अंतर्मुहूर्त्तकालेन निर्मलीकृतमानसः।
आद्यं गृह्णाति सम्यक्त्वं कर्मणां प्रशमे सति॥ ४१॥

अर्थ—भव्यजीव पंचेंद्रिय पर्याप्तक अर पाई है कालादिलब्धि जानै अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकाल बाकी रहे संतै अंतर्मुहूर्त्त काल करि निर्मल किया है मन जानैं ऐसो जीव कर्मनिका उपशम होतेसंतैं प्रथमोपशमसम्यक्त्वकौं ग्रहण करैहै॥ ४०॥ ४१॥

निशीथं वासरस्येव निर्मलस्य मलीमसम्।
पश्चादायाति मिथ्यात्वं सम्यक्त्वस्यास्य निश्चितम्॥४२॥

अर्थ—जैसैं निर्मल दिनके पाछै अवश्य मलिन रात्रि आवैहै तैसैं इस प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अंतर्मुहूर्त्तपाछैं अवश्य मिथ्यात्व आवै है ॥४२॥

तस्य प्रपद्यते पश्चान्महात्मा कोऽपि वेदकम् ।
तस्यापि क्षायिकं कश्चिदासन्नीभूतनिर्वृतिः ॥ ४३ ॥

अर्थ—ताके पीछै कोई महात्मा पुरुष वेदकसम्यक्त्वकौं प्राप्त होय है, अर कोई महात्मा पुरुष जाकै मुक्ति आसन्न है सो क्षायिक-सम्यक्त्वकौं प्राप्त होय है ॥ ४३ ॥

आगैं सम्यक्त्व होनेका विशेष स्वरूप कहैं हैं;—

लब्धशुद्धपरीणामः कल्मषस्थितिहानिकृत् ।
अनंतगुणया शुद्ध्या वर्द्धमानः क्षणे क्षणे ॥ ४४ ॥
प्रकृतीनामशस्तानामनुभागस्य खर्वकः ।
वर्द्धकः पुनरन्यासां युक्तायुक्तविवेचकः ॥ ४५ ॥
स्थितेंऽतःकोटिकोटीकस्थितिके सति कर्मणि ।
अथाप्रवृत्तिकं नाम करणं कुरुते पुरा ॥ ४६ ॥
अपूर्वं करणं तस्मात्तस्मादप्यनिवृत्तिकम् ।
विदधाति परीणामः शुद्धकारी क्षणे क्षणे ॥ ४७ ॥

अर्थ—पायाहै विशुद्ध परिणाम जानै, बहुरि पापप्रकृतिनिकी स्थि-तिकी हानि करनेवाला समय समय अनंतगुणशुद्धि करि वर्द्धमान होता संता ॥ ४४ ॥

अप्रशस्त प्रकृतिनिके अनुभागका घटावनेवाला बहुरि अन्य प्रशस्त प्रकृतिनिके अनुभागकौ बढावनेवाला योग्य अयोग्यका विवेकवान ॥ ४५ ॥

ऐसा जीव अंतःकोटाकोटी सागर प्रमाणहै स्थिति जाकी ऐसे कर्मकौ स्थिति होतेसंतै प्रथम अधःप्रवृत्तिनाम करणकौ करैहै ॥ ४६ ॥

वहुरि ता पीछैं समय समय परिणामनिकी शुद्धि करता अपूर्व करण करैहै ता पीछै अनिवृत्ति करणकौं करैहै ॥ ४७ ॥

भावार्थ—उपशमसम्यक्त्वके अंतर्मुहूर्त्त पहले अधःकरण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण ऐसे तीन करण होयहै । इनका विशेषस्वरूप श्रीमद्गोमट्टसारविषै कह्याहै तहांतैं जानना ॥

तत्राद्यकरणे नास्ति छेदः स्थित्यनुभागयोः ।
अनंतगुणया शुद्ध्या कर्म वध्नाति केवलम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—तहां आदिके अधःकरणविषै स्थिति अनुभागका छेद नाहींहै अनंतगुणविशुद्धिताकरि केवल पुण्यकर्मकौ वांधैहै ॥ ४८ ॥

द्वितीयं कुरुते तत्र किंचित्स्थितिरसक्षयम् ।
शुभानामशुभानां च वर्द्धयन् ह्रासयन् रसम् ॥ ४९ ॥

अर्थ—वहुरि तहां दूजा जो अपूर्वकरण है सो किछू स्थितिकांडकघात वा अनुभागकांडक घातकौ करैहै । कैसा है सो अपूर्वकरण अतिशयकरि समय समय प्रति शुभप्रकृतिनकौ वढावै है अर अशुभ प्रकृतिनकूं घटावैहै ॥ ४९ ॥

अंतर्मुहूर्त्तकः कालस्तेषां प्रत्येकमिष्यते ।
आदिमे कुरुते तस्मिन्नांतरं करणं परम् ॥ ५० ॥

अर्थ—उनमें प्रत्येकका अंतर्मुहूर्त्तकाल जानना, जामे आदिके प्रथममें आंतर करणकौ करैहै ॥ ५० ॥

आंतरे करणे तत्र सहानंतानुवंधिभिः ।
अंतर्मुहूर्त्तकालेन मिथ्यात्वमपवर्तते ॥ ५१ ॥

अर्थ—तिस अंतर करणविषै अंतर्मुहूर्त्तकालकरि अनंतानुवंधीसहित मिथ्यात्वका अपवर्तन करैहै ॥ ५१ ॥

मिथ्वात्वं भिद्यते भेदैः शुद्धाशुद्धविमिश्रकैः।
ततः सम्यक्त्वमिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वनामभिः ॥ ५२ ॥

अर्थ—ताके अंतर शुद्ध अशुद्ध करि मिले जे सम्यक्त्व मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व हैं नाम जिनके ऐसे भेदनि करि मिथ्यात्व भेदरूप कीजिएहै।

भावार्थ—प्रथमोपशम सम्यक्त्व करि मिथ्यात्वका द्रव्य, मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्वप्रकृतिरूप परिणमवैहै ॥ ५२ ॥

प्रशमय्य ततो भव्यः कर्मप्रकृतिसप्तकम्।
आंतर्मौहूर्त्तिकं पूर्वं सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते ॥ ५३ ॥

अर्थ—ताके अनंतर भव्यजीव सात कर्मप्रकृतिनिकौं उपशमाय-करि अंतर्मुहूर्त्तहै स्थिति जाकी ऐसा प्रथमसम्यक्त्वकौं प्राप्त होयहै।

भावार्थ—अनादि मिथ्यादृष्टितौ मिथ्यात्व अर अनंतानुबंधी चतुष्क ऐसें पांच प्रकृतिनिकों अर सादि मिथ्यादृष्टि अनंतानुबंधीसहित तीनप्रकृतिनकौं उपशमाय सम्यक्त्वी होयहै यह विशेषहै ॥ ५३ ॥

आगैं क्षायिकसम्यक्त्वकौं कहैहैं,—

क्षपयित्वा परः कश्चित्कर्मप्रकृतिसप्तकम्।
आदत्ते क्षायिकं पूर्वं सम्यक्त्वं मुक्तिकारणम् ॥ ५४ ॥

अर्थ—बहुरि दूजो कोई जीव कर्मप्रकृतिनिका सप्तक जो अनंता-नुबंधी च्यार कषाय अर मिथ्यात्व मिश्र, सम्यक्त्वप्रकृति इन सात प्रकृति-निकौं खिपाय करि प्रथम मुक्तिका कारण जो क्षायिकसम्यक्त्व-ताहिग्रहण करैहै ॥ ५४ ॥

प्रशमे कर्मणां षण्णामुदयस्य क्षये सति।
आदत्ते वेदकं बंद्यं सम्यक्त्वस्योदये सति ॥ ५५ ॥

अर्थ—अनंतानुबंधी कषाय च्यारि अर मिथ्यात्व, मिश्रमिथ्यात्व इन छह कर्मनिका उपशम होतसंतैं अर उदयका क्षय होतसंतैं अर सम्यक्त्व

प्रकृतिका उदय होतसंतै वंदनेयोग्य जो वेदकसम्यत्तव ताहि ग्रहण करैहै ।

भावार्थ—वर्त्तमानमें उदय आवनेयोग्य निपेकनिका उदयका अभाव है लक्षण जाका ऐसा तो क्षयहो, तै संतै अर ता पीछैं उदय आवने योग्य निपेक ते उदीरणारूप होय वर्त्तमानमें उदय न आवैं ऐसैं तिनकी सत्ता है लक्षण जाका ऐसा उपशम अर सम्यक्त्वप्रकृति देशघातीहै ताका उदय होतैं वेदकसम्यक्त्व होयहै जातै जाके उदयसैं मळ उपजै अर गुणका अंश भी वन्या रहै ऐसा देशघातीका लक्षण सर्वत्र कह्याहै ॥ ५५ ॥

आदिमं त्रितयं हित्वा गुणेपु सकलेष्वपि ।
सम्यक्त्वं क्षायिकं ज्ञेयं मोक्षलक्ष्मीसमर्पकम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—आदिके मिथ्यात्व सासादन मिश्र ए तीन गुणस्थाननिकौं छोडकरि सर्वेही गुणस्थाननिविपैं मोक्षलक्ष्मीका देनेवाला क्षायिक सम्यत्क्व जानना ॥ ५६ ॥

तुर्यादारभ्य विज्ञेयमुपशांतांतमादिमम् ।
चतुर्थे पंचमे पष्ठे सप्तमे वेदकं पुनः ॥ ५७ ॥

अर्थ—चौथे गुणस्थानतै लगाय उपशांतकपाय पर्यंत आदिका उपशमसम्यक्त्व जानना । वहुरि चौथे पांचवें छठे सातवे गुणस्थान विपैं वेदकसम्यक्त्व जानना ॥ ५७ ॥

साध्यसाधनभेदेन द्विधा सम्यक्त्वमिष्यते ।
कथ्यते क्षायिकं साध्यं साधनं द्वितयं परम् ॥ ५८ ॥
प्रथमायां त्रयं पृथ्व्यामन्यासु क्षायिकं विना ।
सम्यक्त्वमुच्यते सद्भिर्भवभ्रमणसूदनम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—साध्य साधनके भेद करि दोय प्रकार सम्यक्त्व कहिये है, क्षायिक साधने योग्य है अर उपशम वेदक ये दोय साधन हैं ।।५८।।

प्रथम पृथ्वीविषै संसार भ्रमणके नाशक तीनों सम्यक्त्व हैं अर छह पृथ्वीनविषैं क्षायिक विना दोय सम्यक्त्व पंडितनि करि कहिए हैं।५९।

तिर्यङ्मानवदेवानां सम्यक्त्वं त्रितयं मतम् ।
न निर्लिपीतिरश्चीनां क्षायिकं विद्यते परम् ।। ६० ।।

अर्थ—तिर्यंच मनुष्य देवनिकै तीनों ही सम्यत्क्त्र कहे हैं, अर देवांगना तिर्यंचनीनिकैं एक क्षायिक सस्यक्त्व नाहीं है ।। ६० ।।

क्षायोपशमिकस्योक्ताः षट्षष्टिर्जलराशयः ।
आंतर्मौहूर्त्तिकी ज्ञेया प्रथमस्य परा स्थितिः ।। ६१ ।।

अर्थ—क्षयोपशम सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति छयासठि सागरकी कही, अर उपशम सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति अंतर्मुहूर्त्तकी जाननी ।।६१।

पूर्वकोटिद्वयोपेतास्त्रयस्त्रिंशन्नदीशिनः ।
ईषदूनास्थितिर्ज्ञेया क्षायिकस्योत्तमा बुधैः ।। ६२ ।।

अर्थ—किंचित् ऊन दोय कोटि पूर्वसहित तेतीस सागरकी क्षायिक सम्यक्त्वकी स्थिति पंडितनि करि जाननी योग्य है ।। ६२ ।

अधस्तात् श्वभ्रभूषट्के सर्वत्र प्रमदाजने ।
निकायत्रितयेऽपूर्णे जायते न सुदर्शनः ।। ६३ ।।

अर्थ—नीचैं तै लेकरि छह नरकनिविषै, सर्वत्र स्त्रीन विषैं अर ज्योतिषी भवनवासी व्यंतर इन तीन निकाय देवनिविषैं अपर्याप्तमें सम्यग्दर्शन न होय है ।। ६३ ।।

पंचाक्षं संज्ञिनं हित्वा परेषु द्वादशस्वपि ।
उत्पद्यते न सद्दृष्टिर्मिथ्यात्वबलभाविषु ।। ६४ ।।

अर्थ—पंचेंद्रिय संज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त, इनि दोय जीवसमासनिकौ वर्जिकरि और मिथ्यात्वके वलकरि उपजनेवाले जे वादर एकेंद्रिय सूक्ष्म एकेंद्रिय वे इंद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय अर असंज्ञी पंचेंद्रिय तिनके पर्याप्त अर अपर्याप्त ऐसै वारह जीवसमासनि विपैं सम्यग्दृष्टी न उपजै है ॥ ६४ ॥

वीतरागं सरागं च सम्यक्त्वं कथितं द्विधा ।
विरागं क्षायिकं तत्र सरागमपरं द्वयम् ॥ ६५ ॥

अर्थ—वीतराग अर सराग ऐसैं सम्यक्त्व दोय प्रकार कह्या है । तहां क्षायिक सम्यक्त्व वीतराग है, अर क्षयोपशम, उपशम ए दोय सम्यक्त्व सरागहै ॥ ६५ ॥

संवेगप्रशमास्तिक्यकारुण्यव्यक्तलक्षणम् ।
सरागं पटुभिर्ज्ञेयमुपेक्षालक्षणं परम् ॥ ६६ ॥

अर्थ—संवेग कहिये धर्मतैं अनुराग, प्रशम कहिये कषायनिकी मंदता, आस्तिक्य कहिये आप्त आगम पदार्थनिविपै 'है ऐसेहीहै' ऐसा भाव, कारुण्य कहिये दयाभाव, ए है प्रगट लक्षण जाका सो सराग-सम्यक्त्व पंडितनिकरि जानना । वहुरि उपेक्षा जो वीतरागता, सो है लक्षण जाका ऐसा दूसरा वीतराग सम्यक्त्व जानना ॥ ६६ ॥

निसर्गाधिगमौ हेतू तस्य वाह्यावुदाहृतौ ।
लब्धिः कर्मशमादीनामंतरंगो विधीयते ॥ ६७ ॥

अर्थ—ता सम्यक्त्वके निसर्ग कहिए स्वभाव, अधिगम कहिए उपदेश पावना ये दोऊ वाह्य कारण कहेहै, अर कर्मनिके उपशमादिकनिकी जो प्राप्ति सो अंतरंग कारण कहियेहैं ॥ ६७ ॥

सम्यक्त्वाध्युषिते जीवे नाज्ञानं व्यवतिष्ठते ।
भास्वता भासिते देशे तमसः कीदृशी स्थितिः ॥ ६८ ॥

अर्थ—सम्यक्त्वकरि सहित जीवविषैं अज्ञान न तिष्ठैहै, जैसैं सूर्य-करि प्रकाशित क्षेत्रविषै अंधकारकी स्थिति कैसी ?।

भावार्थ—जैसैं सूर्यके प्रकाश होते अंधकार न होय तैसैं सम्यक्त्व होतैं अज्ञान न होय है ॥ ६८ ॥

न दुःखबीजं शुभदर्शनक्षितौ
कदाचन क्षिप्तमपि प्ररोहति।
सदाप्यनुप्तं सुखबीजमुत्तमं
कुदर्शने तद्विपरीतमीक्ष्यते ॥ ६९ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शनरूप पृथ्वीविषै दुःखका बीज बोयाभी कदाचित् न उगैहै बहुरि विना बोयाभी उत्तम सुखका बीजसदा उगैहै। बहुरि मिथ्यादर्शनविषैं सो विपरीत देखियेहै।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीकैं कोई दुःखका कारण पाय कर्म बंध्या होय तो सोभी सुखका कारण होय परिणमैहै ऐसा जानना ॥ ६९ ॥

सम्यक्त्वमेघः कुशलांबुवंदितं
निरंतरं वर्षति धौतकल्मषः।
मिथ्यात्वमेघो व्यसनांबुनिंदितं
जनावनौ क्षालितपुण्यसंचयः ॥ ७० ॥

अर्थ—धोयेहैं पापरूप मल जानैं ऐसा सम्यक्त्वरूप मेघहै सो निरंतर जनरूप भूमिविषैं पूजनीक कल्याणरूप जलकौं बरसैहै। बहुरि मिथ्यात्वरूप मेघ, धोयाहै दूरि कियाहै पुण्यका संचय जानै सो जनरूप भूमिविषैं निंदनीक कष्टरूप जलकौ वरसैहै ॥ ७० ॥

न भीषणो दोषगणः सुदर्शने
विगर्हणीयः स्थिरतां प्रपद्यते।

भुजंगमानां निवहोऽवतिष्ठते
कदा निवासेऽध्युषिते गरुत्मता ॥ ७१ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शनके होतसतै भयानक निंदने योग्य जो दोषनिका समूह सो स्थिरताकौं न प्राप्त होयहै। जैसै गरुडकरि सहित जो स्थान ताविषैं सर्पनका समूह कब तिष्ठै ?।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन होतैं मिथ्यात्वादिदोष न रहैहै, ऐसा जानना ॥ ७१ ॥

विवर्द्धमाना यमसंयमादयः
पवित्रसम्यक्त्वगुणेन सर्वदा।
फलंति हृद्यानि फलानि पादपाः
घनोदकेनेव मलापहारिणा ॥ ७२ ॥

अर्थ—जैसैं मलका हरणे वाला जो मेघका जल ताकरि वृक्षहै ते मनोहर फलनिकौं फलै है, तैसैं विशेषपने वर्द्धमान जे यमसंयमादिक ते पवित्र सम्यक्त्वगुण करि सदा फलैं हैं ॥ ७२ ॥

निषेवते यो विषयाभिलाषुको
निरस्य सम्यक्त्वमधीः कुदर्शनम्।
स राज्यमत्यस्य भुजिष्यतां स्फुटं
बृहत्त्वकांक्षी वृणुते दुराशयः ॥ ७३ ॥

अर्थ—जो विषयाभिलाषी अज्ञानी सम्यक्त्वकौ त्यागि करि मिथ्यादर्शनकौ सेवै है सो दुष्टचित्त बडप्पनका वांछक प्रगट राज्यकौं छोडि करि चाकरीकौ अंगीकार करै है ॥ ७३ ॥

आगैं संवेगादिक सम्यक्त्वके आठ गुण कहै है;—

तथ्ये धर्मे ध्वस्तहिंसाप्रपंचे
देवे रागद्वेषमोहादिमुक्ते।

साधौ सर्वग्रंथसंदर्भहीने
संवेगोऽसौ निश्चलो योऽनुरागः ॥ ७४ ॥

अर्थ—नष्ट भया है हिंसाका विस्तार जा विषैं ऐसा जो सांचा-धर्म ताविषैं तथा रागद्वेषमोहादिकरि रहित देवविषैं तथा सर्व परिग्रहसमूहकरि रहित साधुविषैं जो निश्चल अनुराग सो संवेग कह्या है ॥ ७४ ॥

देहे भोगे निंदिते जन्मवासे
कृष्टेष्वाशुक्षिप्तवाणास्थिरत्वे ।
यद्वैराग्यं जायते निःप्रकंपं
निर्वेदोऽसौ कथ्यते मुक्तिहेतुः ॥ ७५ ॥

अर्थ—निंदित शरीरविषै तथा भोगविषै बहुरि शीघ्र घाल्या जो बाण ता समान है अस्थिरपना जा विषैं ऐसे क्लेशरूप संसारवासविषैं जो निश्चल वैराग्य उपजै है सो यहु मुक्तिका कारण निर्वेद कहिये है ॥ ७५ ॥

कांतापुत्रभ्रातृमित्रादिहेतोः
शिष्टद्विष्टे निर्मिते कार्यजाते ।
पश्चात्तापो यो विरक्तस्य पुंसो
निंदा सोक्ताऽवद्यवृक्षस्य हंत्री ॥ ७६ ॥

अर्थ—स्त्री पुत्र भाई मित्र आदिके कारणतैं रागद्वेषरूप कार्यनिके समूहकौं रचे संतै जो विरक्त पुरुषके पश्चात्ताप होय सो पापवृक्षकी नाश करनेवाली निंदा कही है ॥ ७६ ॥

जाते द्वेषे द्वेषरागादिदोषै-
रग्रे भक्त्या लोचना या गुरूणां ।

पंचाचाराचारकाणामदोषा
सोक्ता गर्हा गर्हणीयस्य हंत्री ॥ ७७ ॥

अर्थ—द्वेष राग आदि दोषनिकरि दोष उपजते संतै पंचाचारके आचरण करावणेवाले जे गुरु तिनके आगैं भक्ति सहित जो आलोचना करिये अपने दोष कहिये सो निंदनीक पापके हरनेवाली दोष रहित गर्हा कही है ॥ ७७ ॥

रागद्वेषक्रोधलोभप्रपंचाः
सर्वानर्थावासभूता दुरंताः।
यस्य स्वांते कुर्वते न स्थिरत्वं
शांतात्मासौ शस्यते भव्यसिंहः ॥ ७८ ॥

अर्थ—सर्व अनर्थनिका घरसमान, दूर है अंत जिनका ऐसे जे राग द्वेष क्रोध लोभादिकनिके प्रपंचहै ते जाके चित्तविषै स्थिरताकौ न करै हैं सो यहु भव्य प्रधान, शांतहै आत्मा जाका ऐसा प्रशंसा रूप कीजिए है।

भावार्थ—तीव्र रागद्वेष जाके मनमें न होय सो उपशम गुण कहिये ॥ ७८ ॥

लोकाधीशाभ्यर्चनीयांघ्रिपद्मे
तीर्थाधीशे साधुवर्गे सपर्या।
या निर्व्याजाऽऽरभ्यते भव्यलोकै-
र्भक्तिः सेष्टा जन्मकांतारशस्त्री ॥ ७९ ॥

अर्थ—लोकनिके अधीश जे नरेंद्र नागेंद्र देवेंद्र तिन करि पूजनीक है चरन कमल जाके, ऐसे तीर्थनाथ भए भगवान तिन विषै तथा साधूनिके समूहविषैं भव्य जीवनिकरि जो कपटरहित पूजा आरंभिये है सो संसारवनके छेदनेवाली भक्ति इष्टरूप कहीहै ॥ ७९ ॥

कर्मारण्यं छेत्तुकामैरकामै-
धर्माधारे व्यापृतिः प्राणिवर्गे।
भैषाज्याद्यैः प्रासुकैर्वर्द्ध्यते या
तद्वात्सल्यं कथ्यते तथ्यबोधैः॥ ८०॥

अर्थ—कर्मवनके छेदनेके वांछक, वांछारहित ऐसे पुरुषनि करि धर्मके आधारभूत जीवनिके समूहविषै जो प्रासुक औषधि आदिकनि-करि वैयावृत्त्य बढाइये, करिए सो सत्यार्थज्ञानीनि करि वात्सल्यगुण कहिये है॥ ८०॥

जन्मांभोधौ कर्मणा भ्रम्यमाणे
जीवग्रामे दुःखिते नैकभेदे।
चित्तार्द्रत्वं यद्विधत्ते महात्मा
तत्कारुण्यं दर्श्यते दर्शनीयैः॥ ८१॥

अर्थ—संसारसमुद्रविषैं कर्मकरि भ्रमता अर दुःखित ऐसा अनेक प्रकार जो जीवनिका समूह ताविषै जो महापुरुष दयाभावकौं धारैहै सो कारुण्यभाव दर्शन करने योग्य जे आचार्यादिक तिनकरि दिखाइये है।

भावार्थ—संसारी जीवनिकौ देखि जो करुणा करणा सो करुणा-नाम सम्यक्त्व गुण कहियेहै॥ ८१॥

ऐसै सम्यक्त्वके आठ गुणनिका वर्णन किया अब तिनका फल दिखावैंहै;—

प्रवर्द्ध्यते दर्शनमष्टभिर्गुणैः
शरीरिणोऽमीभिरपास्तदूषणैः।
गुरूपदेशैरिव धर्मवेदनं
विधीयमानैर्हृदये निरंतरम्॥ ८२॥

अर्थ—जैसै निरंतर हृदयविषै रचेभये जे श्रीगुरूनके उपदेश तिनकरि धर्मका जानपणा वढैहै तैसैं जीवकैं दूपणरहित ये संवेगादि आठ गुण तिनकरि सम्यग्दर्शन वढैहै ॥ ८२ ॥

अपारसंसारसमुद्रतारकं
वशीकृतं येन सुदर्शनं परम्
वशीकृतास्तेन जनेन संपदः
परैरलभ्या विपदामनास्पदम् ॥ ८३ ॥

अर्थ—अपार संसारसमुद्रका तारनेवाला अर विपदानिका अनास्पद कहिये ठिकाना नाहीं ऐसा एक सम्यग्दर्शन जानै वश किया, अंगीकार किया ता पुरुपकरि औरनि करि न पावने योग्य ऐसी संपदा वश करी ॥ ८३ ॥

सुदर्शने लब्धमहोदये गुणाः श्रियो निवासा विकसंति देहिनि।
निरस्तदोषोपचये सरोवरे हिमेतरांशाविव पंकजाकराः ॥ ८४ ॥

अर्थ—पायाहै महाउदय जानैं ऐसे सम्यग्दर्शनके होतसंतैं जीवविषै लक्ष्मीके निवास जे गुण ते विकासमान होयहै, कैसा है सम्यग्दर्शन, निरस्तदोषोपचये कहिये दूरि किया है शोकादि दोपनिका समूह जानै। जैसैं सरोवरविषै दूरि कियाहै दोषा जो रात्रि ताका समूह जानै अर पायाहै महा उदय जानै अर भलाहै दर्शन जाका ऐसा सूर्यके होतसंतैं कमलनिके वन लक्ष्मीके निवास हैं ते विकसै है।

भावार्थ—लोक कहैहैं लक्ष्मी कमलनिविषै वसैहै ऐसा अलंकार वाक्यहै। इहां एक एक सूर्यपक्षविषै अर दर्शनपक्षविषै समान अर्थ होयहै ॥ ८४ ॥

दर्शनबंधोर्नपरो बंधुर्दर्शनलाभान्न परो लाभः।
दर्शनमित्रान्न परं मित्रं दर्शनसौख्यान्न परं सौख्यं॥८५॥

अर्थ—सम्यग्दर्शनरूप बांधवतैं सिवाय और दूसरा बांधव नाहीं अर दर्शनके लाभतै सिवाय और दूसरा लाभ नाहीं, अर दर्शनतैं सिवाय दूसरा मित्र नाहीं, अर दर्शनके सुखतैं सिवाय और दूसरा सुख नाहीं ॥ ८५।

लब्ध्वा मुहूर्त्तमपि ये परिवर्जयंते
सम्यक्त्वरत्नमनवद्यपदप्रदायि।
भ्राम्यंति तेऽपि न चिरं भववारिराशौ
तद्बिभ्रतां चिरतरं किमिहास्ति वाच्यम् ॥ ८६ ॥

अर्थ—पापरहित पदका देनेवाला जो सम्यक्त्वरत्न ताहि एक मुहूर्त्तभी पायकरि जो त्यागै है ते पुरुषभी ससारसमुद्रविषैं बहुतकाल नहीं भ्रमै है तो इहांतौ सम्यग्दर्शनकौ धारते पुरुषनिके कहा अतिशयकरि बहुत भ्रमण कहना योग्य है ?।

भावार्थ—एक मुहर्त्त भी सम्यग्दर्शन ग्रहण हो जाय तो संसार उत्कृष्ट किंचिदून अर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तनमात्र रहि जाय सो अनंतानंतकाल अपेक्षा थोडा ही कहिये। बहुरि जो सम्यग्दर्शनतै नहीं छूटै क्षायिक सम्यग्दृष्टी होय सो बहुत कैसै भ्रमै ?। याकैं तौ अतिनिकट संसार है ऐसा इहां आशय जानना ॥ ८६ ॥

पापं यदर्जितमनेकभवैर्दुरंतैः
सम्यक्त्वमेतदखिलं सहसा हिनस्ति।
भस्मीकरोति सहसा तृणकाष्ठराशिं
किं नोर्जितोज्वलशिखो दहनः समृद्धम् ॥८७॥।

अर्थ—जो पाप दूर है अंत जिनका ऐसे अनेक भवनिकरि उपार्ज्या सो इस समस्त पापकौ सम्यक्त्व शीघ्र ही नाश करै है। इहां दृष्टांत कहै है;—बड़ी उज्ज्वल है शिखा जाकी ऐसा जो अग्नि सो

वृद्धिकौं प्राप्त होता जो तृण अर काष्ठनका समूह ताहि शीघ्रही कहा भस्म न करै है ? करैही है ॥ ८७ ॥

नैव भवस्थितिवेदिनि जीवे
दर्शनशालिनि तिष्ठति दुःखम्।
कुत्र हिमस्थितिरस्ति हि देशे
ग्रीष्मदिवाकरदीधितिदीप्ते ॥ ८८ ॥

अर्थ—संसारकी स्थितिका ज्ञाननेवाला अर सम्यग्दर्शनकरि शोभित ऐसा जो जीव ताविषै दुःख नहीं तिष्ठै है। जैसें ग्रीष्मके सूर्यकी किरणकरि तप्त जो क्षेत्र ता विषै शीतकी स्थिति कहांतैं होय ? अपि तु नाहीं होय है ॥ ८८ ॥

भुवनजनताजन्मोत्पत्तिप्रबंधनिषूदनी[1]
जिनमतरुचिश्चिंतामण्या यकैरुपमीयते।
त्रिदशसरणिं ते भाषंते समां परमाणुना
प्रभवति मतिर्मिथ्या मिथ्यादृशामथ वा सदा॥८९॥

अर्थ—लोकके जीवनिकैं संसारकी उत्पत्तिके प्रबंधकी नाशकरनेवाली ऐसी जो जिनमतकी रुचि श्रद्धा सो जिनिकरि चिंतामणिकरि उपमा दीजिये (जिनमतकी श्रद्धाकौ चिंतामणिकी उपमा देयहै) ते आकाशकौं परमाणुके समान कहैहै। अथवा मिथ्यादृष्टिकी बुद्धि सदा मिथ्यारूप होयहीहै ताका कहा आश्चर्यहै ? ॥ ८९ ॥

अवहितनाः सद्मोत्संगं निधानमिवोत्तमं
नयति हृदयं यः सम्यक्त्वं शशांककरोज्वलम्।
अमितगयः क्षिप्रं लक्ष्म्यः श्रयंति तमादृता
निरुपमगुणाः कांतं कांतं स्वयं प्रमदा इव ॥ ९० ॥

---

[1] 'जन्मोत्पत्ति, के स्थान पर नष्टोत्पत्ति, पाठ ठीक है।

अर्थ—जैसैं एकाग्रहै मन जाका ऐसा पुरुष घरके मध्यभाग प्रति निधानकौं प्राप्त करै तैसैं जो हृदय प्रति चंद्रमाकी किरणसमान उज्ज्वल सम्यक्त्वकौं प्राप्त करैहै, ता पुरुषकौं जैसै सुंदरपतिकौं आदर-सहित स्त्री हैं ते स्वयमेव शीघ्रही सेवैहै तैसै उपमारहितहैं गुण जिनके अर प्रमाणहै ज्ञानदर्शन जिनविषै ऐसी आदरसहित इंद्रादि-पदकी लक्ष्मी स्वयमेव सेवैहै ॥ ९० ॥

दोहा ।

विपरीताभिनिवेश तजि भजि निर्मल श्रद्धान ।
याके धारक अमितगति लहत सकल कल्यान ॥

ऐसैं श्री अमितगति आचार्यकृत श्रावकाचारविषैं
द्वितीय परिच्छेद समाप्त भया ।
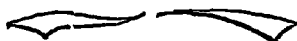
तीसरा परिच्छेद ।

आगै सम्यग्दर्शनके विषय जे जीवादिक पदार्थ तिनिका वर्णन करैहैं,—

> जीवाजीवादितत्वानि ज्ञातव्यानि मनीपिणा ।
> श्रद्धानं कुर्वता तेषु सम्यग्दर्शनधारिणा ॥ १ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शनका धारणेवाला अर तिन जीवादिकनिविषै श्रद्धानकौ करता ऐसा जो पंडितपुरुष ताकरि जीव अजीव आदि तत्वहै ते जानने योग्य है ।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनकी निर्मलताके अर्थ जीवादिपदार्थ विस्तारसहित जानने योग्य है ॥ १ ॥

> तत्र जीवा द्विधा ज्ञेया मुक्तसंसारिभेदतः ।
> अनादिनिधनाः सर्वे ज्ञानदर्शनलक्षणाः ॥ २ ॥

अर्थ—तहां जीव हैं ते मुक्त अर संसारी भेदकरि दोय प्रकार जानना । कैसे है जीव आदि, अंतररहित है अर सर्वेही ज्ञानदर्शन हैं लक्षण जिनके ऐसेहैं ।

भावार्थ—द्रव्यार्थिक नय करि जीव अनादिनिधन है अर एकेंद्रियतैं लगाय सिद्ध भगवानपर्यंत सामान्य ज्ञानदर्शनविना कोई भी जीव नाहीं । ऐसा जानना ॥ २ ॥

> तत्र क्षताष्टकर्माणः प्राप्ताष्टगुणसंपदः ।
> त्रिलोकवेदिनो मुक्तास्त्रिलोकाग्रनिवासिनः ॥ ३ ॥

अनंतरेषदूनांगसमानाकृतयः स्थिराः ।
आत्मनीनजनाभ्यर्च्या भाविनं कालमासते ॥ ४ ॥

अर्थ—तहां नष्ट भएहैं अष्ट कर्म जिनके अर प्राप्त भई है अष्टगुण रूप संपदा जिनके, बहुरि तीन लोकके जाननेवाले अर द्रव्यभावकर्मनितै मुक्त भए, बहुरि तीन लोकके ऊपरि बसनेवाले ॥ ३ ॥

बहुरि अंतका किंचित् ऊन अंग प्रमाण है प्रदेशनिकी आकृति जिनकी, अर स्थिर है कंपरहित है, बहुरि आत्मज्ञानी जननि करि पूजनीक, ऐसे श्री सिद्धभगवान आगामी अनंतकाल तिष्ठै हैं ॥ ४ ॥

संसारिणो द्विधा जीवाः स्थावराः कथितास्त्रसाः ।
द्वितीयेऽपि प्रजायंते पूर्णापूर्णतया द्विधा ॥ ५ ॥

अर्थ—संसारी जीव स्थावर अर त्रस ऐसैं दोय प्रकार कहेहैं, तिन स्थावर अर त्रसनि विषैभी पर्याप्त अपर्याप्तपने करि दोय प्रकार हैं ॥५॥

आहारविग्रहाक्षाऽऽनवचोमानसलक्षणम् ।
पर्याप्तीनां मतं षट्कं पूर्णापूर्णत्वकारणम् ॥ ६ ॥

अर्थ—आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, वचन और मन ये हैं लक्षण जाके ऐसा जो पर्याप्तिनिका षट्क सो पर्याप्त अपर्याप्तपनेंका कारण कह्या है ।

भावार्थ—अपने योग्य पर्याप्तिकी जाकै पूर्णता है सो पर्याप्त जीव कहिये, जाकै पूर्णता नाहीं सो अपर्याप्त कहिये ॥ ६ ॥

चतस्रः पंच षट् ज्ञेयास्तेषां पर्याप्तयोऽगिनाम् ।
एकाक्षविकलाक्षाणां पंचाक्षाणां यथाक्रमम् ॥ ७ ॥

अर्थ—तिन पर्याप्तिसहित एकेंद्रिय विकलेंद्रिय पंचेंद्रिय जीवनिकैं च्यार, पांच, छह, पर्याप्ति यथाक्रम जाननी ।

भावार्थ—एकेंद्रियकै मन वचन विना च्यार पर्याप्ति है, विकलत्रय असैनीकै पांच पर्याप्ति है, पचेंद्रिय सैनीकै वचनमनसहित छह है, ऐसा जानना ॥ ७ ॥

एकाक्षाः स्थावरा जीवाः पंचधा परिकीर्तिताः ।
पृथिवी सलिलं तेजो मारुतं च वनस्पतिः ॥ ८ ॥

अर्थ—पृथ्वी १ जल २ अग्नि ३ पवन ४ अर वनस्पति ५ ऐसैं एकेंद्रिय स्थावर जीव पांच प्रकार कहेहैं ॥ ८ ॥

भेदास्तत्र त्रयः पृथ्व्याः कायकायिकतद्भवाः ।
निर्मुक्तस्वीकृतागामिरूपा एव परेष्वपि ॥ ९ ॥

अर्थ—तहां पृथ्वीके भेद तीन हैं पृथ्वीकाय, पृथ्वीकायिक, पृथ्वीजीव, ऐसै । तहां जीवनै शरीर त्यागि दिया सो तो पृथ्वीकायहै, अर जो शरीर जीवनै ग्रहण किया सो पृथ्वीकायिक है, अर जो जीव पृथ्वीकायिक होनेवालाहै सो अंतरालमे पृथ्वीजीवहै याही प्रकार जलादिविषैं भी जानना ॥ ९ ॥

मता द्वित्रिचतुःपंचहृपीकास्त्रसकायिकाः ।
पंचाक्षा द्विविधास्तत्र संज्ञ्यसंज्ञिविकल्पतः ॥ १० ॥

अर्थ—द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय जीवहै ते त्रसकायिक कहेहै । तहां पंचेंद्रियहै ते संज्ञी असंज्ञी भेद करि दोय प्रकार है ॥१०॥

शिक्षोपदेशनालापग्राहिणः संज्ञिनो मताः ।
प्रवृत्तमानसप्राणा विपरीतास्त्वसंज्ञिनः ॥ ११ ॥

अर्थ—शिक्षा उपदेश आलाप इनके ग्रहण करनेवाले, प्रवर्त्त्या है मन जिनकै, ऐसे जीव है ते संज्ञी कहहै । बहुरि इनितै विपरीत है ते असंज्ञीहैं ऐसा जानना ॥ ११ ॥

स्पर्शनं रसनं घ्राणं चक्षुः श्रोत्रमितींद्रियम् ।
तस्य स्पर्शो रसो गंधो रूपं शब्दश्च गोचरः ॥ १२ ॥

अर्थ—स्पर्शन, रसन, घ्राण, नेत्र, श्रोत्र, ऐसै पांच इंद्रिय हैं। बहुरि तिनिका स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, विषय है ॥ १२ ॥

गंडूपदजलूकाक्षकृमिशंखेंद्रगोपकाः ।
गदिता विविधाकारा द्विहृपीकाः शरीरिणः ॥ १३ ॥

अर्थ—गिंडोला जौंक कौडी कृमि शंख इंद्रगोप ये नानाप्रकारहैं आकार जिनके ऐसे द्वींद्रिय जीव कहे है ॥ १३ ॥

यूकापिपीलिकालिक्षाकुंथुमत्कुणवृश्चिकम् ।
त्रिहृषीकं मतं प्राज्ञैर्विचित्राकारसंयुतम् ॥ १४ ॥

अर्थ—जूवां कीडी लीख कुंथुवा खटमल विच्छू ये बुद्धिवानानि करि नानाप्रकारसंयुक्त त्रींद्रिय कहे है ॥ १४ ॥

पतंगमक्षिकादंशमशकभ्रमरादयः ।
चतुरक्षा विबोद्धव्या विबुद्धजिनशासनैः ॥ १५ ॥

अर्थ—विशेपपणैं जाण्या है जिन शासन जिननैं ऐसे पुरुपनि करि पतंग माखी दंश मच्छर भ्रमर आदि जीव हैं ते चतुरिंद्रिय जाननें ॥ १५ ॥

तिर्यग्योनिभवाः शेषाः श्वाभ्रमानवनाकिनः ।
विभिन्ना विविधैर्भेदैः स्वीकृतेंद्रियपंचकाः ॥ १६ ॥

अर्थ—बाकी तिर्यचयोनिविपै उपजे तिर्यंच बहुरि नारकी मनुष्य देव है ते नानाभेदनि करि भिन्न ग्रहण किये है पंच इंद्रिय जिननैं ऐसैं जानना।

भावार्थ—एकेंद्रिय विकलेंद्रियविना और सर्वही तिर्यंच अर नारकी मनुष्य देव ये सब पंचेंद्रिय जानना ॥ १६ ॥

हृषीकपंचकं भाषा कायस्वांतवलत्रिकम् ।
आयुरुच्छ्वासनिश्वासद्वंद्वं प्राणा दशोदिताः ॥ १७ ॥

अर्थ—इंद्रियप्राण पच अर भाषा मन काय ऐसै वल प्राण तीन वहुरि आयु अर उच्छ्वासनिश्वास ये दोय ऐसै प्राण दश कहे है ॥ १७ ॥

शरीराक्षायुरुच्छ्वासा भाषिता निखिलेष्वपि ।
विकलासंज्ञिनां वाणी पूर्णानां संज्ञिनां मनः ॥ १८ ॥

अर्थ—शरीर इंद्रिय आयु उच्छ्वास ये च्यार प्राण सर्वही पर्याप्तनिविषै कहे है, अर विकलेंद्रिय अर असंज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्तनिकैं भाषा प्राण है, अर संज्ञीपर्याप्तनिविषै मनप्राण है ॥ १८ ॥

एकद्वित्रिचतुःपंचहृषीकाणां विभाजिताः ।
तेऽन्येषां त्रिचतुष्कं च षट्सप्तांगायुरिंद्रियैः ॥ १९ ॥

अर्थ—एकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय जीवनिके भेदरूप प्राणहै । एकेंद्रियकै स्पर्शनइंद्रिय शरीर आयु उच्छ्वास ऐसैं च्यार, द्वीन्द्रियकै रसनाइंद्रिय अर वचन मिले छह, त्रींद्रियकै घ्राण अधिक सात, चतुरिंद्रियकै नेत्रअधिक आठ, असैनी पंचेंद्रियकै श्रवण अधिक नौ, संज्ञी पंचेंद्रियकै मन अधिक दश; ऐसै पर्याप्तनिके कहे । बहुरि ते प्राण अपर्याप्तनिविषैं एकेंद्रियकै स्पर्शनइंद्रिय काय आयु ऐसै तीन हैं, द्वींद्रियकै रसनासहित च्यार है, त्रींद्रियकै घ्राणसहित पांचहैं, चतुरिंद्रियकैं चक्षुसहित छहहै, पंचेंद्रियकै श्रोत्रसहित सातहै ऐसा जानना ॥ १९॥

जरायुजांडजाः पोता गर्भजा देवनारकाः ।
उपपादभवाः शेषाः सर्वे सम्मूर्च्छना मताः ॥ २० ॥

अर्थ—जरायुज कहिए जालवत् प्राणीनिकै शरीर ऊपरि आवरण मांस लोहू जामे विस्ताररूप पाइए ता सहित उपजै ते जरायुज, अर

अंडाविषै उपजै ते अंडज, अर योनितै निकलताही चालना आदि सामर्थ्ययुक्त उपजै ते पोतज ये तीन प्रकार तौ गर्भजहै, अर देव नारकी हैं ते उपपादशय्या सो है जन्म जिनका ऐसेहै, बहुरि इनिसिवाय सर्व जीव सम्मूर्च्छनतै है जन्म जिनका ऐसे कहेहै ॥ २० ॥

श्वाभ्रसम्मूर्च्छिनो जीवा भूरिपापा नपुंसकाः ।
स्त्रीपुंवेदा मता देवाः सवेदत्रितयाः परे ॥ २१ ॥

अर्थ—बहुतहै पाप जिनके ऐसे नारकी अर सम्मूर्च्छन जीवहै ते नपुंसकहै; अर देवहै ते स्त्रीवेदी, अर पुरुषवेदीहै; अर बाकी और जीव तीनौं वेदसहितहै ऐसा जानना ॥ २१ ॥

सचित्तः संवृतः शीतः सेतरो वा विमिश्रकः ।
विभेदैरांतरैर्भिन्नो नवधा योनिरंगिनाम् ॥ २२ ॥

अर्थ—सचित्त अर संवृत अर शीत, इनितै इतर जो अचित्त विवृत, उष्ण, बहुरि इनकरि मिश्र कहिये सचित्ताचित्तमिश्र संवृतविवृतमिश्र अर शीतोष्णमिश्र ऐसै अंतर भेदनि करि, भेदरूप जीवनिकै नव प्रकार योनि कहीहै। जीव जहां उपजै ऐसे पुद्गलस्कंधनिका नाम योनिहै, तहां जीवसहित होय ते सचित्तहै, जीवरहित अचित्तहै, गुप्तरूप होय ते संवृतहै, प्रगट होय ते विवृत, शीतल होय ते शीत, उष्ण होय ते उष्णहै, अर मिले होय ते मिश्रहै ऐसा जानना ॥ २२ ॥

भूरुहेषु दश ज्ञेयाः सप्त नित्यान्यधातुषु ।
नारकामरतिर्यक्षु चत्वारो विकलेषु षट् ॥ २३ ॥
चतुर्दश मनुष्येषु योनयः संति पिंडिताः ।
सर्वे शतसहस्राणामशीतिश्चतुरुत्तराः ॥ २४ ॥

अर्थ—वृक्षनिकै विषैं दशलक्ष योनि जाननी, अर नित्यनिगोद इतरनिगोद अर धातु कहिए पृथ्वीकाय अपकाय अग्निकाय वातकाय ये

च्यारि ऐसैं छह स्थाननिविषै सातलक्ष योनि जाननी, अर नारकी देव तिर्यंच इनि विषैं च्यारि च्यारि लक्ष योनि जाननी, विकलत्रयविषै छह-लक्ष योनि है, अर मनुष्यनि विषै चौदह लक्ष योनिहै। ऐसै सर्व एकठी करी भई चौरासी लक्ष योनिहै ये पूर्वोक्त सचित्तादियोनिनके विशेष भेद जानने ॥ २५ ॥

गतींद्रियवपुर्योगज्ञानवेदक्रुधादयः ।
संयमाहारभव्येक्षालेश्यासम्यक्त्वसंज्ञिनः ॥ २५ ॥

अर्थ—गति च्यारि, इंद्रिय पाच, काय छह, योग पंद्रह, ज्ञान आठ, वेद तीन, क्रोधादिक कषाय च्यार, संयम सात, आहारक दोय, भव्य दोय, दर्शन च्यार, लेश्या छह, सम्यक्त्व छह, संज्ञी दोय, ऐसैं चौदह मार्गणा कहीहैं ॥ २५ ॥

मार्ग्यंते सर्वदा जीवा यासु मार्गणकोविदैः ।
सम्यक्त्वशुद्धये मार्ग्यास्ताश्चतुर्दश मार्गणाः ॥ २६ ॥

अर्थ—विचारविषै प्रवीण जे पुरुष तिन करि जिनविषै जीव है ते सदा विचारियेहै ते चतुर्दश मार्गणा सम्यक्त्वकी शुद्धिके अर्थ सदा विचारनी योग्यहैं ॥ २६ ॥

मिथ्यादृष्टिः सासनो मिश्रदृष्टिः
सम्यग्दृष्टिः संयतासंयताख्यः ।
ज्ञेयावन्यौ द्वौ प्रमत्ताप्रमत्तौ
सत्रापूर्वेणानिवृत्त्यल्पलोभौ ॥ २७ ॥
शांतक्षीणौ योग्ययोग्यौ जिनेन्द्रौ
द्विः सप्तैवं ते गुणस्थानभेदाः ।
त्रैलोक्याग्रारूढिसोपानमार्गा–
स्तथ्यं येषु ज्ञायते जीवतत्त्वम् ॥२८॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्रदृष्टि, सम्यग्दृष्टि बहुरि संयतासंयतहै नाम जाका, प्रमत्त, अप्रमत्त दोय ये जानने योग्यहै; अर अपूर्वकरणसहित अनिवृत्तिकरण अर सूक्ष्मलोभ अर उपशांतमोह, क्षीणमोह, सयोगीजिन, अयोगीजिन ऐसे गुणस्थाननिके चौदह भेदहै, ते त्रैलोक्यका अग्र जो सिद्धपद ताके चढनेकूं सोपानमार्गहै। जिनविषै सांचा जीवतत्व जानियेहै।

भावार्थ—मोहनीय आदि कर्मनिका उदय उपशम क्षय क्षयोपशम परिणामरूप जे अवस्थाविशेष तिनकौ होतसंतैं उत्पन्न भये जे भाव कहिए जीवकें मिथ्यात्वादिक परिणाम तिनकरि जीव है ते "गुण्यंते" कहिए लखिए वा देखिए व लक्षित कहिए; ते जीवके परिणाम गुणस्थानसंज्ञाके धारक हैं। तहां मिथ्या कहिये अतत्त्वमें है दृष्टि कहिए श्रद्धान जाकै सो मिथ्यादृष्टि है, बहुरि आसादन जो विराधन ता सहित वर्त्तै सो सासादन है सम्यग्दृष्टि जाकै सो सासादनसम्यग्दृष्टि है अथवा आसादन कहिए सम्यक्त्वका विराधन ता सहित जो वर्त्तमान सो सासादनसम्यग्दृष्टि है, बहुरि पूर्वैं भयाथा सम्यक्त्व तिस न्याय करि इहां सम्यग्दृष्टिपना जानना। बहुरि सम्यक्त्व अर मिथ्यात्वका मिलापभाव सो मिश्रहै। बहुरि सम्यक् कहिये समीचीन है दृष्टि कहिए तत्त्वार्थश्रद्धान जाकैं सोई सम्यग्दृष्टि, अर सोही अविरत कहिये असंयमी सो अविरतसम्यग्दृष्टी है। बहुरि देशतः कहिए एकदेशतै है विरत कहिए संयमी सो देशविरत है संयम असंयमकरि मिल्या भाव है। इहांतै ऊपरि सर्व गुणस्थानवर्त्ती संयमी ही है, बहुरि प्रमाद्यति कहिये प्रमाद करै सो प्रमत्त है, बहुरि प्रमाद न करै सो अप्रमत्त है, बहुरि अपूर्व है करण कहिए परिणाम जाके सो अपूर्वकरण है, बहुरि न पाइये है निवृत्ति कहिये........विशेषरूप करण कहिए परिणाम जाके सो अनिवृत्तिकरण है, बहुरि सूक्ष्म है सांपराय कहिये लोभकषाय जाकै सो सूक्ष्मसांपराय

है; बहुरि उपशांत भयाहै मोह जाका सो उपशांतमोह है; बहुरि क्षीण भया है मोह जाका सो क्षीणमोह है; बहुरि घातिकर्मनिकौ जीतता भया सो जिन, बहुरि केवल ज्ञान है जाके सो केवली, सोई केवली सोही जिन, बहुरि योग करि सहित सो सयोग सोही सयोगकेवली जिन है; बहुरि योग जाकै न होय सो योगी नांहीं सो अयोगी सोही केवलीजिन सो अयोगकेवलिजिन है । ऐसै मिथ्यादृष्टि आदि अयोगि-केवलिजिन पर्यंत चौदह गुणस्थान जानना । इहा ग्रंथ वढनेके भयतैं नामका अर्थमात्र स्वरूप कह्या विशेष अन्य आगमतै जानना ॥

ऐसै जीवतत्वका वर्णन किया, आगै अजीवतत्वका वर्णन करै हैं;-

धर्माधर्मनभःकालपुद्गलाः परिकीर्त्तिताः ।
अजीवाः पंच सूत्रज्ञैरुपयोगविवर्जिताः ॥ २९ ॥

अर्थ—सूत्रके जाननेवाले नर धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाशद्रव्य कालद्रव्य पुद्गलद्रव्य ये पाच, उपयोग जो दर्शन ज्ञान ताकरि रहित अजीव कहैहैं ॥ २९ ॥

अमूर्त्ता निष्क्रिया नित्याश्चत्वारो गदिता जिनैः ।
रूपगंधरसस्पर्शशब्दवंतोऽत्र पुद्गलाः ॥ ३० ॥

अर्थ—धर्म अधर्म काल आकाश ये च्यार द्रव्य अमूर्त्त कहिये वर्ण गंध रस स्पर्श रहित अर निःक्रिय कहिए प्रदेशनिके चलिवेकरि रहित जिनदेवनि करि कहेहै । बहुरि इहां रूप गंध रस स्पर्श शब्दवान है ते पुद्गलहै, रूप गध रस स्पर्श है जातै सदा अनुयायी है अर शब्द है सो पर्याय है जातै पुद्गलस्कंधनितै कदाचित उपजैहै । इहां शब्द कहनें करि बंध, सूक्ष्म स्थूल संस्थान भेद तम छाया आतप उद्योत ए सर्व पुद्गलके पर्याय जान लेना ॥ ३० ॥

लोकालोकौ स्थितं व्याप्य व्योमानंतप्रदेशकम्।
लोकाकाशं स्थितौ व्याप्य धर्माधर्मौ समं ततः॥३१॥

अर्थ—लोक अलोक दोउनिकौं व्याप्त करि अनंत है प्रदेश जाके ऐसा आकाश अवस्थित है। बहुरि लोकाकाशकौ सर्व तरफतैं व्याप्त करि धर्मद्रव्य अर अधर्मद्रव्य तिष्ठैहै॥ ३२॥

धर्माधर्मैकजीवानामसंख्येयाः प्रदेशकाः।
अनंतानंतमानास्ते पुद्गलानामुदाहृताः॥ ३२॥

अर्थ—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य अर एकजीवद्रव्य इनके असंख्याते प्रदेश है। बहुरि पुद्गलनिके प्रदेश अनंतानंतप्रमाण कहेहै॥३२॥

जीवानां पुद्गलानां च गतिस्थितिविधायिनौ।
धर्माधर्मौ मतौ प्राज्ञैराकाशमवकाशकृत्॥ ३३॥

अर्थ—जीवनिकौ तथा पुद्गलनिकौ गति अर स्थितिके करावनेवाले धर्म अधर्मद्रव्य बुद्धिवानानि करि कहे है, अर आकाश है सो अवका-शका करनेवाला कहिए देनेवाला है।

भावार्थ—जैसैं स्वयं चालते मच्छनकौं जल गमनसहकारीहै, अर जैसे आपही तिष्टते पथिकानिकौं छाया तिष्ठनेमे सहकारी है तैसै गमन करते वा तिष्ठते जीव पुद्गलनिकौ धर्म अधर्म सहकारीहै कछु प्रेरणाकरि चलावते बैठावते नाहीं उदासीन कारण है। अर यद्यपि सर्वद्रव्य अपने अपने स्वरूपमे तिष्ठै हैं तथापि सर्व द्रव्यनिकौ अवकाश देना ये आकाशका गुणहै ऐसा जानना॥ ३३॥

असंख्या भुवनाकाशे कालस्य परमाणवः।
एकैका वर्त्तनाकार्या मुक्ता इव व्यवस्थिताः॥ ३४॥

अर्थ—लोकाकाशविषै वर्त्तना है कार्यलक्षण जिनका ऐसे असं-ख्याते कालके परमाणू एक एक न्यारे न्यारे मुक्ताफलनिकी ज्यौ तिष्ठैहै।

भावार्थ—वर्त्तनाहै लक्षण जिनका ऐसे असंख्याते कालाणू भिन्न लोकविषै तिष्ठैहैं सो तो निश्चयकाल है। अर अन्यद्रव्यनिके पर्यायनिकरि समयादिभेद करिए सो व्यवहारकालहै ऐसा जानना ॥ ३४ ॥

जीवितं मरणं सौख्यं दुःखं कुर्वंति पुद्गलाः ।
अणुस्कंधविभेदेन विकल्पद्वयभागिनः ॥ ३५ ॥

अर्थ—पुद्गल जे हैं ते जीना मरण सुख दुःखकौं करैहै, कैसेहैं पुद्गल अणु स्कंधके भेदकरि दोय भेदके भजनेवालेहै। इहां संसारीनिके प्राणनका संयोग सो जीवन अर तिनका वियोग सो मरण अर इंद्रियजनित सुख दुःख इनके कारण पुद्गलहै तातैं पुद्गल करैहै ऐसा जानना ॥३५॥

विश्वंभरा जलं छाया चतुरिंद्रियगोचराः ।
कर्माणि परमाणुश्च षड्विधः पुद्गलो मतः ॥ ३६ ॥
स्थूलस्थूलमिदं स्थूलं स्थूलसूक्ष्मं जिनेश्वरैः ।
सूक्ष्मस्थूलं मतं सूक्ष्मं सूक्ष्मसूक्ष्मं यथाक्रमम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—पृथ्वी, जल, छाया, च्यार इंद्रियनिके विषय अर कर्म, अर परमाणू ऐसै छहप्रकार पुद्गलद्रव्य कह्याहै ॥ ३६ ॥

बहुरि जिनेश्वरनिकरि यथाक्रम कहिए पृथ्वी तो स्थूलस्थूल, अर जल स्थूल, अर छाया स्थूलसूक्ष्म, अर नेत्र विना चतुरिंद्रियके विषय सूक्ष्मस्थूल, अर कार्माण वर्गणा सूक्ष्म, अर परमाणू सूक्ष्मसूक्ष्म कह्याहै॥३७॥

ऐसे अजीवतत्वका वर्णन किया; आगै आस्रवतत्वकौं कहैहैं;—

यद्वाक्कायमनःकर्म योगोसावास्रवः स्मृतः ।
कर्मास्रवत्यनेनेति शब्दशास्त्रविशारदैः ॥ ३८ ॥

अर्थ—जो वचन काय मन इनका कर्म कहिये चलना सो योग है यहु आस्रव है। शब्दशास्त्रविषै निपुण पुरुषनिकरि जाकरि कर्म आस्रवै सो आस्रवहै ऐसा कह्याहै ॥ ३८ ॥

शुभोऽशुभस्य विज्ञेयस्तत्रान्योन्यस्य कर्मणः।
कारणस्यानुरूपं हि कार्यं जगति जायते॥ ३९॥

अर्थ—तहां शुभयोग शुभकर्मका कारण जानना अर अशुभयोग अशुभकर्मका; जातैं लोकविषै कारणके अनुरूप कार्य होय है॥ ३९॥

संसारकारणं कर्म सकषायेण गृह्यते।
येनान्यथा कषायेण कषायस्तेन वर्ज्यते॥ ४०॥

अर्थ—जा कारणकरि कषायसहित जो जीव ताकरि संसारका कारण कर्म ग्रहण करियेहै अर कषायरहितकरि संसारका कारण कर्म ग्रहण न करिये है ता कारण कषाय त्यागिए है।

भावार्थ—सांपरायिक आस्रव तौ सकपाय जीवकै होयहै अर ईर्यापथिक आस्रव कषायरहित एकादशमादि गुणस्थाननिविषैं होयहै सो केवल योगकृत है तातै संसारका कारण नाहीं ऐसा जानना॥ ४०॥

ज्ञाताज्ञातामंदमंदादिभावैश्चित्रैश्चित्रं जन्यते कर्मजालं।
नाचित्रत्वे कारणस्येह कार्यं किंचिच्चित्रं दृश्यते जायमानं॥ ४१॥

अर्थ—ज्ञातभाव अज्ञातभाव तीव्रभाव मंदभाव आदिशब्दकरि अधिकरण अर वीर्य इन प्रकारनि करि नानाप्रकारकर्मजाल उपजाइएहै लोकविषैं कारणके नानाप्रकारपना न होतैं नानाप्रकार कार्य किछू उपज्या न देखिएहै।

भावार्थ—यह प्राणी हिंसनायोग्य है ऐसा जानकरि हिंसामें प्रवर्त्तना इत्यादिक ज्ञातभावहै, बहुरि प्रमादतैं वा मदतैं विनाजानें हिंसादिकमें प्रवर्त्तना सो अज्ञातभावहै, तीव्रक्रोधादिकके उदयतै होय सो तीव्रभावहै, मंदक्रोधादिकके उदयतै होय सो मंदभावहै, बहुरि जाके विषैं हिसादिक आधाररूप कीजिए सो अधिकरण कहिए, बहुरि द्रव्यकी

ज्यो निजसामर्थ्य सो वीर्य कहिए, इनिके नानाप्रकार तीव्रमंदादि भेद-करि आस्रवविषै भी भेद है ऐसा जानना ॥ ४१ ॥

तिरस्कारमात्सर्यपैशून्यविघ्न-
प्रघातप्रलापादिदोषैरनेकैः ।
विबोधावरोधस्तथेक्षावरोधो
दुरंतैः कृतैर्गृह्यते गर्हणीयः ॥ ४२ ॥

अर्थ—ज्ञान दर्शनके धारकनिका वा ज्ञानदर्शनका तिरस्कार करणा वा मात्सर्य मद करणा वा पैशुन्य चुगली खाना, वा अंतराय करणा वा घात करणा वा झूंठे दोष कहना इत्यादि अनेक दूरहै अंत जिनका ऐसे करे भये दोषनि करि निंदने योग्य ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण ग्रहण कीजिएहै ॥ ४२ ॥

वधाक्रन्ददैन्यप्रलापप्रपंचै-
र्निकृष्टेन तापेन शोकेन सद्यः ।
परात्मोभयस्थेन कर्मांगिवर्गै-
रसातं सदा गृह्यते दुःखपाकम् ॥ ४३ ॥

अर्थ—प्राणनिका वियोग करणा सो वध, अर अश्रुपातसहित खडा विलाप करणा सो आक्रदन, अर दीनपना कहिए जाहि देखे दया उपजै, तथा प्रलाप कहिये वकवाद इनिके विस्तारनिकरि, तथा परके वचन सुनि मनमें कलुपता सो ताप ताकरि, तथा ताकी चिंता करता इष्टवि-योग भये सतै निकृष्ट दुःख जो पीडारूप परिणाम ताकरि, तथा खेद-रूप परिणाम जो निकृष्ट शोक ता करि दुःखरूप है उदय जाका ऐसा जो असाता वेदनीय कर्म ताकू जीवनके समूहनि करि सदा शीघ्र ग्रहण कहिए है । कैसेक है पूर्वोक्त कारण, परविषै वा आपविषै वा पर आप दोउनिविषैं स्थित कहिए वर्त्तै है ।

भावार्थ—आपविषै वा परविषै वा पर आप दोऊनिविषै करे भये वंधादिक कारण करि असाता वेदनीयका आस्रव होय है ॥ ४३ ॥

साधूपास्या प्राणिरक्षा तितिक्षा
सर्वज्ञार्चा दानशौचादियोगैः ।
सातं कर्मोत्पद्यते शर्मपाकं
शिष्टाभिष्टैः पोपितैः सज्जनैर्वा ॥ ४४ ॥

अर्थ—साधूनकी सेवा अर जीवनकी रक्षा अर क्षमा अर सर्वज्ञकी पूजा अर दान अर निर्लोभपरिणामादिक अर शुभध्यान इन पापरंहित क्रियाका आचरण करि सातावेदनीय कर्म उपजै है, जैसै उत्तमहै मनोरथ जिनके ऐसे पोपे भए सज्जननि करि सुखका परिपाक उदय होय है तैसैं, यह्त दृष्टांत है ॥ ४४ ॥

मोक्तव्येनावर्णवादेन देवे
धर्मे संघे वीतरागे श्रुते च ।
मद्येनेवाऽऽस्वाद्यमानेन सद्यो
घोराकारो जन्यते दृष्टिमोहः ॥ ४५ ॥

अर्थ—देवविषै तथा धर्मविषै तथा संघविषै तथा वीतराग केवली विषैं तथा शास्त्रविषै त्यागनेयोग्य जो अवर्णवाद ताकरि स्वाद्या भया जो मदिरा ताकरि जैसे घोरहै आकार जाका ऐसा देखनेमे गहलभाव उपजाइएहै तैसैं दर्शनमोह कर्म उपजाइयेहै ।

भावार्थ—अंतरंगकलुपताके दोपतै न होते दोषनिका प्रकट करणा सो अवर्णवादहै, तहां च्यार प्रकार देवहै तिनमे व्यंतर मांसका सेवन करैहै इत्यादिक कहना सो देवावर्णवाद है, वहुरि जिनभापित दश प्रकार धर्म गुणरहितहै ताकं सेवनेवाले असुर होयहै इत्यादिक कहना सो धर्मका अवर्णवादहै, वहुरि जे मुनिहैं ते स्नानरहित मलकरि लिपट्या

है अंग जिनका ऐसे अपवित्र शूद्र हैं इत्यादिक कहना सो संघका अवर्णवादहै बहुरि केवली कवलाहारतै जीवै वा क्रमप्रवृत्त ज्ञानदर्शन सहितहैं इत्यादि कहना सो केवलीका अवर्णवाद है, बहुरि मांस मच्छीका खाना मदिरा पान सेवना स्त्री भोगना रात्रिभोजन इत्यादि पापरहित हैं ऐसा कहना सो श्रुतका अवर्णवादहै; ऐसै देवादिकके अवर्णवादतैं दर्शनमोहका बंध होय है, जाकरि संसारविषै अनंत परिभ्रमण होयहै ऐसा जानना ॥ ४५ ॥

सौख्यध्वंसी जन्यते निंदनीयो
रौद्रो भावो यः कषायोदयेन ।
दत्ते जंतोरेष चारित्रमोहं
विद्वेषी वा राध्यमानो निकृष्टः ॥ ४६ ॥

अर्थ—जो कषायके उदयकरि निंदनेयोग्य अर सुखका नाश करनेवाला रौद्रभाव उपजाइयेहै सो जीवकौ चारित्रमोह देयहै, जैसै द्वेषभावसहित आराध्या भया नीचपुरुष आचरणमे प्रचेतपना उपजावै तैसै ।

भावार्थ—क्रोधादिक कषायनके उदयतैं जो तीव्रपरिणाम होय ताकरि जीवकै चारित्रमोहका आस्रव होयहै ऐसै जानना ॥ ४६ ॥

बह्वारंभग्रंथसंदर्भदर्पैः
रौद्राकारैस्तीव्रकोपादिजन्यैः ।
श्वभ्रावासे प्राप्यते जीवितव्यं
किंवा दुःखं दीयते नाघचेष्टैः ॥ ४७ ॥

अर्थ—बहुत आरंभ कहिये हिंसाकर्म, अर यह मेरी वस्तु, मै याका स्वामी हूं ऐसा आत्मीय भाव सो परिग्रह, इनकी ऐसा रचनाके मदनि करि तथा भयानक है आकार जिनके ऐसे तीव्रक्रोधादिके उपजावनेवाले भावनि करि नरकनिवासविषै जीवितपना पाइयेहै, अथवा पापरूप चेष्टानिकरि कहा दुःख न दीजिए है ? दीजिये ही है ।

भावार्थ—बहुआरंभ बहुपरिग्रहतै नरकायुका आस्रव होयहै ॥४७॥

नानाभेदा कूटमानादिभेदै-
मायाऽनिष्टाऽऽराध्यमाना जनानाम् ।
तैर्यग्योन जीवितव्यं विधत्ते
किं वा दत्ते वंचना न प्रयुक्ता ॥ ४८ ॥

अर्थ—कूट कहिये झूंठ मान आदि भेदनिकरि नाना भेदस्वरूप आराध्यमान जो अनिष्ट माया सो तिर्यंचयोनिप्रति जीवितपनाकौं धारैहै, जैसै प्रयोगकरि ठिगवेकी जो बुद्धिक्रिया सो कहा दुःख न देयहै ?

भावार्थ—कुटिलपनेका नाम मायाहै सो मायाचारतै तिर्यंच आयुका आस्रव होयहै ॥ ४८ ॥

अल्पारंभग्रंथसंदर्भदर्पैः
सौम्याकारैः मंदकोपादिजन्यैः ।
सद्यो जीवो नीयते मानुषत्वं
किं नो सौख्यं दीयते शांतरूपैः ॥ ४९ ॥

अर्थ—मंदक्रोधादिक कषायनिकरि उपजे अर सौम्यहै आकार जिनके, ऐसे अल्पारंभ परिग्रहकी रचना अल्पमान इन करि जीव जो है सो शीघ्र मनुष्यपणकौ प्राप्त करिएहै जैसै शांतहै रूप जिनके ऐसे पुरुषनिकरि कहा सुख न दीजिएहै ?, दीजिएही है।

भावार्थ—अल्प आरंभ अल्पपरिग्रहपनैंतै मनुष्यआयुका आस्रव होयहै ॥ ४९ ॥

सम्यग्दृष्टिः श्रावकीयं चरित्रं
चित्राकामानिर्जरा रागिवृत्तम् ।
आयुर्दैवं प्राणभाजां ददंते
शांता भावाः किं न कुर्वंति सौख्यम् ॥५०॥

अर्थ—सम्यक्त्व अर श्रावकसंबंधी चारित्र अर नानाप्रकार अकाम-निर्जरा अर सरागचारित्र ये जीवनकौ देवसंबंधी आयु देयहै, जातैं शांतभाव कहा सुख न करै है, ? करैही है ।

भावार्थ—पूर्वोक्त भावनि करि देवायुका आस्रव होयहे । इहां कोऊ कहै सम्यक्त्व चारित्र तौ मोक्षमार्ग है इनितै आस्रव कैसै होय? ताका उत्तर—एक आधार आत्माविषै सम्यक्त्व चारित्र अर रागभाव दोऊ आधेय होतै सम्यक्त्वचारित्रतै तौ निर्जरा होयहै, अर रागतै बंध होयहै ताका साहचर्य देखि उपचारतैं कहिएहै, सम्यक्त्व चारित्रतै देवायु बंधैहैं, निश्चयतै सम्यक्त्व चारित्रतै निर्जराहै रागतै बंधहै, जैसै रूढतै कहिये कि यह घृत जलावैहै तहां घृत जलावनेका कारण नाही घृतमें अग्नि मिल्याहै तातैं जलै है ऐसा जानना ॥ ५० ॥

संवादित्वं प्रांजला योगवृत्ति-
र्नाम्नो ज्ञेयं कारणं पूजितस्य ।
वक्रो योगोऽवादि संवादहान्या
सार्द्धं हेतुर्निन्दनीयस्य तस्य ॥ ५१ ॥

अर्थ—संवादिपना कहिये यथार्थ प्रवर्त्तावना, कहना अर सरल मन वचनकायरूप योगनिकी परिणति सो पूजित जो शुभ नामकर्म ताका कारण जानना, अर यथार्थ कहनेकी हानि जो संवादहानि ताकरि सहित कुटिल मन वचन कायका योग सो निंदनीक जो अशुभ नामकर्म ताका कारण हैं; ऐसा जानना ।

भावार्थ—इहां नामकर्मका विशेष जो अचिंत्य शक्तिसहित तीर्थंकर नामकर्म ताके कारण आगम अनुसार कहिए है,—जिनभाषित निर्ग्रंथ मोक्षमार्गविषै रुचि निःशंकितादि अष्ट अंग सहित दर्शनविशुद्धि कहिए, बहुरि ज्ञानादिकनिविषैं जो परम आदर, कषायनका अभाव सो

विनयसंपन्नता कहिए, बहुरि अहिंसादिक व्रत अर तिनके पलनेके अर्थि जे जे क्रोधादिक कपायनके त्यागरूप शील तिनविषै निर्दोप प्रवृत्ति सो शीलव्रतेष्वनतीचार कहिये, वहुरि ज्ञानभावनाविषै नित्य उपयुक्तपना सो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग कहिये, वहुरि संसारके दुःखनितै भयभीतपना सो संवेग कहिए, वहुरि आपके वा परके अर्थ देना सो त्याग है, बहुरि नाहीं छिपाया है वीर्य जानैं ऐसे पुरुपकै मार्गतै अविरुद्ध काय-क्लेश करणा सो तप है, बहुरि जैसै भांडागारमै अग्नि उठते संतै ताका शमन करिए तैसै अनेक व्रतशील करि सहित मुनिनके समूहके तपकौं कहूंतै विघ्न उठते संतै ताका उपशम करि तपकी स्थिरता करिये सो साधुसमाधि कहिए, वहुरि गुणवानकै दुःख आए संतै निर्दोषविधि करि दुःख दूर करणा सो वैयावृत्त्य कहिए, वहुरि अरहंतनिविषै तथा आचार्यनिविषैं तथा वहुश्रुतनिविषै तथा प्रवचन जो जिनवाणी ताविषै भावकी शुद्धतासहित जो अनुराग सो अर्हद्भक्ति आचार्यभक्ति बहुश्रुत भक्ति प्रवचनभक्ति कहिये, बहुरि सामायिकादि छह आवश्यक क्रिया-निका यथाकाल करणा सो आवश्यकापरिहाणि कहिए, बहुरि ज्ञान तप जिनपूजाकी विधि इनकरि धर्मका प्रकाशना सो मार्गप्रभावना कहिए, वहुरि वच्छाविषै गौकी ज्यों साधर्मी विषै जो प्रीति सो प्रवचनवात्सल्य कहिए। ऐसै यह षोडशकारण सम्यग्दर्शनसहित तीर्थंकरनामकर्मके आस्रवके कारण जानना ॥ ५१ ॥

नीचैर्गोत्रं स्वप्रशंसान्यनिंदे
कुर्वाणोऽसत्सद्गुणोच्छादने च।
प्राप्नोत्यंगी प्रार्थनीयं महिष्ठै—
रुच्चैर्गोत्रं मंक्षु तद्वैपरीत्ये ॥ ५२ ॥

अर्थ—आपकी प्रशंसा वा अन्यकी निंदा अर आपके न होते गुण प्रगट करणा अर दूसरेके होते गुण ढांकना इनकौ करता संता

नीच गोत्रकौं प्राप्त होय हैं, वहुरि तिनके विपरीतपना होतसंतै बडे पुरुषनिकरि प्रार्थने योग्य उच्च गोत्रकू शीघ्रही पावै है ॥ ५२ ॥

दानं लाभो वीर्यभोगोपभोगा
नो लभ्यंते प्राणिना विघ्नभाजा ।
विज्ञायेत्थं विघ्नभीतेन विघ्नो
नो कर्त्तव्यः पंडितेन त्रिधाऽपि ॥ ५३ ॥

अर्थ—विघ्न जो अंतराय ताका करनेवाला जो जीव ताकरि दान लाभ भोग उपभोग वीर्य न पाइएहै ऐसा जानि विघ्नतै भयभीत पंडितजनकरि मनवचनकायतै विघ्न करना योग्य नाहीं ।

भावार्थ—परके दानादिकमे विघ्न करनेतैं अंतरायका आस्रव होयहै ॥ ५३ ॥

इहां कोऊ कहै ये ज्ञानावरणादिकके नियमरूप कारण कहे ते सवही कर्मनके आस्रवके कारण होयहैं। जाका जातैं आगमनविषै ज्ञानावरणका वंध होता युगपत औरनका भी वंध कहिएहै तातै आस्रवके नियमका अभाव आया ताकौं कहिएहै—यद्यपि पूर्वोक्त कारणनकरि ज्ञानावरणादिक सर्व कर्मनिका प्रदेशादिवंधका नियम नाहीं तथापि अनुभागविशेषके नियमके हेतुपने करि न्यारे न्यारे कारण कहिएहै ऐसा जानना ।

आगे वंधतत्वका वर्णन करैहै,—

ये गृह्यंते पुद्गलाः कर्मयोग्याः
क्रोधाद्याढ्यैश्चेतनैरेष वंधः ।
मिथ्यादृष्टिर्निव्रतत्वं कषायो
योगो ज्ञेयस्तस्य वंधस्य हेतुः ॥ ५४ ॥

अर्थ—क्रोधादिक कषायनिकरि सहित जीवनिकरि कर्म योग्य पुद्गल ग्रहण करियेहै सो यहु बंधहै, बहुरि ता बंधके बीजभूत कारण मिथ्यादर्शन, अविरत, कषाय, योग जानना योग्य है।

भावार्थ—जैसैं भूखसहित जीव मुखद्वार करि आहार ग्रहण करैहै तैसैं मोहसहित जीव योगद्वारतै कार्माण वर्गणा ग्रहण करै सो बंध कह्या ॥ ५४ ॥

बंधः स मतः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदेन।
षड्भिश्चतुःप्रकारो येन भवे भ्रम्यते जीवः ॥ ५५ ॥

अर्थ—प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश इन भेदनिकरि सो बंध प्रवीण पुरुषनिनैं च्यार प्रकार कह्याहै, जिस बंध करि जीव संसारविषैं भ्रमाइए है ॥ ५५ ॥

स्वभावः प्रकृतिः प्रोक्ता स्थितिः कालावधारणम्।
अनुभागो विपाकस्तु प्रदेशोंऽशप्रकल्पनम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—स्वभाव तौ प्रकृति कहीहै जैसैं निबका कटुक स्वभावहै मिश्रीका मिष्टस्वभावहै ऐसै ज्ञानावरणादिकनिका ज्ञानघातनादिक स्वभावहै सो तो प्रकृतिबंध जानना, बहुरि काल जो अवधारण मर्यादा सो स्थिति बंध है,

भावार्थ—तिस स्वभावका न छूटना सो स्थिति है, बहुरि विपाक जो रस सो अनुभागबंध है,

भावार्थ—तिस प्रकृतिके रसविशेषका नाम अनुभवहै जैसै अजा गौ महिषी आदिके दुग्धनिके तीव्र मंदादि भावकरि विशेषताहै तैसै बहु अंश जे परमाणु तिनकी संख्याका कल्पना सो प्रदेशबंध है,

भावार्थ—जघन्य तौ अभव्यनितै अनंतगुणा उत्कृष्ट सिद्धनके अनंतवें भाग जो समयप्रबद्ध ताका ज्ञानावरणादिरूप यथायोग्य हीनाधिक परमाणूनका बटवारा हो जाय सो प्रदेशबंध है ऐसा जानना ॥ ५६ ॥

करोति योगात्प्रकृतिप्रदेशौ कषायतः स्थित्यनुभागसंज्ञौ ।
स्थितिं न बंधः कुरुते कषाये क्षीणे प्रशांते स ततोऽस्ति हेयः । ५७।

अर्थ—योगतै प्रकृति अर प्रदेशबंधकौ करैहै, बहुरि स्थिति अर अनुभागनामा बंधकौ कपायतै करैहै, बहुरि कषायकौ क्षय होतसंतैं वा उपशम होतसंतै बंध स्थितिकौ न करैहै तातै सो कपाय त्यागना योग्यहै ।

भावार्थ—कपायविना केवल योगनतै बंध होयहै सो एक सातावेदनीयका स्थितिबंधहै सो अनंतर समयमें खिर जायहै सो संसारका कारण नाहीं, बहुरि कषायसहितके बंध होयहै सो स्थिति अनुभाग सहित होयहै सो संसारका कारणहै । तातै कपाय त्यागना योग्यहै ऐसा जानना ॥ ५७ ॥

स्वीकरोति स कषायमानसो मुंचते च विकषायमानसः ।
कर्म जंतुरिति सूचितो विधिर्बंधमोक्षविषयो विबंधनैः ॥ ५८ ॥

अर्थ—कपायसहितहै मन जाका ऐसा पुरुप है सो कर्मकौ अंगीकार करैहै, बहुरि कपायरहितहै मन जाका ऐसा जीवहै सो कर्मकौं त्यागै है; ऐसें बंधमोक्षकी विधि बंधनरहित जे सर्वज्ञदेव तिनकरि कहीहै ।

भावार्थ—रागभावतै तो बंधहै अर वीतराग भावतै मोक्षहै ऐसा सर्वज्ञका उपदेशहै तातै राग त्यागि वीतराग होना योग्यहै ॥ ५८ ॥

ऐसें बधतत्वका वर्णन किया; आगै संवरतत्वका वर्णन करैहै:—

आस्रवस्य निरोधो यः संवरः स निगद्यते ।
भावद्रव्यविकल्पेन द्विविधः कृतसंवरैः ॥ ५९ ॥

अर्थ—करया है संवर जिननै ऐसे मुनीश्वरनिकरि आस्रवका रोकना सो संवर द्रव्य भावके भेदकरि दोयप्रकार कहिएहै ॥ ५९ ॥

क्रोधलोभभयमोहरोधनं भावसंवरमुशंति देहिनाम् ।
भाविकल्मषनिवेशरोधनं द्रव्यसंवरमपास्तकल्मषाः॥६०॥

अर्थ—नाश कियेहै पाप जिननै ऐसे आचार्य है ते क्रोधलोभ भय मोह इनिका जो रोकना ताहि भाव संवर कहैहै, बहुरि आगामी कर्मके प्रवेशका रोकना ताहि द्रव्यसंवर कहैहै ।

भावार्थ—रागादिभाव रोकना सो द्रव्यसंवर कहिए ऐसा जानना अर ताके निमित्त करि बद्ध जे कर्मपुद्गल तिनका रोकनां सो द्रव्यसंवर कहिए । ऐसा जानना ॥ ६० ॥

धार्मिकः समितो गुप्तो विनिर्जितपरीषहः ।
अनुप्रेक्षापरः कर्म संवृणोति ससंयमः ॥ ६१ ॥

अर्थ—धर्मसहित अर समितिसहित अर गुप्तिसहित अर जीते है परीषह जानै, ऐसा बहुरि अनुप्रेक्षामें तत्पर अर संयमसहित ऐसा जीवहै सो कर्मकौ संवरैहै—रोकैहै ।

भावार्थ—कषायनिके अभावरूप उत्तमक्षमादि दश धर्म अर प्रमाद-रहित प्रवृत्तिरूप पंच समिति अर भले प्रकार मनवचन कायके योग-निका निग्रहरूप तीन गुप्ति, अर मार्गतै न छूटनेके अर्थि तथा निर्ज-राके आर्थि सहने योग्य क्षुधादि बाईस परीषह, बहुरि स्वभावका वारंवार चितवनरूप अनित्यादि द्वादशानुप्रेक्षा, बहुरि प्राणीनिकी हिंसा अर इंद्रियनिके विषय इनिके त्यागरूप सामायिकादि पंचप्रकार संयम ये भाव संवरके विशेषहै जातै इनिकरि रागादि आस्रव रुकैहै ऐसा जानना ॥ ६१ ॥

मिथ्यात्वाव्रतकोपादियोगैः कर्म यदर्ज्यते ।
तन्निरस्यंति सम्यक्त्वव्रतनिग्रहरोधनैः ॥ ६२ ॥

अर्थ—मिथ्यात्व अर अव्रत अर क्रोधादिकपाय अर योग इनकरि जो कर्म उपार्जन करियेहै सो कर्म सम्यक्त्व व्रत क्रोधादिकका निग्रह योगनिका रोकना इनि करि दूरि करिए है । मिथ्यात्वादि भावकरि द्रव्यकर्मका आस्रव होय है ताहि सम्यक्त्वादि भाव करि रोके द्रव्य-संवर होयहै ॥ ६२ ॥

. ऐसा द्रव्यसवरका स्वरूप जानना, आगै निर्जरा तत्वका वर्णन करैहै;—

पूर्वोपार्जितकर्मैकदेशसंक्षयलक्षणा ।
सविपाकाऽविपाका च द्विविधा निर्जराऽकथि ॥ ६३ ॥

अर्थ—पूर्वोपार्जित कर्मनिकी एकदेशक्षयहै लक्षण जाका ऐसी नानाप्रकार (दोय प्रकार) सविपाका अर अविपाका निर्जरा कही ॥ ६३ ॥

तिनका स्वरूप कहैहै;—

यथा फलानि पच्यंते कालेनोपक्रमेण च ।
कर्माण्यपि तथा जंतोरुपात्तानि विसंशयम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—जैसै फलहै ते अपने कालकरि तथा पाल आदि उपक्रम करि पकैहै तैसै जीवके ग्रहण करे कर्म है ते भी अपनी स्थितिरूप कालकरि तथा तपश्चरणादिककरि निःसंदेह पकै—खिरैहै ॥ ६४ ॥

अनेहसा या दुरितस्य निर्जरा साधारणा सा परकर्मकारिणी ।
विधीयते या तपसा महीयसा विशोषणी सा परकर्मवारिणी६५

अर्थ—ज्यो कालकरि कर्मकी निर्जराहै सो साधारणहै सर्व जीवनकैहै अर और कर्मनके करनेवाली है ।

भावार्थ—सविपाक निर्जरा तौ अपनी स्थिति पूरी करि समयप्रबद्धमात्र कर्म सबहीकैं खिरैहै तातै साधारणहै अर ताके उदयतैं जीवकैं राग द्वेष होयहै ताकरि आगामी कर्मबंध होयहै। अर जो सम्यग्दर्शनादिकके प्रयोग करि विना स्थिति पूरी भए ही अनेक समयप्रबद्ध एकै काल खिरै सो अविपाकनिर्जरा है, इहां जीवकैं रागादिकके अभावतै आगामी कर्म न बंधैहै तातै मोक्षहीकी करनेवालीहै ऐसा जानना ॥६५॥

वितप्यमानस्तपसा शरीरी
पुराकृतानामुपयाति शुद्धिम्।
न ध्मायमानः कनकोपलः किं
समार्चिषा शुद्ध्यति कश्मलेभ्यः॥ ६६॥

अर्थ—तप करि तप्तायमान जीवहै सो पूर्वकृत कर्मनकी शुद्धिताकौं प्राप्त होयहै, जैसे अग्नि करि धम्या भया सुवर्णका पाषाण सो मलनितैं कहा शुद्ध न होयहै? होय हीहै॥ ६६॥

घातिकर्म विनिहत्य केवलं
स्वीकरोति भुवनावभासकम्।
चेतनः सकललोकसम्मतं
ध्वांतराशिमिव भास्करो दिनम्॥ ६७॥

अर्थ—चेतन आत्माहै सो घातिकर्मनिकौ नाशकरि लोकका प्रकाशक अर समस्त लोक करि मान्या ऐसा जो केवलज्ञान, ताहि अंगीकार करैहै, जैसैं अंधकारके समूहकौ नाशकरि सूर्य दिनकौ अंगीकार करै तैसैं॥ ६७॥

निमूलकाषं स निकृष्य कल्मषं
प्रयाति सिद्धिं कृतकर्मनिर्जरः।

विनिर्मलध्यानसमृद्धपावके
निवेश्य दग्ध्वाऽखिलबंधकारणम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—विशेषकरि निर्मल ध्यान जो शुक्लध्यान सो ही भया वृद्धिकौ प्राप्त अग्नि, ताविषै प्रवेश कराय समस्त बंधके कारणनिकौ जलायकरि करीहै कर्मकी निर्जरा जानैं ऐसा जो आत्मा सो कल्मष ज्यो समस्त कर्म ताहि निर्मूल जैसैं होयतैसैं उखाडकरि मोक्ष अवस्थाकौं प्राप्त होयहै ॥ ६८ ॥

निसर्गतो गच्छति लोकमस्तकं
कर्मक्षयानन्तरमेव चेतनः।
धर्मास्तिकायेन समीरितोऽनघं
समीरणेनेव रजश्चयः क्षणात् ॥ ६९ ॥

अर्थ—कर्मक्षयके अनंतरही धर्मास्तिकाय करि प्रेरया आत्मा क्षणमात्रमे निर्मल होय लोकके मस्तक परि गमन करैहै, जैसैं पवन करि उडाया रजका समूह ऊपरकौ जाय तैसे।

भावार्थ—आत्माका ऊर्द्धगमनस्वभावहै, कर्म नष्ट भये निजस्वभाव प्रगटहै ता करि धर्मास्तिकायके सहायतै लोकके शिखर तांई धर्मास्तिकाय है तहां ताईं जाय तिष्टैहै ताके प्रभावतै न जायहै। इहां धर्मास्तिकाय करि प्रेरणा गमनका सहकारीपना ही जानना जातै धर्मद्रव्य किछू जवरीसौं न चलावैहै स्वयमेव चलतेनकौ सहकारी कारणहै ऐसा जानना ॥ ६९ ॥

निरस्तदेहो गुरुदुःखपीडितां
विलोकमानो निखिलां जगत्त्रयीम्।
स भाविनं तिष्ठति कालमुज्ज्वलो
निराकुलानंतसुखाब्धिमध्यगः॥ ७० ॥

अर्थ—त्याग कियाहै शरीर जानै ऐसा सो सिद्धात्मा महादुःख करि पीडित जो जगतकी त्रयी कहिये तीन लोक ताहि विलोकता संता आगामी काल तिष्ठैहै, कैसा है सो आत्मा, द्रव्य भावकर्मरहित उज्ज्वलहै अर निराकुल अनंत सुखसमुद्रके मध्य प्राप्त है ॥ ७० ॥

यदस्ति सौख्यं भुवनत्रये परं
सुरेन्द्रनागेंद्रनरेंद्रभोगिनाम् ।
अनंतभागोऽपि न तन्निगद्यते
निरेनसः सिद्धिसुखस्य सूरिभिः ॥ ७१ ॥

अर्थ—तीन लोकविषै सुरेद्र नागेद्र नरेंद्र अर अन्य जे विषयभोगसहित है तिनका जो उत्कृष्ट सुखहै सो सुख कर्मरहित जो सिद्धात्मा ताके मुक्तिसुखके अनंतवें भाग भी आचार्यनिकरि नहीं कहियेहै।

भावार्थ—तीन लोकके भोगनिका सुख एकठा करिये सो सिद्धसुखके अनंतवै भाग नांही ऐसा जानना, भोगनिका सुख तौ आकुलतामयहै अर सिद्धसुखहै सो निराकुलहै तातै इन सुखनिकी एकजाति नाहीं, परंतु निराकुल सुख तौ संसारकी दृष्टिमे आवै नाहीं अर ताकै सिद्धपद उत्कृष्ट बताया जाइए तातै उपचारतै भोगनका सुख सिद्धनकासुखतै अनंतवै भागभी नाहीं ऐसा जानना ॥ ७१ ॥

ऐसै मोक्षतत्वका वर्णन किया। इहां प्रयोजन ऐसाहै कि चैतन्यलक्षण आपकौं जानि चेतनारहित समस्त देहादि परद्रव्यनिमें अहंकार ममकार त्यागना योग्यहै, अर रागादिक आस्त्रवहै तिनतै दुःख अवस्थास्वरूप बंध होयहै सो तिनकौ अहित जानि जैसै आस्त्रव बंध न होय तैसैं प्रवर्त्तना योग्यहै, अर वैराग्यभावरूप संवरहै तापूर्वक कर्मनका एकदेश नाश होना सो निर्जरा है इनकौ हितरूप जानि संवर निर्जराके कारणनिमें प्रवृत्ति करना योग्यहै, अर सकल कर्मनितै रहित

ज्ञानानंदमयी जो आत्माकी अवस्था सो मोक्षहै आत्माका परमहितहै ताहीके अर्थि अन्य समस्त वांछात्यागि यत्न करना यहही सर्व तत्व कथनका प्रयोजनहै ऐसा निश्चय करना ॥

इमे पदार्थाः कथिता महर्षिभि-
र्यथायथं सप्त निवेशिताः हृदि ।
विनिर्मलां तत्वरुचिं वितन्वते
जिनोपदेशा इव पापहारिणीं ॥ ७२ ॥

अर्थ—महाऋषीनकरि कहे जे सप्त पदार्थ ते यथायोग्य हृदयविषै प्रवेशरूप किये संते निर्मल पापकी हरनेवाली रुचि-प्रतीतिकौ विस्तारैहै जैसे जिनेद्रके उपदेश रुचि विस्तारै तसै ।

भावार्थ—तत्वार्थश्रद्धानलक्षण सम्यग्दर्शनकी शुद्धिता इन तत्वनिके विशेष जाने अधिक अधिक होयहै ऐसा जानना ॥ ७२ ॥

आगै सम्यक्त्वके निःशकितादि अष्ट अंगनिका वर्णन करैहै;—

विरागिणा सर्वपदार्थवेदिना
जिनेशिनैते कथिता न वेति यः ।
करोति शंकां न कदापि मानसे
निःशंकितोऽसौ गदितो महामनाः ॥ ७३ ॥

अर्थ—वीतराग अर सर्वपदार्थनिका ज्ञाता जिनेद्रदेवता करि ये सर्व पदार्थ कहेहै ते है ? वा नांहीहै ? ऐसी शंकाकौ जो कदाचित् मनविषै नहीं करै सो यहु महामुनि (महामना) निःशंकित कह्योहै ।

भावार्थ—जिनवचनमे वा आत्मस्वरूपमें सदेह न होना सो निःशंकित अंगहै ऐसा जानना ॥ ७३ ॥

विधीयमानाः शमशीलसंयमाः
श्रियं ममेमे वितरंतु चिंतिताम् ।

सांसारिकानेकसुखप्रवर्द्धिनीं
निःकांक्षितो नेति करोति कांक्षणाम् ॥ ७४ ॥

अर्थ—ये उपशम शील संयम है ते करे भये संसारीक अनेक सुखनिकी वढावनेवाली वांछित लक्ष्मीकौ मेरै विस्तारहु ऐसी वांछा, निःकांक्षित पुरुषहै सो न करैहै ।

भावार्थ—कर्मके फलकी वांछा त्यागिये सो निःकांक्षित अंग जानना ॥ ७४ ॥

तपस्विनां यस्तनुमस्तसंस्कृतिं
जिनेंद्रधर्मं सुतरां सुदुष्करम् ।
निरीक्षमाणो न तनोति निंदनं
स भण्यते धन्यतमोऽचिकित्सकः ॥ ७५ ॥

अर्थ—जो तपस्वीनके मलिन शरीरकूं देख तथा अति कठिन जिनेद्रभाषित धर्मकौ देखि निंदाको नाहीं विस्तारै है सो जीव विचिकित्सारहित अतिशयकरि धन्य कहिए है ।

भावार्थ—तपस्वीनके मलिनशरीरकूं देखिकै तथा अनशनादि घोर तप देख करि ग्लानि नहीं करणी सो निर्विचिकित्सानाम सम्यक्त्वका अंग जानना ॥ ७५ ॥

देवधर्मसमयेषु मूढता
यस्य नास्ति हृदये कदाचन ।
चित्रदोषकलितेषु सन्मतेः
सोच्यते स्फुटममूढदृष्टिकः ॥ ७६ ॥

अर्थ—नाना प्रकार दोषनकरि व्यास जे देव अर धर्म अर समय कहिए सर्व मत इन विषै सुबुद्धिके हृदयविषैं कदाचित् मूढता कहिये मूर्खता नहींहै सो अमूढदृष्टि कहिए है ।

भावार्थ—देवपनेकी आभास धरे ऐसे हरिहरादिक अर धर्माभास यज्ञादिक अर समयाभास वैष्णवमत आदिक इन विषै ये भी देवादिकहैं ऐसी मूढताका अभाव सो अमूढदृष्टि जानना ॥ ७६ ॥

यो निरीक्ष्य यतिलोकदूषणं
कर्मपाकजनितं विशुद्धधीः ।
सर्वथाप्यवति धर्मबुद्धितः
कोविदास्तमुपगूहकं विदुः ॥ ७७ ॥

अर्थ—जो निर्मलबुद्धि पुरुष कर्मके उदयकरि उपज्या ज्यो यतिजननिका दूषण ताहि देख करि धर्मबुद्धितै सर्व प्रकार गोपै है ताहि पंडितजन उपगूहन कहैंहै ।

भावार्थ—जो परके दोष वा अपने गुण ढांकना सो उपगूहन अंग जानना तथा इसही अंगका नाम उपबृंहण भी कह्याहै तहां 'आत्मशक्तिका पुष्ट करणा' अर्थ ग्रहणकियाहै ॥ ७७ ॥

निवर्त्तमानं जिननाथवर्त्मनो
निपीड्यमानं विविधैः परीषहैः ।
विलोक्य यस्तत्र करोति निश्चलं
निरुच्यतेऽसौ स्थितिकारकोत्तमः ॥ ७८ ॥

अर्थ—जो नानाप्रकार परीषहनि करि पीडितभया संता जिननाथके मार्गतै चिगते पुरुषकौ देख करि तिस जिनमार्गविषै निश्चल करै सो यहु स्थितिकरनेवाला उत्तम कहिएहै ।

भावार्थ—जिनधर्मतै वा आत्मस्वरूपतै आपकौ वा परकौ चिगतेकौं स्थिर करना स्थितिकरण अंग कह्याहै ॥ ७८ ॥

करोति संघे बहुधोपसर्गै-
रुपद्रुते धर्मधियाऽनपेक्षः।
चतुर्विधे व्यापृतिमुज्ज्वलां यो
वात्सल्यकारी स मतः सुदृष्टिः॥ ७९॥

अर्थ—मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका ऐसे च्यार प्रकार संघकौं बहुत प्रकार उपसर्गकरि पीडित भए संते जो वांछारहित धर्मबुद्धि करि निर्मल वैयावृत्त्याचार करैहै सो सम्यग्दृष्टी वात्सल्य करणेवाला कह्याहै।

भावार्थ—जिनधर्मीनविषै वा आत्मस्वरूपविषैं अति प्रीति करणा सो वात्सल्य अंग जानना॥ ७९॥

निरस्तदोषे जिननाथशासने
प्रभावनां यो विदधाति शक्तितः।
तपोदयाज्ञानमहोत्सवादिभिः
प्रभावकोऽसौ गदितः सुदर्शनः॥ ८०॥

अर्थ—दूरि भयेहै रागादिक दोष जाके ऐसा जो जिननाथका शासन ताविषै जो शक्तिसारू तप दया ज्ञान महोत्सव इत्यादिकनि करि प्रभावनाकौ करैहै उद्योत करैहै सो यहु सम्यग्दृष्टी प्रभावना करनेवाला कह्याहै। सर्व जीव मानै कि जिनमत धन्यहै तामे ऐसे तपश्चरणादि पाइएहै, ऐसे तपश्चरणादिक करि जिनमतका उद्योत करणा तथा निश्चयतै आत्माकूं रत्नत्रयतै आभूषित करणा सो प्रभावना अंग जानना॥ ८०॥

गुणैरमीभिः शुभदृष्टिकंठिकां
दधाति बद्धां हृदि योऽष्टभिः सदा।
करोति वश्याः सकलाः स संपदो
वधूरिवेष्टाः सुभगो वशंवदः॥ ८१॥

अर्थ—जो पुरुष इन निःशंकितादि अष्टगुण कहिए सूत्रनि करि बंधी सम्यग्दृष्टिरूप मालाकौ हृदयविषै सदा धारै है सो समस्त संपदानकौ वश करैहै जैसै भले वचननिका बोलनेवाला सुंदर पुरुष वांछित वधूनिनै वश करै तैसै।

भावार्थ—जैसै माला पहरे सुंदर पुरुष भलेवचननिका बोलनेवाला स्त्रीनिकौ वशि करैहै तैसै निःशंकितादि सूत्रनि करि बंधी सम्यग्दृष्टिरूप माला पहरनेवाला जीव इंद्रादिसंपदाकौ वशि करैहै ऐसा जानना ॥ ८१ ॥

सुदर्शनं यस्य स ना सुभाजनः
सुदर्शनं यस्य स सिद्धिभाजनः।
सुदर्शनं यस्य स धीविभूषितः
सुदर्शनं यस्य स शीलभूषितः ॥८२ ॥

अर्थ—जाकै सम्यग्दर्शन है सो पुरुष भला पात्र है, अर जाके सम्यग्दर्शन है सो सिद्धिका भजनेवालाहै, अर जाके सम्यग्दर्शन है सो शीलकरि भूषित है ॥ ८२ ॥

नो जायेते पावने ज्ञानवृत्ते
सम्यक्त्वेन प्राणिनो वर्जितस्य।
शर्माधारे कोपराज्ये न दृष्टे
नूनं क्वापि न्यायहीनस्य राज्ञः ॥ ८३ ॥

अर्थ—जैसै सुखके आधार जे भंडार अर राज्य ते न्यायरहित राजाकै निश्चयकरि कहूं भी न देखिए तैसै सम्यक्त्व करि वर्जित जीवकै पवित्र ज्ञान अर चारित्र न होयहै।

भावार्थ—सम्यक्त्व विना ज्ञान चारित्र सम्यक्पनेकौ न पावै तातै सम्यक्त्व सबनिमे प्रधान है ऐसा जानना ॥ ८३ ॥

सुदर्शनेनेह विना तपस्या-
मिच्छंति ये सिद्धिकरीं विमूढाः ।
कांक्षंति बीजेन विनापि मन्ये
कृषिं समृद्धां फलशालिनीं ते ॥ ८४ ॥

अर्थ—जो लोग इहां सम्यग्दर्शनबिना सिद्धि करनेवाली तपस्याकूं वांछै है सौ मै मानूं हूं कि ते पुरुष बीजविना फल करि शोभित वृद्धिकौं प्राप्त ऐसी खेतीकूं चाहै है।

भावार्थ—सम्यक्दर्शनविना अनशनादिक्रिया राका विना शून्यवत्, शून्यही है तातै सम्यग्दर्शनसहित क्रिया करणी योग्यहै ॥ ८४ ॥

लोकालोकविलोकिनीमकलिलां गीर्वाणवर्गार्चितां
दत्ते केवलसंपदं शमवतामानीय या लीलया ।
सम्यग्दृष्टिरपास्तदोषनिवहा यस्यास्ति सा निश्चला,
तेन प्रापि न किं सुखं बुधजनैरभ्यर्थ्यमानं चिरम्॥८५॥

अर्थ—नाश भये है शंकादिक दोषनिके समूह जाके ऐसी निर्दोष निश्चल सम्यग्दृष्टी जाकै हैं ता पुरुष करि पंडित जननि करि बहुत काल तांई प्रार्थना किया गया ऐसा जो सुख सो कहा न पाया? अपितु पायाही, कैसी है सम्यग्दृष्टी जो लीलामात्र करि मुनिराजनिकौ केवल ज्ञानकी जो संपदा ताहि ल्याय करि देय है, कैसी है केवलज्ञान संपदा लोकालोककी देखनेवाली अर पापमल रहित अर देवनिके समूहनि करि पूजित ऐसी है।

भावार्थ—सम्यक्त्व भए केवलज्ञानकी प्राप्ति शीघ्रही होय है ऐसा जनाया है ॥ ८५ ॥

सम्यक्त्वोत्तमभूषणोऽमितगतिर्धत्ते व्रतं यस्त्रिधा
भुक्त्वा भोगपरंपरामनुपमां गच्छत्यसौ निर्वृतिम् ।

सर्वापापनिदूपिणीमपमलां चिंतामणिं सेवते
यः पुण्याभरणार्चितः स लभते पूतां न कां संपदम्।८६।

अर्थ—सम्यक्त्व है उत्तम आभूपण जाकै अर अमितगति कहिए न जानी जाय है महिमा जाकी ऐसा जो जीव मन वचन काम करि व्रतकौ धारण करैहै सो उपमारहित भोगनिकी परंपराकौ भोग करि मोक्षकौ प्राप्त होय है, जो पुण्य आभरण करि अर्चित पुण्योदयसहित पुरुप सर्व दरिद्रकी नाश करनेवाली चिंतामणिकौ सेवैहै सो कौन पवित्र संपदाकौ न पावैहै ? पावैहीहै ॥ ८६ ॥

ऐसे सम्यग्दर्शनके विपय सप्ततत्व सम्यक्त्वके अंगका इहां तांई निरूपण किया ।

छप्पय ।

वीतराग सर्वज्ञ कहे जीवादि तत्व इम
करि प्रतीति वसु अंगसहित अति होय अचल जिम।
यह कारण व्यवहार कार्य आतम लखि लीजे
पट द्रव्यनितैं भिन्न नियति सम्यक रस पीजे ॥
इस विना विफल अवगम चरण अंकविना विंदी यथा ।
ता सहित सार सुख भोग फिर होय अमितगति सर्वथा ॥

इत्युपासकाचारे तृतीयः परिच्छेदः ।

ऐसैं अमितगतिआचार्यकृत श्रावकाचारविषैं तृतीय परिच्छेद समाप्त भया ।

अथ चतुर्थः परिच्छेदः ।

आगै अन्यमतिनके एकांतपक्षका निराकरण करि जीवादिकका वर्णन हेतुवादसहित करैगे। तहां हेतुके स्वरूप जाननेकूं प्रथम प्रमाणका वर्णन संक्षेपमात्र करिएहै। तहां आप वा अपूर्व अर्थ कहिए अनिश्चित पदार्थ इनिका निश्चयस्वरूप जो सम्यक् ज्ञान सो प्रमाणहै, सो प्रत्यक्ष परोक्षके भेदकरि दोय प्रकार है। सामान्य-विशेषनि सहित वस्तुका स्पष्ट जानना सो प्रत्यक्षका लक्षणहै, अर सामान्य विशेषसहित वस्तुकौ अस्पष्ट व्यवधानसहित जानना परोक्षका लक्षणहै। तहां सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष अर पारमार्थिक प्रत्यक्ष ऐसै प्रत्यक्ष दोय प्रकार है, तहां इंद्रिय मनसै उत्पन्न भए तीनसै छत्तीस भेदरूप मतिज्ञान सांव्यवहारिक प्रत्यक्षहै जातै इनिमे दोय प्रकार विशदता पाइएहै, अर परमार्थप्रत्यक्षमें अवधि, मनः पर्यय देशप्रत्यक्षहै जातै इनमें एकदेश विशदता पाइएहै अर केवलज्ञान सकल प्रत्यक्षहै जातै सर्वकौ विशद जानैहै। बहुरि परोक्षप्रमाणके भेद पांचहै स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान, आगम। तहां पूर्वै अनुभवमें आया वस्तुका स्मरण हो यादि आवना सो स्मृति है; अर दोऊनितै एकपना अर सदृशपना आदि कोऊ रूपज्ञान होना सो प्रत्यभिज्ञानहै; बहुरि साध्य साधनकी व्याप्ति जो अविनाभाव ताकौ जानै सो तर्क है; बहुरि साधनतै साध्यपदार्थका ज्ञानहोना सो अनुमानहै, ताके भेद स्वार्थानुमान, परार्थानुमान; तहां साधनतै साध्यकौ आपही निश्चयकरि जानै सो स्वार्थानुमान है, बहुरि परके उपदेशतै निश्चयकरि जानै सो परार्थानुमानहै। ताके पांच अवय-

चहैं; प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन, तहां साध्य अर साधनका आश्रय दोऊको पक्ष कहिये ऐसै पक्षके वचनकौ प्रतिज्ञा कहिएहै तहा साध्यका स्वरूप शक्य अभिप्रेत अप्रसिद्ध ऐसै तीनरूप है। अर साध्यका आश्रय प्रत्यक्षादिक करि प्रसिद्ध होयहै, बहुरि साध्यतै अविनाभाव प्राप्ति जाकै होय ऐसा साधनका स्वरूप है ताका वचनकौं हेतु कहिए, वहुरि पक्ष सरीखा तथा विलक्षण अन्य ठिकाणा होय ताकूं दृष्टांत कहिए ताका वचनकूं उदाहरण कहिए सो पक्ष सारिखेकूं अन्वयी कहिए विपरीतकूं व्यक्तिरेक कहिये। वहुरि दृष्टातकी अपेक्षा ले अर पक्षकौ समान करि कहै सो उपनयहै, वहुरि हेतुपूर्वक पक्षका नियम करि कहना निगमनहै। इनका उदाहरण ऐसाहै—यह पर्वत अग्निमान् है यह तो प्रतिज्ञाहै; जातै यह धूमवानहै यह हेतुहै; वहुरि जो धूमवान नाहीं सो अग्निमान नाहीं जैसै जलका निवास, यह व्यतिरेक दृष्टांतहै; ऐसा वचन यह उदाहरणहै; वहुरि यहु पर्वतभी वैसाही धूमवानहै यहु उपनयहै; वहुरि तातै यह अग्निमानहै यहु निगमनहै। ऐसै पांच प्रयोगका परार्थानुमानहै सो अव्युत्पन्नके अर्थिहै अर व्युत्पन्नके अर्थि प्रतिज्ञा अर हेतु ऐसै दोय अवयवस्वरूप हीहै। वहुरि आप्त जो सर्वज्ञ ताके वचनतै वस्तुका निश्चय करना सो आगमप्रमाणहै। ऐसै प्रमाणकी संख्या कही। वहुरि प्रमाणका विपय सामान्य विशेपस्वरूप पदार्थहै। वहुरि वीतरागता वा ग्रहणत्याग बुद्धि वा अपने विपयमे अज्ञानका नाश यहु कथचित् अभिन्न कथंचित् भिन्न प्रमाणफलहै।

ऐसै प्रमाणका संक्षेप स्वरूप कह्या, विशेप आक्षेप समाधान खंडन मंडनादि प्रमाणनिर्णय परीक्षामुखादि ग्रंथनितै जानना, यहां हेतु आदि आवैंगे तिनिकौ यथार्थ जान लेना।

आगै चार्वाक मत वाले अपना पक्ष स्थापैहै;—

केचिद्वदंति नास्त्यात्मा परलोकगमोद्यतः।
तस्याभावे विचारोऽयं तत्वानां घटते कुतः॥ १॥
विद्यते परलोकोऽपि नाभावे परलोकिनः।
अभावे परलोकस्य धर्माधर्मक्रिया वृथा॥ २॥
इह लोकसुखं हित्वा ये तपस्यंति दुर्धियः।
हित्वा हस्तगतं ग्रासं ते लिहंति पदांगुलिम्॥ ३॥
विहाय कलिलां शंकां यथेष्टं चेष्टतां जनः॥
चेतनस्य हि नष्टस्य विद्यते न पुनर्भवः॥ ४॥
नान्यलोके मतिः कार्या मुक्त्वा शर्म्मैहलौकिकम्।
दृष्टं विहाय नादृष्टे कुर्वते धिषणां बुधाः॥ ५॥
पृथिव्यंभोग्निवातेभ्यो जायते यंत्रवाहकः।
पिष्टोदकगुडादिभ्यो मदशक्तिरिव स्फुटम्॥ ६॥
जन्मपंचत्वयोरस्ति पूर्वापरयोरियम्।
सदा विचार्यमाणस्य सर्वथानुपपत्तितः॥ ७॥

अर्थ—कोई कहैहै परलोकका आगम जो जाना ताविषै उद्यमी ऐसा जो आत्मा सो नाहींहै, अर ता आत्माके अभाव होतसंतै यहु कह्या जो तत्वनिका विचार सो काहेतै वनै ?॥ १॥

बहुरि परलोकवाले आत्माके अभाव होतसंतै परलोकभी नाहींहै, अर परलोकके अभाव होतसंतै धर्म अधर्मकी क्रिया वृथा है॥ २॥

अब इस लोकके सुखकौ त्याग करि जे दुर्बुद्धी तपस्या करैंहै ते हस्तमैं आए ग्रासकौ छोडि अंगुलीकौ चाटैंहै॥ ३॥

तातै पापकी शंकाकूं छोडकरि मनुष्यहैं ते जैसै होय तैसै चेष्टा करो, नष्ट भया जो चेतन ताका फेर जन्म नाहीं॥ ४॥

इस लोकके सुखकौ छोडि अन्य लोकविषै बुद्धि करणी योग्य नाहीं जातै पंडित हैं ते प्रत्यक्षकौ छोडकरि अप्रत्यक्ष विपै बुद्धि न करैहै ॥ ५ ॥

जैसै पीठी जल गुड इत्यादिकतै प्रगटपनै मदशक्ति उपजै है तैसै पृथ्वी जल अग्नि पवन इनितै चैतन्य जीव उपजैहै ॥ ६ ॥

जन्मके अर मरणके पहले अर पीछै जीव सदा नहींहै, जातै विचारते भए जीवकी सर्वथा अनुपपत्ति है ॥ ७ ॥

नास्तिक कहैहै कि जैसै चून गुड आदितै मदशक्ति उपजैहै तैसैं पृथ्वी आदितै चेतना उपजैहै। अनादिनिधन जीव नाहीं ताका परलोक नाहीं तातै पापकी शका छोडि यथेष्ट विपयनिमे प्रवर्त्तौ। ऐसी स्वच्छद प्रवृत्ति पोपी। अब आचार्य ताके वचनका खंडन करैहै,—

परात्मवैरिणां नैतन्नास्तिकानां कदाचन।
जायते वचनं तथ्यं विचारानुपपत्तितः ॥ ८ ॥

अर्थ—यहु परके वा आपके वैरी जे नास्तिक तिनका पूर्वे कह्या जो यहु वचन सो कदाचित् सांचा न होयहै, जातै विचारविषैं अनुपपत्ति है ॥ ८ ॥

भावार्थ—पूर्वं कह्या नास्तिकका वचन विचार किये झूंठा भासैहै। आगै जीवका अस्तित्व साधैहैं,—

विद्यते सर्वथा जीवः स्वसंवेदनगोचरः।
सर्वेषां प्राणिनां तत्र बाधकानुपपत्तितः ॥ ९ ॥

अर्थ—स्वसंवेदनके गोचर कहिए जाननेमे आवे ऐसा जीवहै सो सर्वथा विद्यमानहै, जातै तहां सर्व जीवनिकौ बाधक प्रमाणकी अनुपपत्ति है।

भावार्थ—स्वसंवेदन विषै कोई प्रकार बाधा नहीं आवैहै ।

आगै ताही अर्थकौ पुष्ट करैहै,—

शक्यते न निराकर्त्तुं केनाप्यात्मा कथंचन ।
स्वसंवेदनवेद्यत्वात्सुखदुःखमिव स्फुटम् ॥ १० ॥

अर्थ—कोऊ करि भी आत्माहै सो निराकरण करनेकूं कोई प्रकार समर्थ न हूजिये है, जातै आत्माकौ स्वसंवेदनकरि प्रगट जाननेकौं योग्यपनांहै, सुखदुःखकी ज्यों ।

भावार्थ—जैसै सुखदुःख आपकरि जाननेमें आवैहै तैसै आपभी आपकरि जाननेमें आवैहै तातै अभावरूप नाहीं ॥ १० ॥

आगै ताही अर्थकौ पुष्ट करैहै,—

अहं दुःखी सुखी चाहमित्येषः प्रत्ययः स्फुटम् ।
प्राणिनां जायतेऽध्यक्षो निर्बाधो नात्मना विना ॥११॥

अर्थ—मै सुखाहूं मै दुःखीहूं ऐसी यहु जीवानिकै प्रगट बाधा-रहित प्रत्यक्ष प्रतीत है सो आत्मा विना न होयहै ॥ ११ ॥

आगै जैसै आपके शरीरमें आत्माहै तैसै परशरीरमें परके आत्माकौं सिद्ध करैहै,—

स्वसंवेदनतः सिद्धे निजे वपुषि चेतने ।
शरीरे परकीयेऽपि संसिद्ध्यत्यनुमानतः ॥ १२ ॥

अर्थ—स्वसंवेदनतै अपने शरीरमें चेतनकी सिद्धि होतसंतै परके शरीरमें अनुमानतै चैतन्यसिद्धि होयहै ॥ १२ ॥

आगैं ता अनुमानकौ दिखावैहै,—

परस्य जायते देहे स्वकीय इव सर्वथा ।
चेतनो बुद्धिपूर्वस्य व्यापारस्योपलब्धितः ॥ १३ ॥

अर्थ—परके देहविषै चैतन्य निश्चयतै बुद्ध होयहै, जातै बुद्धिपूर्वक व्यापारकी उपलब्धिहै; जैसै अपने देहविषै बुद्धिपूर्वक व्यापार होय तैसै, यहु दृष्टांतहै ॥ १३ ॥

जन्मपंचत्वयोरस्ति न पूर्वपरयोरयम् ।
नैषा गीर्युज्यते तत्र सिद्धत्वादनुमानतः ॥ १४ ॥

अर्थ—बहुरि जन्ममरणके पहले अर पीछै यहु आत्मा नहींहै ऐसी वाणी युक्त नाहीं जातै तहां अनुमानतै सिद्धिपना है।

भावार्थ—जन्म मरणके पहले पीछै आत्मा सिद्धहै ॥ १४ ॥

सोही कहैहै,—

चैतन्यमादिमं नूनमन्यचैतन्यपूर्वकम् ।
चैतन्यत्वाद्यथा मध्यमंत्यमन्यस्य कारणम् ॥ १५ ॥

अर्थ—आदिका चैतन्यहै सो निश्चयकरि अन्यचैतन्यपूर्वकहै, जातैं चैतन्यपना है; जैसैं अन्यका कारण मध्यका चैतन्य अर अंतका चैतन्यहै तैसै ।

भावार्थ—जीवकी मनुष्यादि नवीन पर्याय उपजैहै सो जीवद्रव्य अगली पर्याय छोडकरि नवीन धारण करैहै सर्वथा असत् न उपजैहै, जातै चेतनपना है यहु हेतुहै; जैसै मध्यका चैतन्य वा अंतका चैतन्य प्रत्यक्ष अन्य चैतन्यपूर्वकहै तैसै यहु दृष्टांतहै । इहां प्रयोजन ऐसाहै जो अगले पर्याय अपेक्षा पहला पर्याय कारणहै अर पहले पर्याय अपेक्षा सोही कार्यरूपहै, अर द्रव्यदृष्टि करि सर्व एकही वस्तुहै न्यारा नाही । ऐसै स्याद्वाद समझे यथार्थ ज्ञान होयहै ॥ १५ ॥

आगै इसही अर्थकौ पुष्ट करैहैं,—

तत्रैव वासरे जातः पूर्वकेणात्मना विना ।
अशिक्षितः कथं बालो मुखमर्पयति स्तने ॥ १६ ॥

अर्थ—पूर्व आत्मा विना नवीनही आत्मा होय तौ तिसही दिन विषै भयो जो बालक सो विना सिखाया स्तनविषै मुख कैसै लगावैहै।

भावार्थ—जो प्रथम आत्मा न होय अर नवीन ही उपज्या होय तौ उपज्या संताही बालक दूध कैसै चूखने लगि जायहै तातै मनुष्यादिपर्याय नवीन उपजैहै जीवद्रव्य तौ अनादिनिधनहीहै ऐसा निश्चय करना ॥ १६ ॥

भूतेभ्योऽचेतनेभ्योऽयं चेतनो जायते कथम् ।
विभिन्नजातितः कार्यं जायमानं न दृश्यते ॥ १७ ॥

अर्थ—अचेतन जे पृथ्वी आदि भूत तिनतै चेतन कैसै उपजैहै, जातै भिन्न जातितै कार्य उपज्या न देखिएहै ।

भावार्थ—जैसै माटीतै स्वजातीय घटतौ उपजैहै परंतु विजातीय जो पट सो उपज्या न देखिएहै तैसै अचेतन पृथ्वी आदितैं अचेतन शरीरादितौ उपजै परंतु चेतन जीव कैसै उपजै तातै जीवकौ भूतजनित कहना मिथ्याहै ॥ १७ ॥

आगै दोय पक्ष पूछकरि जीवकै भूतजनितपनकौ निराकरण करैहै;—

प्रत्येकं युगपद्भ्यो भूतेभ्यो जायते भवी ।
विकल्पे प्रथमे तस्य तावत्त्वं केन वार्यते ॥ १८ ॥
विकल्पे सद्वितीयेऽपि कथमेकस्वभावकः ।
भिन्नस्वभावकैरेभिर्जन्यते वद चेतनः ॥ १९ ॥

अर्थ—आचार्य पूछै है जीवहै सो पृथ्वी आदि भूतनितै प्रत्येक न्यारे न्यारे उपजैहै कि युगपत् एकठाही उपजैहै; सो न्यारा न्यारा उपजैहै ऐसा प्रथम विकल्प कहैगा तौ तिस जीवकै तावन्मात्रपना कौन् करि निवारिएहै ।

भावार्थ—पृथ्वी आदि न्यारे न्यारेनितै जीव उपजै तौ पृथ्वी जल अग्नि पवन इनि विषै कोई एककाही स्वभाव लीए जीव होय सो बनै नाहीं ॥ १८ ॥

बहुरि युगपत् एकही वार उपजैहै ऐसा दूसरा विकल्प ग्रहण करैगा तौभी न्यारे न्यारेहै स्वभाव जिनके ऐसे पृथ्वी आदि भूत तिन-करि एकस्वभाव चेतन कैसै उपजाइएहै सो कहिए।

भावार्थ—पृथ्वी आदि अनेक स्वभाव है तिनतै एकस्वभाव चैतन्य-का उपजना बनै नाहीं ॥ ऐसैं दोय पक्ष पूछ करि निर्वैद किया ॥१९॥

आगै फेर वादी कहैहै,—

चेतनोऽचेतनेभ्योऽपि भूतेभ्यो न विरुध्यते।
भिन्नानां मौक्तिकादीनां तोयादिभ्योऽपि दर्शनात्॥२०॥

अर्थ—अचेतन जे पृथ्वी आदि भूत तिनतैं चेतनहै सो नाही विरोधकौ प्राप्त होयहै, जातै भिन्न जे मुक्ताफल आदि तिनका जलादि-कतैं भिन्न दर्शन है।

भावार्थ—अचेतन जे पृथ्वी आदि तिनतै चेतनके उपजनेमे किछू विरोध नाहीं जातै जलादिन्यारे जातिहै तिनतैं मोती आदी न्यारे जाति उपजते देखिएहै ॥ २० ॥

ताकूं आचार्य कहैहै;—

तदयुक्तं यतो मुक्ता तोयादीनां विलोक्यते।
एका पौद्गलिकी जातिर्भिन्नताऽतः कुतस्तनी ॥ २१ ॥

अर्थ—जो तूनै कह्याकि मुक्ताफलादिक अर जलादिक इनिकी भिन्न जातिहै सो अयुक्तहै, जातै मुक्ताफल अर जल इत्त्यादिकनिकी एक पुद्गलसंबंधिनी जाति देखिएहै इसकारणतै तिनतै भिन्नता काहेकी।

भावार्थ— मुक्ताफल जलादिक इत्यादिकनिकी एक जातिहै, तातैं पुद्गलतै पुद्गलकाही पर्याय भया किछू जीवतौ न उपज्या तातै तेरा दृष्टांत विषम है ऐसा जानना ॥ २१ ॥

यतः पिष्टोदकादिभ्यो मदशक्तिरचेतना।
संभूताऽचेतनेभ्योऽतो दृष्टांतस्ते न चेतने ॥ २२ ॥

अर्थ—जातै अचेतन चून गुड आदितै अचेतन ही मदशक्ति प्रगट होयहै तातै तेरा यहु दृष्टांत चेतनकै विषै नहीं लगि सकैहै॥ २२॥

न शरीरात्मनोरैक्यं वक्तव्यं तत्ववेदिभिः
शरीरे तदवस्थेऽपि जीवस्यानुपलब्धितः ॥ २३ ॥

अर्थ—तत्वकौ जाननेवारे पुरुषनिकरि शरीर आत्माकूं एक कहना योग्य नाहीं, जातै शरीरकौ तहां अवस्थित होतै भी वाकी अनुपलब्धिहै अप्राप्तिहै।

भावार्थ—जीव परलोककूं जायहै तब शरीर इहां रहि जायहै अर जीव न देखिएहै तातै शरीर जीव एक नाही ऐसा निश्चय करना ॥ २३ ॥

आगै विज्ञानाद्वैतका निषेध करैहै;—

ज्ञानं विहाय नात्मास्ति नेदं वचनमंचितम्।
ज्ञानस्य क्षणिकत्वेन स्मरणानुपपत्तितः ॥ २४ ॥

अर्थ—ज्ञान विना और आत्मा नाहीं ऐसा कहना सत्यार्थ नाहीं, जातै ज्ञानके क्षणिकपने करि स्मरणकी अनुपपत्तिहै।

भावार्थ—पर्यायका एकांत पकडि करि विज्ञानाद्वैतवादी कहैहै;— निरंश अर क्षणिक एक ज्ञानहीहै या सिवाय और आत्मवस्तु नाहीं ताकौ आचार्यने कह्या जो ऐसाहै तौ " पूर्वैं मैने जान्याथा सो अब

जानूंहूं " ऐसा स्मरण न ठहरैगा, तातै अनतधर्मका समुदायरूप अनादिनिधन आत्मा कथंचित् ज्ञानतै न्यारा माननां योग्यहै ॥ २४ ॥

आगै ब्रह्माद्वैतकौ निषेधैहैं;—

नात्मा सर्वगतो वाच्यस्तत्स्वरूपविचारिभिः ।
शरीरव्यतिरेकेण येनासौ दृश्यते न हि ॥ २५ ॥

अर्थ—तिस आत्मस्वरूपके विचारने वाले पुरुषनि करि सर्वव्यापी आत्मा कहना योग्य नाही जा कारण करि यहु आत्मा शरीरतै न्यारा नहीं देखिएहै ।

भावार्थ—सर्वव्यापी आत्मा मानैहैं सो मिथ्या है, जातै शरीरके बाहिर आत्मा न दीखैहै ॥ २५ ॥

आगै दोय पक्ष पूछकरि निषेध करैहैं;—

शरीरतो बहिस्तस्य किं ज्ञानं विद्यते न वा ।
विद्यते चेत्कथं तत्र कृत्याकृत्यं नु बुध्यते ॥ २६ ॥
यदि नास्ति कुतस्तस्य तत्र सत्तावगम्यते ।
लक्षणेन विना लक्ष्यं न क्वापि व्यवतिष्ठते ॥ २७ ॥

अर्थ—शरीरके बाहिर तिस आत्माका ज्ञानहै कि नाहीहै, जो शरीरके बाहिर ज्ञानहै तो तहां करने योग्य न करने योग्य क्योन जानिए है ॥ २६ ॥

अर जो शरीरके बाहिर ज्ञान नहीं है तौ तहा शरीरके बाहिर तिस आत्माकी सत्ता काहेतै कहिएहै जातै लक्षण विना लक्ष्य कभी न तिष्टैहै ।

भावार्थ—ज्ञान लक्षणहै आत्मा लक्ष्यहै सो जहाँ लक्षण नाही तहां लक्ष्यभी नाही, तातै सर्वव्यापी आत्मा कहना मिथ्याहै ॥ २७ ॥

अर्थ—बहुरि सबनिका एकही आत्माहै ऐसै कहना युक्त नाहीं, जातै जन्म मरण सुख दुःख इनि न्यारे न्यारेनिका उपलंभहै।

सर्वेषामेक एवात्मा युज्यते नेति जल्पितुम्।
जन्ममृत्युसुखादीनां भिन्नानामुपलब्धितः॥ २८॥

अर्थ—बहुरिसबनिका एकही आत्माहै ऐसै कहना युक्त नाहीं, जातै जन्म मरण सुख दुःख इनि न्यारे न्यारेनिका उपलंभहै।

भावार्थ—जन्म मरण सुख दुःख इत्यादि सबनिकै न्यारे न्यारे देखिएहै तातै सबनिका एक आत्मा कहना मिथ्याहै॥ २८॥

न वक्तव्योऽणुमात्रोऽयं सर्वैर्येनानुभूयते।
अभीष्टकामिनीस्पर्शे सर्वांगीणः सुखोदयः॥ २९॥

अर्थ—बहुरि यहु आत्मा अणुमात्रहै ऐसा कहना योग्य नाहीं, जा कारण करि वांछित स्त्रीके स्वर्श विषैं सर्वांगतै उपज्या सुखका उदय सबनिकरि अनुभव कीजिएहै।

भावार्थ—स्त्रीके स्पर्शविषै सुखका उपजना सर्व अगविषै प्रत्यक्ष देखिएहै तातै अणुमात्र आत्मा कहनाहै सो मिथ्याहै॥ २९॥

समीरणस्वभावोऽयं सुंदरा नेति भारती।
सुखज्ञानादयो भावाः संति नाचेतने यतः॥ ३०॥

अर्थ—बहुरि वह कहैहै जो यहु सर्वांग सुख होनाहै सो पवनका स्वभावहै ताकूं आचार्य कहैहै ऐसी वाणी सुंदर नहीं, जातै सुख ज्ञान इत्यादि चेतन भावहै ते अचेतन पवनविषै नाहींहै॥ ३०॥

न ज्ञानविकलो वाच्यः सर्वथात्मा मनीषिभिः।
क्रियाणां ज्ञानजन्यानां तत्राभावप्रसंगतः॥ ३१॥

अर्थ—वहुरि ज्ञानरहित आत्मा पंडितनि करि सर्वथा कहना योग्य नाहीं जातै तिस आत्माविषै ज्ञान जनित क्रियानिका अभावका प्रसंग ठहरैहै।

भावार्थ—ज्ञानरहित आत्मा होय तौ ज्ञानजनित क्रियाका अभाव आवै अर ज्ञानजनित क्रिया आत्माविषै देखिएहीहै, तातै ज्ञानरहित आत्मा कहना मिथ्याहै ॥ ३१ ॥

प्रधानज्ञानतो ज्ञानी न वाच्यो ज्ञानशालिभिः ।
अन्यज्ञानेन न ह्यन्यो ज्ञानी क्वापि विलोक्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—वहुरि प्रधान ज्ञानकरि आत्मज्ञानीहै ऐसा ज्ञानवंतनि करि कहना योग्य नाही, जातै और केवलज्ञान करि और ज्ञानी कहूंभी न देखिएहै ॥ ३२ ॥

वहुरि कहैहै;—

न शुद्धः सर्वथा जीवो वंधाभावप्रसंगतः ।
न हि शुद्धस्य मुक्तस्य रेश्यते कर्मवंधनम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—सर्वथा जीव शुद्ध नाहीं जातै वंधके अभावका प्रसंग आवैहै, शुद्ध मुक्त जीवकै कर्मवंधन नहीं देखिएहै ।

भावार्थ—सर्वथा शुद्ध जीव होयतौ बंधका अभाव ठहरै, पुण्य पापरूप कर्मवंध कौनकै होय? रागादिक भाव कौनकै होय? तातै सर्वथा जीवकौ शुद्ध कहना मिथ्याहै ॥ ३३ ॥

प्रधानेन कृते धर्मे मोक्षभागी न चेतनः ।
परेण विहिते भोगे तृप्तिभागी कुतः परः ॥ ३४ ॥

अर्थ—वहुरि वह कहैहै धर्म प्रधान करैहै आत्मातौ शुद्ध अकर्त्ता-हीहै ताकूं आचार्य कहैहै;—प्रधानकरि धर्मकौ करते सते चेतन मोक्ष-

गामी न होय जातैं औरकरि भोग किए संते और तृप्ति भजनेवाला कैसै होय ?।

भावार्थ—जैसै भोग और भोगै अर सुखी और होय ऐसी बनै नाहीं तैसै प्रधान तौ धर्मकरै अर चेतनकी मोक्ष होय ऐसी वनैं नाहीं ॥३४॥

प्रधानं यदि कर्माणिं विधत्ते मुंचते यदि।
किमात्माऽनर्थकः सांख्यैः कल्प्यते मम कथ्यताम् ॥३५॥

अर्थ—जो प्रधान कर्मनिकौ करैहै अर त्यागैहै, बंध मोक्ष प्रधानकैं होयहै, तो सांख्यमतवालेनि करि निष्प्रयोजन आत्मा क्यौं कल्पिएहै ? सो मोकूं कहिए ॥ ३५ ॥

न ज्ञानमात्रतो मोक्षस्तस्य जातूपपद्यते।
भैषज्यज्ञानमात्रेण न व्याधिः क्वापि नश्यति ॥ ३६ ॥

अर्थ—सांख्यमती कहैहै द्वैतरूप भ्रम करि भया जो बंध सो अद्वैतके ज्ञान मात्र करि नासि जायहै; ताकौ आचार्य कहै है—तिस सांख्यके ज्ञानमात्रतै मोक्ष कदाचित् न प्राप्त होय है जैसैं औषधिके ज्ञान करि रोग कहूं नहीं विनसैहै।

भावार्थ—जैसै औषधिका जानना अर प्रतीति अर आचरण तीनौंही भावनि करि रोग विनसैहै सुखी होयहै, अर केवल जानना वा केवल प्रतीति करना वा केवल आचरण करना इन न्यारे न्यारेनि करि रोग न विनसैहै सुखी न होयहै तैसै ज्ञान दर्शन चरित्र तीनौंकी एकता करि बंध नासि मोक्ष होयहै ज्ञानादिक न्यारे न्यारेनकरि बंध नासि मोक्ष न होयहै ऐसा निश्चय करना ॥ ३६ ॥

आगै ज्ञानकौ प्रधानका धर्म मानै है ताका निर्वेदन करैं हैं;—

अचेतनस्य न ज्ञानं प्रधानस्य प्रवर्त्तते।
स्तंभकुंभादयो दृष्टा न क्वापि ज्ञानयोगिनः ॥ ३७ ॥

अर्थ—अचेतन प्रधानकैं ज्ञान नाहीं प्रवर्त्तै है, जातैं स्तंभ घट इत्यादि अचेतन पदार्थहै ते ज्ञानसहित कहूंभी न देखे ॥ ३७ ॥

फेर कहैहैं;—

उक्त्वा स्वयमकर्त्तारं भोक्तारं चेतनं पुनः ।
भापमाणस्य सांख्यस्य न ज्ञानं विद्यते स्फुटम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—आपही अचेतनकौं अकर्त्ता कहकरि वहुरि चेतनकौं भोक्ता-कहता जो सांख्य ताकूं ज्ञान प्रगट नाहींहै, अज्ञानी है ।

भावार्थ—सांख्य आत्माकूं आपही अकर्त्ता कहै वहुरि ताहीकूं भोक्ता वतावै सो यहु प्रगट अज्ञानहै तातै अन्य करै अन्य भोगै यह वात असंभवहै ॥ ३८ ॥

आगें सर्वगुणरहित होय सो मोक्षहै ऐसे श्रद्धानकूं निषेधैहै;—

सकलैर्न गुणैर्मुक्तः सर्वथात्मोपपद्यते ।
न जातु दृश्यते वस्तु शशशृंगमिवागुणम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—समस्त गुणनिकरि रहित सर्वथा आत्मा न होयहै जातै शशाके शृंगकी ज्यौं निर्गुण वस्तु कदापि न देखिए है ।

भावार्थ—गुणका समूहही गुणीहै अर सर्वथा गुणका अभाव होतैं गुणीका भी अभावहै तातैं गुणरहित मोक्ष कहना मिथ्या है ॥ ३९ ॥

आगें ज्ञानका अर ज्ञानीका सर्वथा भेद मानैहै ताका निषेध करैहै,—

न ज्ञानज्ञानिनोर्भेदः सर्वथा घटते स्फुटम् ।
संवंधाभावतो नित्यं मेरुकैलाशयोरिव ॥ ४० ॥

अर्थ—संवंधके अभावतैं सर्वथा सुमेरु अर कैलाशकी ज्यौं प्रगट-पने ज्ञान और ज्ञानीका सर्वथा भेद वनैहै ।

भावार्थ—जैसैं मेरु अर कैलाश भेदरूपहै तिनका संवंधका अभाव है तैसैं ज्ञानका अर ज्ञानीका भेदमाने सवंधका अभाव आवैहै ॥ ४० ॥

बहुरि कहैहै जो समवायकरि संबंध होयहै ताका निषेध करैहैं;—

समवायेन संबंधः क्रियमाणो न युज्यते ।
नित्यस्य व्याधिनस्तस्य सर्वत्राप्यविशेषतः ॥ ४१ ॥

अर्थ—समवायकरि करया भया संबंध नाहीं युक्त होय है, जातै नित्य अर व्यापक जो समवाय ताका सर्वत्र अविशेष है ।

भावार्थ—नैयायिक समवाय पदार्थकौं नित्य अर व्यापक मानैहै ताकौं आचार्य कहैहै;—

जो समवायकरि आत्मा अर ज्ञानका सबंधं होयहै तो घटपटादि अचेतन पदार्थ विषै ज्ञानका संबंध क्यों न भया ? समवाय तौ नित्य अर व्यापक भया भेद रहित मानैहै अर घटपटादि विषै समवायका भेद मानैगा तौ नित्य व्यापक समवाय कहना न वनैगा तातै समवाय करि संबंध मानना मिथ्याहै ॥ ४१ ॥

आगै आत्माकै समवायकै तिस सर्वथा नित्यपनामे वा अनित्यपनांमें दूषण दिखावैहै;—

नित्यताऽनित्यता तस्य सर्वथा न प्रशस्यते ।
अभावादर्थनिष्पत्तेः क्रमतोऽक्रमतोऽपि वा ॥ ४२ ॥

अर्थ—तिस समवायकै सर्वथा नित्यपना वा अनित्यपना न सराहिएहै जातैं क्रमसैं वा युगयत अर्थकी उत्पत्तिका अभावहै ।

भावार्थ—समवायकौ सर्वथा नित्य माननेमें क्रमसै वा युगपय अर्थक्रियाका अभाव आवैहै ॥ ४२ ॥

सो ही दिखाइएहै;—

न नित्यं कुरुते कार्यं विकारानुपपत्तितः ।
नानित्यं सर्वथा नष्टमारोग्यं मृतवैद्यवत् ॥ ४३ ॥

अर्थ—नित्यहै सो कार्यकौ न करैहै जातै नित्यकै अवस्था जो विकारविशेप ताकी अनुपपत्तिहै, वहुरि अनित्य सर्वथा विनाशरूप सो भी कार्यकौ न करैहै जैसै मृत वैद्य नीरोगपनेंकौ न करै तैसै, जो आपही नासि गया सो कार्य कैसै करै, तातै नित्य वा अनित्य दोउ एकांत मिथ्या है ॥ ४३ ॥

आगै अमूर्त्तीकपनेको एकांतकौ निपेध करैहै;—

नामूर्त्तः सर्वथा युक्तः कर्मबंधप्रसंगतः ।
नभसो न ह्यमूर्त्तस्य कर्मलेपो विलोक्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—सर्वथा आत्मा अमूर्त्तीक कहना युक्त नांही, जातै कर्मबंधका प्रसंग आवैहै। वहुरि अमूर्त्तीक आकाशकै कर्मनिका लेप न है विलोकिएहै।

भावार्थ—आकाशवत् सर्वथा संसारी जीव मुक्त होयतौ जैसैं आकाशकै कर्मलेप नांही तैसै आत्माके भी कर्मबंध न ठहरै तातैं सर्वथा अमूर्त्त मानना मिथ्याहै ॥ ४४ ॥

स यतो बंधतो भिन्नो भिन्नो लक्षणतः पुनः ।
अमूर्त्तता ततस्तस्य सर्वथा नोपपद्यते ॥ ४५ ॥

अर्थ—जातै सा आत्मा बंधतै कथंचित् अभिन्नहै वहिर लक्षण करि भिन्नहै तातै तिस आत्माकै सर्वथा अमूर्त्तपना नाही सिद्ध होयहै।

भावार्थ—बंधका लक्षण जडताहै आत्माका लक्षण चैतन्यहै ऐसै लक्षणभेद करि आत्मा अर बंध भिन्नहै तथापि बंधदृष्टि करि अभिन्नहै जातैं बंधका निमित्त पाय आत्माकै क्रिया होयहै अर आत्माका निमित्त पाय बंधका परिणमन होयहै, ऐसा निमित्तनैमित्तिक संबंध देखिए है, तातै सर्वथा संसारी जीवकौ अमूर्त्त मानना योग्य नांही ॥ ४५ ॥

निर्बाधोऽस्ति ततो जीवः स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकः।
कर्ता भोक्ता गुणी सूक्ष्मो ज्ञाता द्रष्टा तनुप्रमा॥ ४६॥

अर्थ—तातै जीवहै सो बाधारहितहै, इस विशेषण करि शून्यवादका निराकरण किया, बहुरि स्थिति उत्पत्ति विनाशस्वरूपहै।

भावार्थ—क्रमभावी पूर्वपर्यायका नाश होयहै उत्तरपर्याय उपजैहै भावीपर्यायकरि स्थिरहै ऐसै युगपत तीनौही धर्मकरि युक्तहै, इसही विशेषणकरि सर्वथा नित्य कूटस्थ कहनेवालोंका निराकरण किया। बहुरि निश्चयकरि चैतन्यभावनिका व्यवहारकरि पुद्गलकर्मनिका कर्त्ताहै अर भोक्ताहै इस विशेषणकरि सर्वथा अकर्त्ता वा अभोक्ता माननेवालेका निराकरण किया। बहुरि सूक्ष्महै ग्रहणमै न आवैहै इस विशेषण करि शरीररूप आत्मा माननेवालेनिका निराकरण किया। बहुरि जाननेवाला देखनेवालाहै इस विशेषणकरि ज्ञान दर्शनतै भिन्न आत्मा माननेवालेनिका निराकरण किया॥ ४६॥

स्थिते प्रमाणतो जीवे परेऽप्यार्थाः स्थिता यतः।
क्रियमाणा ततो युक्ता सप्ततत्वविचारणा॥ ४७॥

अर्थ—जातै जीवकौ प्रमाणतै सिद्ध होतसंतै और भी पदार्थ हैं ते सिद्धहै तातै करी नई जो सप्ततत्वनिकी विचारणा सो युक्तहै।

भावार्थ—या प्रकार पूर्वोक्त प्रमाणतैं जीवकौं सिद्ध होतसंतै औरभी पदार्थ सिद्ध होयहै तातै जीवकै विकारहेतु अजीव है अर दोऊनके पर्याय आश्रवादि पंच तत्व औरहै ते सिद्ध भये। तब प्रथमवादीनै कह्याथा जो जीव ही नांही, तत्वका विचार करणा निरर्थकहै; ऐसै कहनेका निराकरण भया॥ ४७॥

आगै सर्वज्ञका अभाव मानैहै तिनका निराकरण करैहै;—तहां वादी अपना पक्ष कहैहै;—

परे वदंति सर्वज्ञो वीतरागो न दृश्यते।
किंचिज्ज्ञत्वादशेपाणां सर्वदा रागवत्त्वतः ॥ ४८ ॥

अर्थ—और केई कहैहै सर्वज्ञ वीतराग नाहीं देखिएहै जातैं सवनिकै किंचित् जानपनाहै अर सदाकाल रागवानपना है।

भावार्थ—कोउ सर्वज्ञ वीतराग नाहीं जातै सब जीव अल्पज्ञ वा सरागी देखिएहै ॥ ४८ ॥

आगैं ताका निपेध करैहै;—

तदयुक्तं वचस्तेषां ज्ञानं सर्वार्थगोचरम्।
न विना शक्यते कर्तुं सर्वेषु ज्ञानवारणम् ॥ ४९ ॥
समस्ताः पुरुपा येन कालत्रितयवर्त्तिनः।
निश्चिताः स नरः शक्तः सर्वज्ञस्य निषेधने ॥ ५० ॥

अर्थ—वो पूर्वोक्त वचन तिनका अयुक्तहै जातै सर्व पदार्थ हैं विपय जाके ऐसे ज्ञान विना सवनिविपै ज्ञानका निपेध करने कौं समर्थ नाहीहै, जातै कालत्रयवर्त्ती समस्त पुरुप निश्चय किये होय सो. सर्वज्ञके निपेध करनेमै समर्थ होय।

भावार्थ—त्रिकालवर्त्ती समस्त पुरुपनिकौ जो जानता होय सो सर्वत्र सर्वज्ञका निपेध करै सो ऐसा जाननेवाला तू मानै नाहीं, अर मानैहै तौ सोही सर्वज्ञा भया। तातै सर्वज्ञ वीतरागका निपेध करना मिथ्याहै ॥५० ॥

न चाभावप्रमाणेन शक्यते स निषेधितुम्।
सर्वज्ञेऽतींद्रिये तस्य प्रवृत्तिविगमत्वतः ॥ ५१ ॥

अर्थ—वहुरि सर्वज्ञ वीतरागहै सो अभाव प्रमाण करि भी निषेध-नेंकूं समर्थ न हूजिएहै, जातै अतींद्रिय जो सर्वज्ञ ता विपै तिस अभाव प्रमाणकी प्रवृत्तिका अभावहै।

भावार्थ—निषेधने योग्य अर न निषेधने योग्य वस्तुका आधार इन दोउनिका जाकै ज्ञान होय सो आधारविषै आधेयकौ न देखि आधेयकौ निषेध अभावप्रमाणकरि करैहै, जैसै कोऊ पृथ्वी अर घट दोऊनिकौ जानैहै सो पृथ्वीविषै घटकौ न देखि अभाव प्रमाण करि घटका निषेध करै जो इहां पृथ्वीविषै घट नाहीं, सो सर्वज्ञ अतींद्रियहै ताविषै ऐसे अभावप्रमाणकी प्रवृत्ति नाहीं, ऐसे अभाव प्रमाण करि सर्वज्ञका निषेध करना मिथ्याहै ॥ ५१ ॥

प्रमाणाभावतस्तस्य न च युक्तं निषेधनम् ।
अनुमानप्रमाणं हि साधकं तस्य विद्यते ॥ ५२ ॥

अर्थ—बहुरि प्रमाणके अभावतै तिस सर्वज्ञका निषेध योग्य नाहीं, जातैं तिस सर्वज्ञका साधनेवाला अनुमान प्रमाणहै ।

भावार्थ— सर्वज्ञाभाववादी कहैहै;—प्रत्यक्षप्रमाणका विषय सर्वज्ञ नाहीं जातै इंद्रियकरि सो जान्या जाय नाहीं । बहुरि अनुमानका भी विषय नाहीं जातै सर्वज्ञका लिंग किछु दीखै नाहीं । बहुरि आगमभी ताका सद्भाव न साधैहै जातैं आगम है सो तौ कर्मकांडहीका कथन करैहै ताकै सर्वज्ञके जाननेका अयोगहै अर अनादि आगम सादि पुरुषका कहनेवाला बनै नाहीं, बहुरि अनित्य आगम सर्वज्ञकौ साधैहै सो तिस सर्वज्ञकरि कहे आगमके सर्वज्ञके निश्चय विना प्रमाणताका अनिश्चय है, बहुरि आगमकी प्रमाणता होतै सर्वज्ञकी प्रमाणता होय अर सर्वज्ञकी प्रमाणता होतै आगमकी प्रमाणता होय ऐसै इतरेतराश्रय दूषण भी आवैहै, बहुरि सर्वज्ञप्रणीत अप्रमाणभूत जो आगम ताकौ सर्वज्ञ कहना अत्यंत असंभवहै । बहुरि सर्वज्ञ समान अन्यपदार्थका ग्रहणका असंभवहै तातै उपमानप्रमाणभी सर्वज्ञका जनावनेवाला नाहीं । तातैं पांचौं ही प्रमाणका विषय न होतै अभावप्रमाणहीकी प्रवृत्तिहै

तातै ताका अभाव ही आवैहै, ताकौ आचार्य कहैहै ऐसे निषेध करणा युक्त नाही जातै सर्वज्ञका साधक अनुमान विद्यमानहै ॥ ५२ ॥

सोही अनुमान दिखावैहै; —

वीतरागोऽस्ति सर्वज्ञः प्रमाणाबाधितत्वतः ।
सर्वदा विदितः सद्भिः सुखादिकमिव ध्रुवम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—संतनि करि सर्वदा जान्या ऐसा वीतराग सर्वका जाननेवालाहै, जातैं प्रमाणकरि अबाधितपनाहै निश्चयकरि सुखादिककी ज्यौं ।

भावार्थ—जैसै सुखादिक स्वसंवदनगोचर निर्बाध सिद्धहै तैसैं सर्वज्ञ वीतराग भी प्रमाणसिद्धहै ॥ ५३ ॥

सो ही कहैहै;—

क्षीयते सर्वथा रागः क्वापि कारणहानितः ॥
ज्वलनो हीयते क्लिन्नः काष्ठादीनां वियोगतः ॥ ५४ ॥

अर्थ—कोई आत्माविषै कारणकी हानितै सर्वप्रकारभी राग क्षीण होयहै; जैसै काष्ठादिकके वियोगतै क्लेशरूप अग्नि क्षीण होयहै।

भावार्थ—जैसै काष्टादिकके अभावतै अग्निका अभाव होयहै तैसैं कर्मनिके अभावतै रागका अभाव होयहै । इहा अतिशायक हेतु दियाहै कि कोइक किंचित् कर्मके अभावतै किछू रागादिकका अभाव देखिएहै तौ कोइकै सर्व कर्मके अभावतै सर्व रागकाभी अभाव होयगा, ऐसैं निश्चय कियाहै ॥ ५४ ॥

आगै सर्वज्ञपनेका निश्चय करावैहै;—

प्रकर्षस्य प्रतिष्ठानं ज्ञानं क्वापि प्रपद्यते ।
परिमाणमिवाकाशे तारतम्योपलब्धितः ॥ ५५ ॥

अर्थ—ज्ञानहै सो कोई आत्मा विषै प्रकर्ष जो वृद्धि ताकी प्रतिष्ठा-कौं प्राप्त होयहै जातै तारतम्यकी उपलब्धिहै जैसै आकाशविषै परिमा-णकी वृद्धिकी हद्दकौं प्राप्त होयहै तैसै।

भावार्थ—जो तारतम्य पाइएहै सो वृद्धिकी सीमाकौं प्राप्त भया भी पाइए तातै अनुमान किया कि ज्ञानका अंश वधती वधती है तो ज्ञान अपनी वृद्धिकी हद्दकौं प्राप्त भया भी होयगा जैसै परमाणु एक प्रदेश-मात्रतै वंधतीहै ताका उत्कृष्टपना सर्व आकाशविषैहै, यह दृष्टांत दिया है ऐसा जानना ॥ ५५ ॥

प्रकर्षावस्थितिर्यत्र विश्वदृश्वा स गीयते।
प्रणेता विश्वतत्त्वानां क्षपिताशेषकल्मषः ॥ ५६ ॥

अर्थ—वहुरि जाविषै ज्ञानके वंधनेकी अवस्थिति है हद्दहै सो विश्व-दर्शी कहिये कैसाहै सो समस्त तत्वनिका जाननेवालाहै अर नाश कियेहै समस्त रागादिक जानै ऐसाहै ॥ ५६ ॥

वोध्यमप्रतिवंधस्य वुध्यमानस्य न श्रमः।
वोधस्य दहतो दह्यं पावकस्येव विद्यते ॥ ५७ ॥

अर्थ—जैसै दहने योग्य जो काष्ठादिक ताहि दहता जो अग्नि ताकै श्रम नाहीहै तैसै ज्ञेयको जानता जो आवरणरहित ज्ञान ताकै श्रम नाहींहै ॥ ५७ ॥

अनुपदेशसंवादि लाभालाभादिवेदनम्।
समस्तज्ञमृतेऽन्यस्य मिलिंगे शोभते कथम् ॥ ५८ ॥

अर्थ—अंतरिक्ष दूरवर्त्ती पदार्थ अर लाभ अलाभ इत्यादिक का जानना सर्वज्ञविना औरकै उपदेशविषै कैसै सोहै, न सोहैहै ॥ ५८ ॥

आगै वादी कहैहै अपौरुषेयवेदतै सर्वका उपदेशहै। ताका निषेध करैहै;—

अपौरुषेयतो युक्तमेतदागमतो न च।
युक्त्या विचार्यमाणस्य सर्वथा तस्य हानितः ॥५९॥

अर्थ—बहुरि यह सर्वका उपदेशहै सो अपौरुषेय आगमतै युक्त नाहीं, जातै युक्ति करि विचारया भया तिस आगमकी सर्वथा हानिहै।

भावार्थ—युक्ति करि अपौरुषेय आगम खड्या जाय है॥ ५९॥

सोही दिखावैहैं;—

आगमोऽकृत्रिमः कश्चिन्न कदाचन विद्यते।
तस्य कृत्रिमतस्तस्माद्विशेषानुपलंभतः॥ ६०॥

अर्थ—कोई आगम विना किया कदाच न होयहै, जातै ताकै तिसकरि भए आगमतै विशेषका अनुपलंभहै।

भावार्थ—जे शब्द वेदविषैहै तेही अन्य कृत्रिम आगमविषैहैं दोउनिमैं किछू भेद दीसै नाही तातैं वेदकौ अकृत्रिम कहना मिथ्याहै॥ ६०॥

आगै फेर कहैहै;—

पश्यंतो जायमानं यत्ताल्वादिक्रमयोगतः।
वदंत्यकृत्रिमं चेदमाश्चर्यं किमतः परम्॥ ६१॥

अर्थ—तालु आदिके क्रमके योगतै उपजतेकौ देखते वेदकौ अकृत्रिम कहैहै इसतै दूजा और कहा आश्चर्यहै।

भावार्थ—प्रत्यक्षकौ भी और प्रकार कहै या सिवाय और आश्चर्य कहा॥ ६१॥

आगै वादी कहैहै, अक्षर तौ त्रिलोकव्यापी नित्यहीहै परंतु जब तिनकी प्रगट करनेवाली वायु प्रगटैहै तब वर्ण प्रगट होयहै। ताका आचार्य निषेध करैहै;—

त्रिलोकव्यापिनो वर्णा व्यज्यंते व्यंजकैरिति।
न समा भाषिणी भाषा सर्वव्यक्तिप्रसंगतः॥ ६२॥

अर्थ—तीन लोकविषैं व्यापक जे अक्षरहै ते व्यंजक जे प्रगट करनेवाले वायु तिनकरि प्रगट करिएहै ऐसी बानी यथार्थकहनेवाली नाहीं, जातैं सर्व अक्षरनिकी व्यक्तिका प्रसंग आवैहै।

भावार्थ—त्रिलोकव्यापक जे सर्व वर्ण तिनकौ अभिव्यंजक वायु प्रगट करैहै तौ जब वायु प्रगटै तब सर्वही अक्षर सुनिवेमै आए चाहिए सो वनै नाहीं, तातै तू कहैहै सो मिथ्याहै॥ ६२॥

एकत्र भाविनः केचित् व्यज्यंते नापरे कथम्।
न दीपव्यज्यमानानां घटादीनामयं क्रमः॥ ६३॥

अर्थ—बहुरि एक ठिकाने वर्त्तते जे वर्ण ते केई प्रगट करिएहै आर प्रगट क्यौ न करिएहै, जातै दीपक करि प्रगट होते जे घटादिक तिनकै यहु क्रम नाहींहै।

भावार्थ—दापक है सो एकस्थानवर्त्ती घट पट आदि सर्वहीकौं प्रकासैहै, ऐसा नाहीं जो घटकौ प्रकासै पटकौं न प्रकासै तैसै वायु अक्षरनिकौ प्रकासैहै तौ सर्वही कौ प्रकासै, इहां तौ कोई अक्षर सुनिएहै कोई न सुनिएहै। तातै वायु अक्षरनिकौ प्रकासैहै ऐसा कहना बनै नाहीं॥ ६३॥

फेर कहैहै,—

व्यंजकव्यतिरेकेण निश्चीयंते घटादयः।
स्पर्शप्रभृतिभिर्जातु न वर्णाश्च कथंचन॥ ६४॥

अर्थ—घटादि पदार्थ है ते स्पर्शादिकनि करि व्यंजक विना निश्चय कैरैहै बहुरि वर्णहै ते कदाचित् कोई प्रकार नाहीं निश्चय कीजिएहै।

भावार्थ—घटादि पदार्थहै ते प्रगट करनेवाले विनाही स्पर्शादि करि निश्चय करिएहै, अर सर्वव्यापी वर्ण नित्यहै तिनका निश्चय कदा-

च कोई प्रकारभी न होयहै । तातैं सर्वव्यापक नित्य अक्षरनकौ मानना मिथ्याहै ॥ ६४ ॥

व्यज्यंते व्यंजकैर्वर्णा न जन्यंते पुनर्ध्रुवम् ।
इत्यत्र विद्यते काचिन्न प्रमा वेदवादिनः ॥ ६५ ॥

अर्थ—व्यंजक कहिये प्रगट करनेवाले जे वायु तिनकरि वर्ण है ते प्रगटकरिएहै वहुरि निश्चय करि उपजाइए नाहीहैं ऐसी वेदवादीकी प्रमाणता कोई इहां नाही विद्यमान होयहै ॥ ६५ ॥

आगै फेर कहैहैं;—

विना सर्वज्ञदेवेन वेदार्थः केन कथ्यते ।
स्वयमेवेति नो वाच्यं संवादित्वाप्रसंगतः ॥ ६६ ॥

अर्थ—आचार्य कहैहै सर्वज्ञदेव विना वेदका अर्थ कौनकरि कहिएहै, स्वयमेव कहिएहै ऐसा कहना युक्त नाहीं जातै भले वक्तापनाका अप्रसग आवैहै ।

भावार्थ—सर्वज्ञ विना वेदका अर्थ कहना वनै नाही जातै सर्वज्ञ विना औरका ज्ञान प्रमाण नाहीं और कौं और कहि देय, अर वेद आपही अर्थ कहैहै तौ ताका कोई वक्ता न ठहरा, तव यह अर्थहै यह अर्थ नहींहै ऐसी कौन कहै जातै वेदतौ जडहै तातै वेदकौ स्वयमेव अर्थकहना मिथ्याहै ॥ ६६ ॥

न पारंपर्यतो ज्ञानं सर्वज्ञानां प्रवर्त्तते ।
समस्तानामिवांधानां मूलज्ञानं विना कृतम् ॥ ६७ ॥

अर्थ—वहुरि वह कहैहै जो असर्वज्ञनिका ज्ञान परंपरायतै सत्यार्थ प्रवर्त्तै है । ताकूं आचार्य कहैहै;—जो सर्व असर्वज्ञनिका ज्ञान परंपरायतैं न प्रवर्त्तैहै, जैसै समस्त अंधेनिका मूलज्ञान कह्या विना कार्य न प्रवर्त्तै तैसै ।

भावार्थ—बहुत भी अंधे पुरुष परंपरायतैं चलै तौ भी मूलज्ञान-विना वांछित स्थान पावै नांही तैसै परंपरायतै भी अल्पज्ञानीनिका वचन प्रमाण नाहीं ॥ ६७ ॥

आगै फेर कहैहै;—

कृत्रिमेष्वप्यनेकेषु न कर्त्ता स्मर्यते यतः।
कर्तृस्मरणतो वेदो युक्तो नाकृत्रिमस्ततः॥६८॥

अर्थ—बहुरि वह कहैहै जो वेदकौ कर्त्ता काहूकै स्मरण नाही तातै वेद अकृत्रिम है। ताकूं आचार्य कहैहै;—जो ऐसा नाहीं जातै अनेक करे पदार्थनिविषै भी कर्त्ता स्मरन न कीजिए है, अथवा ताके कर्त्ताके स्मरनतै वेद कृत्रिम युक्त है।

भावार्थ—कोई कहै वेदके कर्त्ताको याद नाही तातै अकृत्रिमहै, ताकूं कह्याहै जो ऐसे तौ पुराने मंदिर वा करे भए मोती इत्यादिकका भी कर्त्ताकी याद नांही ते भी अकृत्रिम ठहरै। बहुरि वेदके तौ कर्त्ता भी ब्रह्मादिक कहैहै तातै भी कृत्रिमही वेद ठहरै। तातै अकृत्रिम वेद कहना मिथ्याहै ॥ ६८ ॥

हिंसादिवादकत्वेन न वेदो धर्मकांक्षिभिः।
वृकोपदेशवन्नूनं प्रमाणीक्रियते बुधैः॥ ६९ ॥

अर्थ—धर्मके वांछक पंडितनि करि हिसादिकके उपदेशपनें करि जो खारपट ताके उपदेशकी ज्यौं वेदहै सो प्रमाण करना योग्य नाहीं ॥ ६९ ॥

वीतरागश्च सर्वज्ञो जिन एवावशिष्यते।
अपरेषामशेषाणां रागद्वेषादिदृष्टितः॥ ७० ॥

अर्थ—वीतराग अर सर्वज्ञ ऐसा जिनेंद्रही एक न्यारा कीजिए है जातै और सर्वनिकै रागद्वेषादि दीसैहै ॥ ७० ॥

न विरागा न सर्वज्ञा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
रागद्वेषमदक्रोधलोभमोहादियोगतः ॥ ७१ ॥

अर्थ—ब्रह्मा विष्णु महेश्वरहै ते न वैरागीहै न सर्वज्ञहै, जातै राग-द्वेष मद क्रोध लोभ मोह इत्यादिक सहितहै तातै ॥ ७१ ॥

रागवंतो न सर्वज्ञा यथा प्रकृतिमानवाः।
रागवंतश्च ते सर्वे न सर्वज्ञास्ततः स्फुटम् ॥ ७२ ॥

अर्थ—रागसहितहै ते सर्वज्ञ नाहीं जैसै ससारी मनुष्यहै तैसै, वहुरि जे ब्रह्मादिकहै ते सर्व रागसहितहै यातै ते प्रगटपने सर्वज्ञ नाहीं ॥ ७२ ॥

आश्लिष्टास्तेऽखिलैर्दोषैः कामकोपभयादिभिः।
आयुधप्रमदाभूषाकमंडल्वादियोगतः ॥ ७३ ॥

अर्थ—ब्रह्मादिकहै ते कामक्रोधभय इत्यादिक समस्त दोषनि करि युक्तहै, जातै आयुध स्त्री आभूषण कमंडल इत्यादि सहितहै ॥ ७३ ॥

प्रमदा भाषते कामं द्वेषमायुधसंग्रहः।
अक्षसूत्रादिकं मोहं शौचाभावं कमंडलुः ॥ ७४ ॥

अर्थ—स्त्री तौ कामकौं कहैहै अर आयुधका धारण द्वेषभावकौं जनावैहै अर माला यज्ञोपवीतादिक मोहकौं दिखावै है अर पवित्रपनेके अभावकौं कमडलु दिखावैहै।

भावार्थ—जो कामादिक विकार न होय तौ स्त्री आदि काहेकौ राखै, तातै स्त्री आदिहै ते कामादिविकारनिकौ ब्रह्मादिकनिमै प्रगट दिखावैहै ऐसा जाननां ॥ ७४ ॥

आगै पुरुषाद्वैतवादी कहैहै ताका निषेध करैहै;—

परमः पुरुषो नित्यः सर्वदोषैरपाकृतः।
तस्यैतेऽवयवाः सर्वे रागद्वेषादिभाजिनः ॥ ७५ ॥

नैवाधिरोचते भाषा विचारोद्यतचेतसाम्।
रागित्वेऽवयवानां हि नीरागोऽवयवी कुतः॥ ७६॥

अर्थ—परवादी कहैहै जो पुरुष नित्यहै सो सर्वदोषनि करि रहित है बहुरि ताके ये ब्रह्मादिक सर्व अंगहै ते रागद्वेष भजनेवालेहैं ॥७५॥

ताकूं आचार्य कहैहै;—यह वाणी विचारविषै उद्यमी है चित्त जिनके ऐसे पुरुषनकौ नहीं रुचैहै, जातै अंगनिकै रागीपना होतै अंगी वीतराग कैसै होय ॥ ७६ ॥

आगैं वैशेषिक लोकका कर्त्ता ईश्वरकौ मानैहै ताका निषेध करैहै। तहा वह अपना पक्ष कहैहै—

बुद्धिमद्धेतुकं विश्वकार्यत्वात्कलशादिवत्।
बुद्धिमांस्तस्य यः कर्त्ता कथ्यते स महेश्वरः॥ ७७॥
न विना शंभुना नूनं देहद्रुमनगादयः।
कुलालेनेव जायंते विचित्राः कलशादयः॥ ७८॥
ततोऽस्ति जगतः कर्त्ता विश्वदृश्वा महेश्वरः।
वचनं युज्यते नेदं चिंत्यमानं विचक्षणैः॥ ७९॥

अर्थ—विश्वहै सो बुद्धिमानहै हेतु (कारण) जाका ऐसाहै।

भावार्थ—बुद्धिमानके निमित्ततै उपज्याहै, जातै लोकके कार्यपनहै, जो जो कार्यहै सो सो बुद्धिमानके निमित्ततै उपजैहै जैसै घटादिक। बहुरि ता लोकका जो बुद्धिमान कर्त्ताहै सो महेश्वर कहिएहै ॥ ७७ ॥

जैसैं कुम्हार विना विचित्र घटादिक न उपजै तैसै ईश्वर विना शरीर वृक्ष पर्वत इत्यादिकहै ते निश्चयकरि न उपजैहै ॥ ७८ ॥

तातै जगतका कर्त्ता सर्वदर्शी महेश्वर है। अब ताकूं आचार्य कहैहै—यहु वचन पंडितनिकरि विचारया भया युक्त न होयहै ॥ ७९ ॥

सोही कहैहैं;—

कार्यत्वादित्ययं हेतुस्तस्य साधयते यथा ।
बुद्धिमत्त्वं तथा तस्य देहवत्वमपि ध्रुवम् ॥ ८० ॥
नाशरीरी मया दृष्टः कुंभकारः क्वचित् यतः ।
कुलालस्तस्य दृष्टांतस्ततो ब्रूते सदेहताम् ॥ ८१ ॥
सदेहस्य च कर्तृत्वे सोऽसदादिसमो यतः ।
दृश्यतां प्रतिपद्येत कुंभकारादिवत्ततः ॥ ८२ ॥
भुवनं क्रियते तेन विनोपकरणैः कथम् ।
कृत्वा निवेश्यते कुत्र निरालंबे विहायसि ॥ ८३ ॥
विचेतनानि भूतानि सिसृक्षावशतः कथम् ।
विनिर्माणाय विश्वस्य वर्त्तते तस्य कथ्यताम् ॥ ८४ ॥

अर्थ—आचार्य कहैहै जो ऐसा यह कार्यहेतु है सो ता ईश्वरके जैसै बुद्धिमानपना साधैहै तैसै देहवानपना भी निश्चयकरि साधैहै ।८०।

जातै कुंभकार मेने कहू शरीररहित न देख्या तातै कुलाल दृष्टांत है सो ता ईश्वरकै सदेहपनेकौ कहैहै ॥ ८१ ॥

बहुरि देहसहितकै कर्त्तापनां होतसंतै हम आदि सरीसा भया जातै सो ईश्वर कुंभकारादिककी ज्यो देखने योग्य पनेकौ प्राप्त भया तातैं ॥ ८२ ॥

बहुरि उपकरणविना ताकरि लोक कैसै करिएहै, बहुरि करिकै निराधार आकाशविषै कहा धरिएहै ॥ ८३ ॥

बहुरि वह कहैहै;—जो ताकी उपजावेकी इच्छा होतै पृथ्वी आदि है ते लोककौ रचैहै, ताकूं कहिएहै;—जो ताकी उपजायवेकी इच्छाके वशतै पृथ्वी आदि भूत अचेतनहै ते लोकके वनावनेके अर्थि कैसै प्रवर्त्तैहै सो कहि । तातैं लोकका कर्त्ता ईश्वर मानना मिथ्याहै ॥ ८४ ॥

आगैं बौद्धका निषेध करैहै;—

बुद्धोऽपि न समस्तज्ञः कथ्यते तथ्यवादिभिः।
प्रमाणादिविरुद्धस्य शून्यत्वादेर्निवेदनात् ॥ ८५ ॥

अर्थ—बहुरि तथ्यवादीनि करि बुद्ध भी सर्वज्ञ न कहिएहै, जातैं प्रमाणादि करि विरुद्ध ऐसा शून्यपना आदि जनावैहै तातै ॥ ८५ ॥

प्रमाणेनाप्रमाणेन सर्वशून्यत्वसाधने।
सर्वस्यानिश्चितं सिद्ध्येत्तत्वं केन निषिध्यते ॥ ८६ ॥

अर्थ—सर्वकै शून्यपनां साधनेमै प्रमाणकरि वा अप्रमाणकरि सर्वकै अनिश्चित तत्त्व सिद्ध होय निपेध कौनकरि करिए।

भावार्थ—सर्व शून्य मानैं तब प्रमाण अप्रमाण भी न ठहरै, तब सर्वकै अनिश्चित ही तत्त्वसिद्धि होय प्रमाण विना संशयका निषेध काहे करि करै तातै सर्व शून्य मानना मिथ्याहै ॥ ८६ ॥

सर्वत्र सर्वथा तत्वे क्षणिके स्वीकृते सति।
फलेन सह संबंधो धार्मिकस्य कुतस्तनः ॥ ८७ ॥

अर्थ—सर्व जायगा। सर्व प्रकार तत्वकौ क्षणिक अंगीकार करे संते धर्मात्मा जीवकै फलकरि सहित संबंध कहातैं होय।

भावार्थ—सर्व प्रकार तत्वकौ क्षणिक अंगीकार करे संतै धर्मात्मा जीवकै फलकरि संबंध कहांतै होय।

भावार्थ—सर्वप्रकार तत्वकौ क्षणिक माने धर्मात्मा जीव धर्मका फल न पावै जातै वहतौ क्षणमै ही विनसि गया। बहुरि ऐसे होतैं धर्मका साधन निरर्थक ठहरया। तातै सर्वथा क्षणिक मानना योग्य नाहीं ॥ ८७ ॥

वधस्य वधको हेतुः क्षणिके स्वीकृते कथम्।
प्रत्यभिज्ञा कथं लोकव्यवहारप्रवर्त्तनी ॥ ८८ ॥

अर्थ—बहुरि क्षणिककौ अंगीकार करे संते हिंसक जीवहै सो हिंसाका कारण कैसै होय बहुरि लोकमे व्यवहार चलावनेवाली प्रत्यभिज्ञा कैसै होय ।

भावार्थ—क्षणिक माने हिंसा करनेवाला हिंसक न ठहरै जातैं वह तौ वा ही क्षण विनसि गया, बहुरि बालक था जो जवान भया; इस पर मेरा लेनाहै सो लेऊं देना है सो देऊं इत्यादिक लोकव्यवहार चलावनेवाली प्रत्यभिज्ञाका भी अभाव ठहरै, जातै वह तो वाही क्षण विनसि गया व्यवहार काहेका चलै तातै क्षणिक मानना मिथ्याहै ॥ ८८ ॥

व्याघ्र्याः प्रयच्छतो देहं निगद्य कृमिमंदिरम् ॥
दातृदेहविमूढस्य करुणा बत कीदृशी ॥ ८९ ॥

अर्थ—यहु शरीर लटनिका घरहै ऐसा कहकै शरीरकौ बघेरीके अर्थि देय ऐसे दाता अर देहमे मूर्ख ऐसे के करुणा कैसीहै ? यहु बड़े खेदकी बातहै ॥ ८९ ॥

बहुरि कहैहै;—

जननी जगतः पूज्या हिंसिता येन जन्मनि ।
मांसोपदेशिनस्तस्य दया शौद्धोदनेः कथम् ॥ ९० ॥

अर्थ—जगतके पूजने योग्य जो माता सो जानै जन्मविषै मारी ता मासके उपदेश करनेवाले बुद्धकै दया कैसै होय ।

भावार्थ—बौद्धमतमैं कह्याहै कि बुद्ध माताका उदर फाडकर निकल्याहै अर मास भक्षणमै दोप नाहीं ताकूं आचार्यनै कह्या ऐसे बुद्धके दया काहेकी ॥ ९० ॥

ऐसै बुद्धका निराकरन किया, आगै कपिलका निराकरण करै है;—

यो ज्ञानं प्राकृतं धर्मं भाषतेऽसौ निरर्थकः।
निर्गुणो निष्क्रियो मूढः सर्वज्ञः कपिलः कथम्॥९१॥

अर्थ—जो ज्ञानकौ प्रकृतिका धर्म कहै है योहु निःप्रयोजन निर्गुण क्रियारहित मूर्ख कपिल सर्वज्ञ कैसै होय।

भावार्थ—कपिल ज्ञानकौं तो प्रकृतिका धर्म कहैहै अर आत्माकौं निर्गुण क्रिया रहित प्रयोजनरहित अज्ञान कहैहै ताकूं आचार्यने कह्या जो ऐसा सर्वज्ञ कपिल कैसै होय। तातैं कपिलका मत मिथ्याहै॥ ९१॥

आगै और भी कुदेवादिकहै तिनका निषेध करैहै;—

आर्यास्कंदानलादित्यसमीरणपुरःसराः।
निगद्यंते कथं देवाः सर्वदोषपयोधयः॥ ९२॥

अर्थ—सर्वदोषनिके समुद्र ऐसे जे देवी स्कंद कहिए स्वामिकार्त्तिकेय अग्नि सूर्य वायु इत्यादिकहै ते देव कैसैं कहिएहै।

भावार्थ—राग द्वेषादि दोष जिनमैं पाइये ऐसे कुदेवनिकौ देव कैसैं कहिए॥ ९२॥

आगै फेर कहैहै;—

गूथमश्नाति या हंति खुरशृंगैः शरीरिणः।
सा पशुर्गौः कथं वंद्या वृषस्यंती स्वदेहजम्॥ ९३॥

अर्थ—जो गौ भ्रष्टा खायहै अर प्राणीनिकौ खुरसींगनिकरि हनैहै अर अपने पुत्रसैं काम सेवैहै, सो ऐसी पशु अज्ञान गौ कैसै वंदनेयोग्य होय॥ ९३॥

चेद्दुग्धदानतो वंद्या महिषी किं न वंद्यते।
विशेषो दृश्यते नास्यां महिषीतो मयाधिकः॥ ९४॥

अर्थ—बहुरि वह कहै जो गौ दुग्ध देय है तातै वंदनेयोग्य है तो महिषी क्योन वंदिए, जातै इसकै महिषीतैं अधिक विशेष मो करि न देखिएहै दुग्ध देनेमैं दोनौ समानहै ॥ ९४ ॥

या तीर्थं मुनिदेवानां सर्वेषामाश्रयः सदा ।
दुह्यते हन्यते सा गौर्मूढै विंक्रीयते कथम् ॥ ९५ ॥

अर्थ—जो गौ तीर्थ मुनि देवनिका सबनिका सदा आश्रय सो गौ मूढनि करि कैसै पीडिएहै अर हनिएहै अर वेचिएहै, तातैं गौकौं पूजना मिथ्याहै ॥ ९५ ॥

आगै और भी कहैहै;—

मुशलं देहली चुल्ली पिप्पलश्चंपकोजलम् ।
देवा यैरभिधीयंते वर्ज्यते तैः परेऽत्रके ॥ ९६ ॥

अर्थ—मूसल देहली चूल्हा पीपल चंपा जल इनकौं जिनकरि देव कहिएहै तिनकरि इहां कौन वर्जिएहै ।

भावार्थ—जो मूसलादिक जड अर पापके कारन जिनविषै देवपना का लेशभी नाहीं तिनकौ भी पूजैहै तो वै और कौनकौ न पूजैहै? सर्व कौंही पूजैहै ॥ ९६ ॥

आगैं अधिकारकौं संकोचैहै;—

इत्थं विविच्य परिमुच्य कुदेववर्गं
गृह्णांति यो जिनपतिं भजते स तत्त्वम् ।
गृह्णांति यः शुभमतिः परिमुच्य काचं
चिंतामणिं स लभते खलु किं न सौख्यम् ९७

अर्थ—ऐसै जो विचार करि कुदेवनिके समूहकौ त्यागिकै जिनेंद्र-देवकौ ग्रहण करैहै सो पुरुष परमतत्वकौ भजैहै सेवैहै. इहां दृष्टांत

कहैहै—जो बुद्धिमान काचकौ छोडकरि चिंतामणिरत्नकौं ग्रहण करैहै सो कहा निश्चयकरि सुखकौं न पावैहै, पावैहीहै ॥ ९७ ॥

मिथ्यात्वदूषणमपास्य विचित्रदोषं
संरूढसंसृतिवधूपरितोषकारि ।
सम्यक्तरत्नममलं हृदि यो विधत्ते
मुक्त्यंगनामितगतिस्तमुपैति सद्यः ॥ ९८ ॥

अर्थ—वृद्धिकौ प्राप्त जो संसारवधू ताका परितोष करनेवाला प्रसन्न करनेवाला अर अनेक दोषास्वरूप ऐसा मिथ्यात्व रूप दूषणकौं त्यागिकरि जो पुरुष निर्मल सम्यक्तरत्नकौ हृदय विषैं धारैहै, ता पुरुष प्रति अनंतहै ज्ञान जाकै ऐसी मुक्तिस्त्री है सो शीघ्रही प्राप्त होयहै।

भावार्थ—मिथ्यात्वकौ त्यागकरि जो सम्यक्त धारैहै ताकूं मुक्तिकी प्राप्ति शीघ्र होयहै ॥ ९८ ॥

छप्पय ।

पोषत विषयकषाय पक्ष एकांत चित्त रखि,
नास्तिकादि मत एम सकल मिथ्यास्वरूप लखि ।
हरिहरादि सबही कुदेव रागादिचिन्हयुत,
त्यागि, भजहु सर्वज्ञदेव रागादिदोषचुत ॥
संसारहेतु मिथ्यात्व इम त्यागि सुदर्शन जे धरैं ।
ते जीव अमितगति शीघ्रही भागचंद शिवतिय वरैं ॥

इत्युपासकाचारे चतुर्थः परिच्छेदः ।

इस प्रकार अमितगति आचार्यकृत श्रावकाचारविषैं
चतुर्थ परिच्छेद समाप्त भया ।

अथ पंचमः परिच्छेदः ।

आगैं व्रतनिका वर्णन करैहैं,—

मद्यमांसमधुरात्रिभोजनं
क्षीरवृक्षफलवर्जनं त्रिधा ।
कुर्वते व्रतजिघृक्षया बुधा—
स्तत्र पुष्यति निषेविते व्रतम् ॥॥ १ ॥

अर्थ—पंडित हैं ते व्रतग्रहणकी इच्छा करि मदिरा मांस अर मधु अर रात्रिविषै भोजन अर क्षीरवृक्ष कहिए जिनमै दूध निकसै ऐसे वड पीपर ऊमर इत्यादिकनिके फल इनका त्याग मन वचन कायकरि करैहै, जातैं तिनके त्यागका सेवन करे संतै व्रत पुष्ट होयहै ।

भावार्थ—जाकै व्रतकी चाहहै सो प्रथम मदिरादिकनिका त्याग अवश्य करै इनके त्यागे व्रत पुष्ट होयहै ॥ १ ॥

आगैं प्रथमही मदिराका निषेध करै है,—

मद्यपस्य धिषणा पलायते
दुर्भगस्य वनितेव दूरतः ।
निंद्यता च लभते महोदयं
क्लेशितेव गुरुवाक्यमोचिनः ॥ २ ॥

अर्थ—जैसैं दरिद्री पुरुषकी स्त्री भाग जायहै तैसैं मदिरा पीनेवालेकी बुद्धि भाग जाय है, वहुरि निंदा वृद्धिकौं प्राप्त हो जायहै जैसैं गुरुके वचन न माननेवालेकै दुःख वृद्धिकौ प्राप्त हो जाय है तैसैं ।

भावार्थ—मदिरा पीनेवालीकी बुद्धि बिगड़ जायहै अर निंदा होय है ॥ २ ॥

विह्वलः स जननीयति प्रियां
मानसेन जननीं प्रियीयति।
किंकरीयति निरीक्ष्य पार्थिवं
पार्थिवीयति कुधीः स किंकरम् ॥ ३ ॥

अर्थ—सो मदिरापानी मन करि विन्हल भया संता स्त्रीकौं मातावत् आचरैहै अर माताकौ स्त्रीवत् आचरन करै है। बहुरि सो कुबुद्धी राजाकौं देखकरि चाकरवत् आचरै है अर चाकरकौ राजावत् आचरैहै।

भावार्थ—मदिरापानी सर्व पदार्थनिकौ विपरीत देखैहै ॥ ३ ॥

सर्वतोऽप्युपहसंति मानवा
वाससी व्यपहरंति तस्कराः
मूत्रयंति पतितस्य मंडला
विस्तृते विवरकांक्षया मुखे ॥ ४ ॥

अर्थ—बहुरि मद्यपानीकी सर्वही तरफतै मनुष्य हास्य करैहै अर चौर वस्त्र हरैहै, बहुरि स्वानहै ते पड़ेके विस्ताररूप मुखविषै छिद्रकी वांछा करि मूतैहै ॥ ४ ॥

मंक्षु मूर्च्छति विभेति कंपते
पूत्करोति रुदति प्रछर्दति।
खिद्यते स्खलति वीक्षते दिशो
रोदिति स्वपिति जक्षितीर्ष्यति ॥ ५ ॥

अर्थ—बहुरि मदिरापानी शीघ्रही मूर्छित होय है, डरपैहै, कांपैहैं, पूत्कार करैहै, रोवै है, वमन करैहै खेदरूप होयहै, गिरपड़ैहै, दिशानकूं देखै है, रुदन करैहै, सोवैहै, जकड़ी लगिजाय है, ईर्षा करैहै।

भावार्थ—मदिराकरि नाना कुचेष्टा उपजैहै ॥ ५ ॥

ये भवंति विविधाः शरीरिण—
स्तत्र सूक्ष्मवपुषो रसांगिकाः ।
तेऽखिला झटिति यांति पंचतां
निंदितस्य सरकस्य पानतः ॥ ६ ॥

अर्थ—तिस मदिराविषै सूक्ष्महै शरीर जिनके ऐसे जे रसकरि उपजे नानाप्रकार जीवहै ते समस्त निदनीक मदिराके पानतैं शीघ्र मरनकौं प्राप्त होयहैं ।

भावार्थ—मदिरापानीकै द्रव्यहिंसा भी तीव्र होयहै ॥ ६ ॥

वारुणी निहितचेतसोऽखिलाः
यांति कांतिमतिकीर्त्तिसंपदः ।
वेगतः परिहरंति योषितो
वीक्ष्य कांतमपरांगनागतम् ॥ ७ ॥

अर्थ—जैसै स्त्रीहै ते परस्त्री प्रति गए पतिकौं देख करि शीघ्रही परिहरैहै तैसै मदिराविषै लग्याहै चित्त जाका ऐसा जो पुरुष ताकी समस्त कांति बुद्धि कीर्त्ति संपदा जाती रहैहै ।

भावार्थ—मदिरापानीकी कांति बुद्धि कीर्त्ति संपदा सर्व बिगड़ि जायहै ॥ ७ ॥

गायति भ्रमति वक्ति गद्गदं
रौति धावति विगाहते क्लमम् ।
हंति हृष्यति बुध्यते हितं
मद्यमोहितमतिर्विषीदति ॥ ८ ॥

अर्थ—मदिरा करि मोहितहै बुद्धि जाकी ऐसा पुरुषहै सो गावैहै, भ्रमैहै, गद्गद वचन बोलैहै, रोवैहै, दौड़ैहै, कष्टकौ अवगाहैहै, हिंसा-करैहै, हर्षकरैहै, हितकौं न जानैहै, विषादरूप होयहै ।

भावार्थ—मद्यपानकि नाना कुचेष्टा होयहै ॥ ८ ॥

तोतुदीति भविनः सुरारतो
वावदीति वचनं विनिंदितम् ।
मोमुषीति परवित्तमस्तधी
बोंभुजीति परकीयकामिनीम् ॥ ९ ॥

अर्थ—मदिराविषैं आशक्त पुरुषहै सौ जीवनकौं पीडा उपजावैहै, निंदितवचन बोलैहै अर परधन चौरैहै अर अज्ञानी परकी स्त्रीकौं भोगैहै ।

भावार्थ—मदिरा पीवैहै सो हिसादि सर्व पाप करैहै ॥ ९ ॥

नाणटीति कृतचित्र वेष्टितो
नन्नमीति पुरतो जनं जनम् ।
लोलुठीति भुवि रप्सभोपमो
रारटीति सुरया विमोहितः ॥ १० ॥

अर्थ—मदिरा करि मोहित पुरुषहै सो करीहै नानाप्रकार चेष्टा जानैं ऐसा नाचैहै, अर आगेतैं जन जन प्रति नमैहै, अर गर्दभसमान पृथ्वीविषैं लोटैहै अर शब्द करैहै ॥ १० ॥

सीधुलालसधिया वितन्वते
धर्मसंयमविचारणां यके ।
मेरुमस्तकनिविष्टमूर्त्तय-
स्ते स्पृशंति चरणैर्भुस्तलम् ॥ ११ ॥

अर्थ—जैसैं केई पुरुष मदिराकी लालसासहित बुद्धि करि धर्मका वा संयमका विचार विस्तारैहैं ते मेरुके मस्तकपरि तिष्ठते चरनन करि पृथ्वीतलकौं स्पर्शैं है।

भावार्थ—जैसैं मेरुपर बैठकरि कोई पृथ्वीकौं चरनकरि स्पर्शै चाहै सो मूर्ख है तैसै मदिरा पीवता संता धर्मादिकका विचार करै सौ मूर्ख है, ऐसा जानना॥ ११॥

दोषमेवमवगम्य वारुणीं
सर्वथा न हि धयंति पंडिताः।
कालकूटमवबुध्य दुःखदं
भक्षयंति किमुजीवितार्थिनः॥ १२॥

अर्थ—या प्रकार दोषकौं जान करि पंडित है ते सर्वथा मदिराकौं नाही पीवैहैं जैसै जीनेके वांछक जीव दुःखदाई कालकूट विषकौं जानकरि कहा भक्षण करैहै? अपि तु न करैहै॥ १२॥

ऐसै मदिराका निषेध किया, आगै मांसभक्षणका निषेध करै हैं;—

मांसभक्षणविषक्तमानसो
यः करोति करुणां नरोऽधमः।
भूतले कुलिशवह्नितापिते
नूनमेष वितनोति वल्लरीम्॥ १३॥

अर्थ—मांसविषै आशक्तहै चित्त जाका ऐसा जो नीचपुरुष करुनाकौं करैहै सो यहु निश्चयकरि वज्राग्नि करि तप्त जो पृथ्वी ताविषैं वेलिकौ विस्तारैहै।

भावार्थ—अग्निकरि तप्त पृथ्वीविषैं जैसै बेल न होय तैसै मांसभक्षककै दया न होय ऐसा जानना॥ १३॥

जायते न पिशितं जगत्रये
प्राणिघातनमृते यतस्ततः ।
मंक्षु मूलमुदखानि खादता
ही दया झटिति धर्मशाखिनः ॥ १४ ॥

अर्थ—जातैं तीनलोकमै मांसहै सो जीवनिकी हिसा बिना न उपजैहै तातैं मांसभक्षक पुरुषकरि तोड्या जो निश्चयकरि धर्मवृक्ष ताका मूल जो दया सो शीघ्र खोया ।

भावार्थ—जीवहिसा विना मास न उपजै तातै जानै मांस खाया तानैं दयामूल जो धर्म ताका नाश किया ॥ १४ ॥

देहिनो भवति पुण्यसंचयः
शुद्धया न कृपया विना ध्रुवम् ।
दृश्यते न लतया विना मया
सार्द्रया जगति पुष्पसंचयः ॥ १५ ॥

अर्थ—इस दयाविना जीवकै निश्चयकरि पुण्यका संचय न होय है जैसैं मोकरि लोकविषै हरित बेल बिना पुष्पनिका संचय न देखिएहै तैसै ।

भावार्थ—जैसै बेलबिना पुष्प न होयहै तैसै दयाविना व्रत न होयहै ॥ १५ ॥

भक्षयंति पिशितं दुराशयाः
ये स्वकीयवलपुष्टकारिणः ।
घातयंति भवभागिनस्तके
खादकेन न विनास्ति घातकः ॥ १६ ॥

अर्थ—जे अपने बलके पुष्ट करनेवाले दुष्टचित्त मांसकौं भखैंहैं ते जीवनकौ घातैंहैं जातैं खानेवाले बिना घातनेवाला नाहींहै ।

भावार्थ—कोउ कहै मांस खानेमे तो हिंसा नाही ताको कह्याहै जो मांस खावैहै सो अवश्य हिसा करैहै ॥ १६ ॥

हंति खादति पणायते पलं
मन्यते दिशतिसंस्कारोति यः ।
यांति ते षडपि दुर्गतिं स्फुटं
न स्थितिः खलु परत्र पापिनाम् ॥ १७ ॥

अर्थ—जो मांसकौं हनैहै जीव मारैहै, अर खायहै, वेचैहै, भला मानैहै, उपदेश करैहै, सस्करोति कहिए मांसका वा मांस भक्षीनका संस्कार करैहै । ते पूर्वोक्त छह प्रकारके जीव परजन्मविषैं दुर्गतिकौं प्राप्त होयहै, जातैं पापीनिकी निश्चयकरि स्थिरता नाहीं ॥ १७ ॥

अत्ति यः कृमिकुलाकुलं पलं
पूयशोणितवसादिमिश्रितम् ।
तस्य किंचन न सारमेयतः
शुद्धवुद्धिभिरवेक्ष्यतेऽतरम् ॥ १८ ॥

अर्थ—जो पुरुप लटनके समूहकरि भरया अर दुर्गंध रुधिर वसा आदि करि मिश्रित ऐसा जो मांस ताहि भखै है ताकै स्वानतै किछू अंतर शुद्धवुद्धीनकरि न देखिएहै ।

भावार्थ—मांस खायहै सो कुत्तासमानहै किछू विशेष नाहीं, जातै वह भी निंद्य वस्तु खायहै अर यहु भी निंद्य वस्तु खायहै; ग्लानि दोऊनिकै नाहीं ॥ १८ ॥

आमिषाशनपरस्य सर्वथा
विद्यते न करुणा शरीरिणः ।
पापमर्जति तया विना परं
वंभ्रमीति भवसागरे ततः ॥ १९ ॥

अर्थ—मांसके खाने विषै तत्पर जो पुरुष ताकैं जीवकी करुणा सर्वथा न होयहै बहुरि ता दयाविना बडा पाप उपजावैहै ता पापतैं अतिशयकरि संसारसमुद्रविषै भ्रमैहै ॥ १९ ॥

नास्ति दूषणमिहामिषाशने
यैर्हृषीक वशगैर्निगद्यते ।
व्याघ्रशूकरकिरातधीवरा—
स्तैर्निकृष्टहृदयैर्गुरूकृताः ॥ २० ॥

अर्थ—जिन इंद्रियनिके आधीन भए पुरुषनि करि "मांसभक्षण-विषैं दूषण नाहीं" ऐसा कहियेहै तिन नीचचित्तनकरि व्याघ्र शूकर भील ढीमर है ते गुरुकी ज्यों करे।

भावार्थ—जे मांसभक्षणकौं निर्दोष बतावैहैं तो तिनके मांसभक्षी सिंहादिक पूज्य ठहरैं। तातै मांसभक्षण सर्वथा भला नाहीं ॥ २० ॥

मांसवल्भन निविष्टचेतसः
संतिपूजिततमा नरा यदि
गूथमूतकृतदेहपुष्टयः
शूकरा न नितरां तदा कथम् ॥ २१ ॥

अर्थ—मांसके भक्षणविषैं लगायाहै चित्त जिननैं ऐसे पुरुष जो पूजने योग्य होय तो विष्टा अर मूत्र करि करीहै देहपुष्टि जिननैं ऐसे शूकर पूज्य कैसे न होय ॥ २१ ॥

भक्षयंति पलमस्तचेतनाः
सप्तधातुमयदेहसंभवम् ।
यद्वदंति च शुचित्वमात्मनः
किं विडंबनमतः परं बुधाः ? ॥ २२ ॥

अर्थ—जो बुद्धिरहित सप्तधातुमय देहतै उपज्या जो मांस ताहि-खायहै अर आत्माकै पवित्रपना कहैहै सो हे पंडित हो ! यासिवाय और विडंवना कहाहै ? अपि तु या शिवाय और विडंबना नाहीं है ॥२२॥

भुंजते पलमघौघकारि ये
ते व्रजंति भवदुःखमूर्जितम् ।
ये पिवंति गरलं सुदुर्जरं
ते श्रयंति मरणं किमद्भुतम् ॥ २३ ॥

अर्थ—जे पापके समूहका करनेवाला जो मांस ताहि भखै हैं ते तीव्र संसारके दुःखकौ प्राप्त होय है। इहा दृष्टांत कहैहै—जे पुरुष दुःखतै है जरना उतरना जाका ऐसा जो विष ताहि पीवै है ते मरणकौ प्राप्त होय सो कहा आश्चर्य है ।

भावार्थ—मासभक्षक संसारमै भ्रमै ताका अचरज नाहीं ॥ २३ ॥

चित्र दुःखसुखदान पंडिते
ये वदंति पिशिताशने समे ।
मृत्युजीवितविवर्द्धनोद्यते
ते वदंति सदृशे विषामृते ॥ २४ ॥

अर्थ—नानाप्रकारके दुःख अर सुखके देनेमै प्रवीण जे मांस अर भोजन तिनहि समान कहैहै ते मरन अर जीवनके बढावने विषै उद्यमी जे विष अर अमृत तिनहि समान कहैहै ।

भावार्थ—जे मांसखाना अर अन्न खाना समानै कहै है ते विष अर अमृत समान कहैहै । ते समान नाही जातै मांस खानेमै तो तीव्रागहै अर अन्न खानेनै मद राग है तातै बडा भेदहै ऐसा जानना ॥२४॥

जायते द्वितयलोक दुःखदं
भक्षितं पिशितमंगसंगिनाम् ।

भक्षितं द्वितयजन्मशर्मदं
जायतेऽशनमपास्त दूषणम् ॥ २५ ॥

अर्थ—जीवनि मांस खाया संता इस लोकविषै अर परलोकविषैं दुःखदायक होयहै, अर दूषणरहित भोजन खाया भया इस लोक परलोकविषै सुखदायक होयहै ॥ २५ ॥

मांसमित्थमवबुध्य दूषितं
त्यज्यते हितगवेषिणा त्रिधा ।
मंदिरं न विदता निषेव्यते
तीव्रदृष्टिविषपन्नगाकुलम् ॥ २६ ॥

अर्थ—हितके हेरनेवाले पुरुष करि या प्रकार मांसकौ दूषित जान करि सदा त्याग करिएहै। इहां दृष्टांत कहैहै—जानता जो पुरुष ताकरि तीव्रदृष्टि विष सर्पकरि व्याकुल जो घर सो न सेईएहै ॥ २६ ॥

ऐसै मांसका निषेध किया, आगै मधुका निषेध करैहै;—

माक्षिकं विविध जंतुघातजं
खादयंति बहुदुःखकारि ये ।
स्वल्पजंतुविनिपातिभिः समा-
स्ते भवंति कथमत्र खट्टिकैः ॥ २७ ॥

जे पुरुष नानाप्रकार जीवनके घाततै उपज्या अर महादुःखका देनेवाला ऐसा जो मधु ताहि खायहै ते थोड़े जीवनके घातक जे खटीक तिनकरि समान कैसै होयहै।

भावार्थ—मधु खानेवाला खटीकतै भी महापापी है ऐसा जानना ॥ २७ ॥

ग्रामसप्तकविदाहरेपसा
तुल्यता न मधुभक्षिरेपसः ।

तुल्यमंजलिजलेन कुत्रचि-
न्निम्नगापतिजलं न जायते ॥ २८ ॥

अर्थ—सात ग्रामके जलावनेके पापकरि मधुभक्षकके पापकी समानता नाहीं, जातै अंजलिके जलकरि समुद्रका जल असंख्यातगुणहै तैसैं सात ग्रामके दाहके पापतै भी असंख्यातगुणा पाप मधुभक्षण करनेमें वतायाहै ॥ २८ ॥

म्लेच्छलोकमुखलालयाविलं
मद्यमांसचितभाजनस्थितम्।
सारघं गतघृणस्य खादतः
कीदृशं भवति शौचमुच्यताम् ॥ २९ ॥

अर्थ—म्लेच्छ भील लोकनिके मुखकी लालकरि मलिन अर मद्य मास जामै संचय कीये ऐसे भाजनमै धरया अर पुण्यकौ नाश करने-वाला जो मधु ताहि ग्लानिरहित खाते पुरुषकै पवित्रपना कैसाहै सो कहि ॥ २९ ॥

यश्चिखादिषति सारघं कुधी-
र्मक्षिकागणविनाशनस्पृहः।
पापकर्दमनिषेधनिम्नगा
तस्य हंत करुणा कुतस्तनी ॥ ३० ॥

अर्थ—मक्षिकानके समूहके विनाशनेकी है इच्छा जाके ऐसा जो कुवुद्धी मधु खानेकी इच्छा करैहै, वडे आश्चर्यकी वातहै ताकै करुणा काहेकी, कैसीहै करुणा पापरूपकीचके दूरकरनेकौ नदी समानहै ॥ ३० ॥

भक्षितो मधुकणोऽपि संचितं
सूदते झटिति पुण्यसंचयम्।

काननं विषमशोचिंषः कणः
किं न भक्षयति वृक्षसंकटम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—मधुका कणा भी भक्षण किया संता निश्चयकरि पुण्यके समूहकों शीघ्र नाश करैहै। इहां दृष्टांत कहैहै—अग्निका जो कणाहै सो वृक्षनिका है समूह जा विषे ऐसे वनकों कहा नहीं भक्षण करैहै (नहीं दहैहै) दहैहीहै ॥ ३१ ॥

योऽत्ति नाम मधु भेषजेच्छया
सोऽपि याति लघु दुःखमुल्वणम्।
किं न नाशयति जीवितेच्छया
भक्षितं झटिति जीवितं विषम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो औषधकी इच्छा करि भी प्रसिद्ध मधुको खायहै सो भी तीव्र दुःखकों शीघ्र प्राप्त होयहै। इहां दृष्टांत कहैहै;—जीवनेकी इच्छा करि खायजो विष सो कहा शीघ्र जीवनेकौ न नाशैहै? नाशैही है।३२।

घोरदुःखदमवेत्य कोविदा
वर्जयंति मधु शर्मकांक्षिणः।
कुत्र तापकमवेत्य पावकं
गृह्यते शिशिरलोलमानसाः ॥ ३३ ॥

अर्थ—सुखके वांछक पंडित जन है ते घोर दुःखदायक जानि मधुकौ त्याग करैहै। ताका दृष्टांत कहैहै—शीतलपनेंमै है लालसा जिनकै ऐसे पुरुष है ते अग्निकौं तापकरी जानकरि कहा ग्रहण करैहै, नहीं करैहै ॥ ३३ ॥

ऐसै मधुका निषेध किया, आगैं नवनीतका निषेध करैहै;—

संसजंति विविधाः शरीरिणो
यत्र सूक्ष्मतनवो निरंतराः।

तद्ददाति नवनीतमंगिनां
पापतो न परमत्र सेवितम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—जा विषैं सूक्ष्महैं शरीर जिनके ऐसे नानाप्रकार जीव हैं ते निरंतर उपजैहै सो लूणी घी सेया संता जीवनिकौं सो पाप देयहै, जा पापतैं लोक विषैं और पाप नाहीं ॥ ३४ ॥

चित्रजीवगणसूदनास्पदं
यैर्विलोक्य नवनीतमद्यते ।
तेषु संयमलवो न विद्यते
धर्मसाधनपरायणा कुतः ॥ ३५ ॥

अर्थ—जिन पुरुषनि करि नाना प्रकार जीवनिके समूहके विनाशका ठिकाणा देखकरि लोणी खायहै तिन पुरुषनि विषैं संयमका अंशभी नाही हैं, धर्मसाधनविषैं तत्परता काहेतैं होय; नाहीं होय ॥३५॥

यन्मुहूर्त्तयुगतः परः सदा
मूर्च्छति प्रचुरजीवराशिभिः ।
तद्गिलंति नवनीतमत्र ये
ते व्रजंति खलु कां गतिं मृताः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जो लूणी दोय मुहूर्त्त पीछै प्रचुर जीवानिके समूहनि करि मूर्च्छित होयहै सन्मूर्च्छन जीव जा विषै सो लूणी इहा जे खायहैं ते मरे भए निश्चय करि कौन गतिकौ जायहै, तिनकी कहा गति होय है जैसी आचार्यनैं आशंका करीहै ।

भावार्थ— इहां दोय महूर्त्त लूणीकी मर्याद कही सो तपावनेकी अपेक्षा है, किछू खानेकी अपेक्षा न कहीहै, जातै रागादिकके कारनपनेतैं खाना तौ कोई प्रकार योग्य नाहीं ऐसा जानना ॥ ३६ ॥

ये जिनेंद्रवचनानुसारिणो
घोरजन्मवनपातभीरवः ।
तैश्चतुष्टयमिदं विनिंदितं
जीवितावधि विमुच्यते त्रिधा ॥ ३७

अर्थ—जे जीव संसारवनके पाततैं भयभीतहैं अर जिनेद्रके वचनके अनुसारीहै तिनकरि निंदनीक मद्य मांस मधु लौणी ये चारहैं ते जीवनपर्यंत मनवचनकायकरि त्यागिएहै ॥ ३७ ॥

मद्यमांसनवनीतसारधं
यैश्चतुष्कमिदमद्यते सदा
गृद्धिरागवधसंगबृंहकं
तैश्चतुर्गतिभवो विगाह्यते ॥ ३८ ॥

अर्थ—जिन करि अति आसक्तता राग हिंसाके संगके वढावनेवाले मद्य मांस मधु लौणी ए च्यार सदा खाइएहै तिनकरि चतुर्गति संसार अवगाहिएहै (भ्रमिएहै) ॥ ३८ ॥

यः सुरादिषु निषेवतेऽधमो
निंद्यमेकमपि लोलमानसः ।
सोऽपि जन्मजलधावटाट्यते
कथ्यते किमिह सर्वभक्षिणः ॥ ३९ ॥

अर्थ—जो चंचलचित्त नीचपुरुष मदिरादिकनि विषै निंदनीक एककौं भी सेवनकरै सो भी संसारसमुद्रविषै भ्रमणकरैहै, तौ इहां सर्वके खानेवालेकी कहा कहिए ॥ ३९ ॥

ऐसैं मदिरादिक च्यार महाविकृतिका निषेध किया । आगै रात्रिभोजनका निषेध करैहै;—

यत्र राक्षसपिशाचसंचरो
यत्र जंतुनिवहो न दृश्यते ।
यत्र मुक्तमपि वस्तु भक्ष्यते
यत्र घोरतिमिरं विजृंभते ॥ ४० ॥
यत्र नास्ति यतिवर्गसंगमो
यत्र नास्ति गुरुदेवपूजनम् ।
यत्र संयमविनाशि भोजनं
यत्र संसजति जीवभक्षणम् ॥ ४१ ॥
यत्र सर्वशुभकर्मवर्जनं
यत्र सास्ति गमनागमक्रिया ।
तत्र दोषनिलये दिनात्यये
धर्मकर्मकुशला न भुंजते ॥ ४२ ॥

अर्थ—जा विपै राक्षस पिशाचनिका संचार होयहै, अर जा विपैं जीवनिका समूह न देखिएहै, अर जा विपै छोड्याभी वस्तु भक्षण करिएहै अर जा विपै घोर अंधकार फैलैहै ॥ ४० ॥

अर जाविपै यतींनके समूहका सगम नाहीं, अर जाविपै गुरु देवका पूजन नाहीं, अर जा विपै संयमका विनाश करनेवाला भोजन होयहै, अर जा विपै जीवनका भक्षण उपजैहै ॥ ४१ ॥

अर जा विपै सर्व शुभकर्मका वर्जन होयहै, अर जाविपै गमनागमन क्रिया नाहींहै; ऐसा दोपनिका ठिकाना दिनका अभावरूप रात्रि ता विपैं धर्म कर्ममै प्रवीण पुरुपहै ते भोजन न करैहै ॥ ४२ ॥

भुंजते निशि दुराशया यके
गृद्धिदोषवशवर्तिनो जनाः ।

भूतराक्षसपिशाच शाकिनी-
संगतिः कथममीभिरस्य ॥ ४३ ॥

अर्थ—जे दुष्टचित्त लोलुपतारूप दोषके वशीभूत जन रात्रिविषैं भोजन करैहैं तिन करि भूत राक्षस पिशाच शाकिनीकी संगति कैसैं त्यागिएहै।

भावार्थ—रात्रिभोजन करैंहै तिनके भूतादिककी संगति अवश्य होयहै ॥ ४३ ॥

बल्भते दिननिशीथयोः सदा
यो निरस्तयमसंयमक्रियः।
शृंगपुच्छशफसंगवर्जितो
भण्यतेपशुरयं मनीषिभिः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जो पुरुष दूर करीहै यम संयम क्रिया जानै ऐसा रात्रिदिनविषै सदा खायहै सो यहु पंडितनि करि सींग पूंछ रहित पशु कहियेहै ॥ ४४ ॥

आमनंति दिवसेषु भोजनं
यामिनीषु शयनं मनीषिणः।
ज्ञानिनामवसरेषु जल्पनं
शांतये गुरुषु पूजनं कृतम् ॥ ४५ ॥

अर्थ—पंडितहै ते दिवसनि विषै भोजनकौ सुखके अर्थि कहैहैं, अर रात्रिनिविषै सोवना शांतिके अर्थ कहैहै, अर ज्ञानीनिकै अवसरबिषैं बोलना शांतिके अर्थ कहैहै, गुरूनविषै करया पूजन शांतिके अर्थ कहैहैं ॥ ४५ ॥

भुज्यते गुणवतैकदा सदा
मध्यमेन दिवसे द्विरुज्ज्वले।

येन रात्रिदिवयोरनारतं
भुज्यते स कथितो नरोऽधमः ॥ ४६ ॥

अर्थ—गुणवान उत्तमपुरुष करि सदा एकवार भोजन करिएहै, अर मध्यम पुरुषकरि उज्वलदिनविषैं दोयवार भोजन करियेहै अर जाकरि दिनरात निरंतर भोजन करिएहै सो मनुष्य अधम नीच कह्याहै ॥ ४६ ॥

ये विवर्ज्य वदनावसानयो-
र्वासरस्य घटिकाद्वयं सदा ।
भुंजते जितहृपीकवाजिन-
स्ते भवंति भवभारवर्जिताः ॥ ४७ ॥

अर्थ—जे पुरुष दिनके आदि अर अंतविषैं सदा दोय घडीक वर्ज-करि भोजन करैंहै ते जीतेहैं इंद्रियरूप घोड़े जिननैं ऐसे संसारके भार-करि रहित होयहैं मुक्त होयहैं ॥ ४७ ॥

ये विधाय गुरुदेवपूजनं
भुंजतेऽह्नि विमले निराकुलाः ।
ते विधूय लघु मोहतामसं
संभवंति सहसा महोदयाः ॥ ४८ ॥

अर्थ—जे पुरुष निर्ग्रन्थ गुरुका अर्हत देवका पूजन करकैं निर्मल दिवसविषैं निराकुल भए संते भोजन करैंहै ते शीघ्र मोह अंधकारकौ नाशकरि सहसा महान् उदयरूप होयहैं, केवलज्ञानकौं पावैंहै ॥ ४८ ॥

यो विमुच्य निशि भोजनं त्रिधा
सर्वदापि विदधाति वासरे ।
तस्य याति जननार्द्धमंचितं
भुक्तिवर्जितमपास्तरेपसः ॥ ४९ ॥

अर्थ—जो पुरुष मन वचन कायकरि सदा रात्रिविषै भोजन त्यागकरि दिनविषैं भोजन करैहै तिस पापरहित पुरुष का भुक्तिरहित उपवासरूप आधा जन्म व्यतीत होयहै ॥ ४९ ॥

यो निवृत्तिमविधाय वल्भनं
वासरेषु वितनोति मूढधीः ।
तस्य किंचन न विद्यते फलं
भाषिन न विना फलंतराम् ॥ ५० ॥

अर्थ—जो मूढबुद्धी पुरुप दिनानिविषै निवृत्ति जो व्रत ताहि न करि रात्रिविषै भोजन करैहै ताकै किछू फल न होयहै, जातैं जिनभाषितविना अतिशयकरि फल न होयहै ।

भावार्थ—कोऊ कहै कि दिनविषै भोजन न करना अर रात्रिविषैं करना यहु भी व्रतहै ताकूं कह्याहै कि ऐसा मार्ग नाहीं, जातैं रात्रिभोजन विषै द्रव्यभावहिंसाकी विशेपतातै ऐसे व्रततै किछू फल नांही, पापही होयहै । जैसै कोऊ अन्न छोडकरि मांसभक्षण करै तैसै ऐसा व्रत पापहीके अर्थ जानना ॥ ५० ॥

ये व्यवस्थितमहःसु सर्वदा
शर्वरीषु रचयंति भोजनम् ।
निम्नगामि सलिलं निसर्गत-
स्तेनयंति शिखरेषु शाखिनाम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—जे पुरुप स्थाप्याहै दीपकादि प्रकाश जिनविषै ऐसी रात्रनिविषै भोजनकौं रचैहै ते स्वभावतै नीचेको चलनेवाला जो जल ताहि शिखरनिविषै वृक्षनकौ प्राप्त करैहै ।

भावार्थ—इहां ऐसाहै कि कोऊ कहै हम रात्रिविषै दीपकादि करि हिंसा निवारि लेइंगे ताकूं कह्याहै रात्रि विषै हिसा अनिवार्य होयहै,

जातै भोजनके आश्रय जीव वा दीपकादिकरि और जीव अवश्य घाते-जायहैं, अर रागादिककी तीव्रता होयहै, तातै रात्रिविषै हिंसा अवश्यहै सो निवारी न जाय। ताका दृष्टांत दियाहै कि जलका स्वभाव नीचै पड़नेकाहै सो ऊपर चढै ऐसा कोई प्रकार होयसकै, ऐसा जानना॥ ५१॥

सूचयंति सुखदायि येंगिनां
रात्रिभोजनमपास्तचेतनाः।
पावकोद्धतशिखाकरालितं
ते वदंति फलदायि काननम्॥ ५२॥

अर्थ—जे अज्ञानी रात्रिभोजन जीवनकौ सुखदायक कहैहै ते अग्निकी उद्धत शिखाकरि जल्या जो वन ताहि फलदायक कहै है, सो होय नाही॥ ५२॥

ये ब्रुवंति दिनरात्रिभोगयो-
स्तुल्यतां रचितपुण्यपापयोः।
ते प्रकाशतमसोः समानतां
दर्शयंति सुखदुःखकारिणोः॥ ५३॥

अर्थ—रचेहै पुण्य अर पाप जिननै ऐसे जे दिनविषै भोजन अर रात्रिविषै भोजन दोऊनकौ समान कहैहै ते सुख अर दुःखके करने वाले ऐसे प्रकाश अर अंधकार दोऊनिकौ समान दिखावैहै।

भावार्थ—दिनमै भोजन धर्मरूपहै अर रात्रीभोजन पापरूपहै जैसै प्रकाश अर अंधकार समान कदाच नाहीं॥ ५३॥

रात्रिभोजनमधिश्रयंति ये
धर्मबुद्धिमधिकृत्य दुर्धियः।
ते क्षिपंति पविवह्निमंडलं
वृक्षपद्धतिविवृद्धये ध्रुवम्॥ ५४॥

अर्थ—जे धर्मबुद्धीकरि रात्रि भोजनकौं सेवन करैहैं ते निश्चयकरि वृक्षनिकी पद्धतिकी वृद्धिके अर्थ वज्राग्निके समूहकौ खेपैहै।

भावार्थ—कोई मिथ्यादृष्टि दिनमैं व्रत करै है रात्रिविषैं भोजन करैहै ताकूं कह्याहै—जैसै अग्नितै कोई प्रकार वृक्षनिकी वृद्धि न होय तैसैं रात्रिभोजनविषै कोई प्रकार धर्म नाहीं, अधर्म हीहै ऐसा जानना॥ ५४॥

ये विधृत्य सकलं दिनं क्षुधां
भुंजते सुकृतकांक्षया निशि।
ते विवृध्य फलशालिनीं लतां
भस्मयंति फलकांक्षया पुनः॥ ५५॥

अर्थ—जे जीव पुण्यकी वांछा करि सर्व दिन क्षुधाकौ धारि रात्रिविषै भोजन करैहै ते फलकरि सोभित लताकौं वढाय फेर फलकी वांछाकरि भस्म करैहै॥ ५५॥

ये सदापि घटिकाद्वयं त्रिधा
कुर्वते दिनमुखांतयोर्बुधाः।
भोजनस्य नियमं विधीयते
मासि तैः स्फुटमुपोषितद्वयम्॥ ५६॥

अर्थ—जे पंडित पुरुष सदाही दिनके आदि अर अंतविषै दोय घडी भोजनका नियम करैंहै तिनकरि प्रगटपने एक मासमै दोय उपवास करिएहै।

भावार्थ—दिनविषै दोय दोय मुहूर्त्त भोजनका त्याग भये मासमें साठि मुहूर्त्तका त्याग होतै दोय उपवासका फल होयहै॥ ५६॥

रोग शोककलिराटिकारिणी
राक्षसीव भयदायिनी प्रिया।

कन्यका दुरितपाकसंभवा
　　रोगिता इव निरंतरापदाः ॥ ५७ ॥
देहजा व्यसनकर्मपंडिताः
　　पन्नगा इव वितीर्णभीतयः ।
निर्धनत्वमनपायि सर्वदा-
　　पात्रदानमिव दत्तवृद्धिकम् ॥ ५८ ॥
संकटं सतिमिरं कुटीरकं
　　नीचवित्तमिव रंध्रसंकुलम् ।
नीचजातिकुलकर्मसंगमः
　　शीलशौचशमधर्मनिर्गमः ॥ ५९ ॥
व्याधयो विविधदुःखदायिनो
　　दुर्जना इव परापकारिणः ।
सर्वदोपगणपीड्यमानता
　　रात्रिभोजनपरस्य जायते ॥ ६० ॥

अर्थ—रात्रिभोजन विषै तत्पर जो पुरुष ताकै ऐसी सामग्री होयहै सो कहैहै;—राग अर शोक अर कलह अर राड़ इनकी करनेवाली अर राक्षसीकी ज्यौं भय देने वाली स्त्री मिलैहै, अर महापापतै उपजा अंतरायसहित सदा दुःख देने वाली ऐसी कन्या होयहै, बहुरि दियाहै भयजिननै ऐसे पाप कर्मविषै प्रवीण सर्पकी ज्यौ पुत्र होयहै, बहुरि दईहै वृद्धि जानै ऐसा अपात्रदानकी ज्यौं निर्धनपना विनाशरहित सदा होयहै।

भावार्थ—जैसै अपात्रदान निरंतर वृद्धि करै तैसै रात्रिभोजन निर्धनपना नित्य वढावै ऐसा दृष्टांत दियाहै। बहुरि छिद्रनि करि व्याप्त नीचपुरुषके वित्तकी ज्यौं संकटरूप अंधकार सहित घर मिलैहै, अर

नीच जाति कुलकर्म इनकी संगम होयहै, अर शील निर्लोभता समभाव धर्म इनका निर्गम होयहै अभाव होयहै, अर परके बुरे करनेवाले दुर्जनकी ज्यों अनेक दुःख देनेवाली व्याधि होयहै, अर सर्व दोषनके समूहकरि पीड्यमानपना दुखीपना होयहै। ऐसै रात्रिभोजन करनेवालेकै दोषनिकी उत्पत्ति होयहै ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥

आगैं रात्रिभोजन त्यागनेवालेके गुण कहैहैं;—

पद्मपत्रनयनाः प्रियंवदाः
श्रीसमः प्रियतमा मनोरमाः ।
सुंदरा दुहितरः कलालयाः
पुण्यपंक्तय इवात्तविग्रहाः ॥ ६१ ॥
अंशितव्यसनवृत्तयोऽमलाः
पावना हिमकरा इवांगजाः ।
शक्रमंदिरमिवास्ततामसं
मंदिरं प्रचुररत्नराजितम् ॥ ६२ ॥
लब्धचिंतितपदार्थमुज्ज्वलं
भूरिपुण्यमिव वैभवं स्थिरम् ।
सर्वरोगगणमुक्तदेहता
सर्वशर्मनिवहाधिवासिता ॥ ६३ ॥
ज्ञानदर्शनचरित्रभूतयः
सर्वयाचितविधानपंडिताः ।
सर्वलोकपतिपूजनीयता
रात्रिभुक्तिविमुखस्य जायते ॥ ६४ ॥

अर्थ—कमलके पत्रसमान है नयन जिनके अर प्रिय वचन बोलनेवाली लक्ष्मीके समान रमावने वाली ऐसी स्त्री होयहै, अरकला

विद्यानिकी स्थान अर पुण्यकी पंकतिसमान ग्रहण कियाहै शरीर जिननै ऐसी सुंदर कन्या होयहै ॥ ६१ ॥

अर दूर करीहै व्यसनकी प्रवृत्ति जिननैं पवित्र निर्मल चंद्रमा समान पुत्र होयहै, अर इंद्रके मंदिरसमान अंधकाररहित प्रचुररत्ननिकरि शोभित ऐसा मंदिर मिलैहै ॥ ६२ ॥

अर पायाहै वांछित पदार्थ जातैं ऐसो उज्ज्वल महापुण्यसमान स्थिर वैभव होयहै, अर सर्व रोगनके समूहकरि रहित देहपना अर सर्व सुखनके समूहका आधारपना ॥ ६३ ॥

अर सर्व वांछित रचनेमैं प्रवीण ऐसी ज्ञान दर्शन चारित्र की संपत्ति अर सर्वलोकपतिनकरि पूजनीकपना ये रात्रिभोजनतैं जो विमुखहै ताकै होयहै।

भावार्थ—पूर्वोक्त गुण रात्रिभोजनके त्यागीकै सर्व होयहै ऐसा-जानना ॥ ६४ ॥

शूकरी शंवरी वानरी धीवरी
रोहिणी मंडली शोकिनी क्लेशिनी ।
दुर्भगा निःसुता निर्धवा निर्धना
शर्वरीभोजिनी जायते भामिनी ॥ ६५ ॥

अर्थ—रात्रिविषै भोजन करनेवाली स्त्रीहै सो सूकरी भीलनी वानरी धीवरी रोहिणी कुत्ती शोकसहित क्लेशसहित दुर्भग पुत्ररहित पतिरहित धनरहित ऐसी होयहै ॥ ६५ ॥

बांधवैरंचिता देहजैर्वंदिता
भूपणैर्भूपिता व्याधिभिर्वर्जिता ।
श्रीमती ह्रीमती धीमती धर्मिणी
वासरे'जायते भुक्तितः शर्मणी ॥ ६६ ॥

अर्थ—बांधवनिकरि युक्त अर पुत्रनिकरि वंदित अर आभूषणनिकरि भूषित अर रोगनिकरि वर्जित लक्ष्मीवान लज्जावान बुद्धिवान धर्मात्मा ऐसी सुखरूप स्त्रीहै सो दिनविषै भोजनतै होयहै।

भावार्थ—जो रात्रिविषै भोजन त्यागैहै सो पूर्वोक्त गुणसहित होयहै॥ ६६॥

रात्रिभोजनविमोचिनो गुणा
ये भवंति भवभागिनां परे।
तानपास्य जिननाथमीशते
वक्तुमत्र न परे जगत्रये॥ ६७॥

अर्थ—जीवनिकै रात्रिभोजन त्यागके उत्कृष्ट गुणहै तिनहि तीनलोकविषै जिनराज सिवाय और कोई कहनेकौं समर्थ नाहींहै॥ ६७॥

ऐसै रात्रिभोजनका निषेध किया, आगै पंच उदंबर फलनिका निनिषेध करैहै;—

यत्र सूक्ष्मतनवस्तनूभृतः
संभवंति विविधाः सहस्रशः।
पंचधा फलमुदुंबरोद्भवं
तन्न भक्षयति शुद्धमानसः॥ ६८॥

अर्थ—जाविषै सूक्ष्महै शरीर जिनके ऐसे जीव नानाप्रकार हजारां उपजैहै तिस पांच प्रकार उदंवरजनित फलकौ शुद्धहै मन जाका ऐसा पुरुष है सो न खायहै।

भावार्थ—ऊमर कठऊमर, पाकरफल, बड, पीपर ये पांच उदंबर फलहै ते त्रसजीवनिके उपजनेके ठिकानेहै तातै बुद्धिवान इनका सर्वथा परित्याग करैहै॥ ६८॥

क्षीरभूरुहफलानि भुंजते
चित्रजीवनिचितानि येऽधमाः।
जन्मसागरनिपातकारणं
पातकं किमिह ते न कुर्वते॥ ६९॥

अर्थ—जे पापीपुरुष असंख्यात जीवनिकरि भरे हुए क्षीरीवृक्षनिके फलनिकौं खायहैं ते संसारसागरमैं डूबनेकौ कारण कौनसा पापकौं इहां न करैहैं, अपितु सर्वही पाप करैहैं॥ ६९॥

असंख्यजीवव्यपघातवृत्तिभि-
र्न धीवरैरस्ति समं समानता।
अनंतजीवव्यपरोपकारिणा-
मुदुंबराहारविलोलचेतसाम्॥ ७०॥

अर्थ—अनंत जीवनके नाशकरनेवाले पंच उदंबरके आहारविषै है लोलुप चित्त जिनका तिनकी असंख्य जीवनके घातरूपहै आजीविका जिनकी ऐसे ढीमरनिकरि साथ समानता नाहीं है।

भावार्थ—उदंबरके खानेवालेकै ढीमरनतै भी अधिक पापीपना यहां दिखाया ऐसा जानना॥ ७०॥

ये खादंति प्राणिवर्गं विचित्रं
दृष्ट्वा पंचोदुंबराणां फलानाम्।
श्वभ्रावासं यांति ते घोरदुःखं
किं निस्त्रिंशैः प्राप्यते वा न दुःखम्॥ ७१॥

अर्थ—जे नानाप्रकार जीवनिके समूहकौ देखकरि पंच उदंबर फलनिकौं खायहै ते घोरदुःखरूप नरकवासकौ प्राप्त होयहै, अथवा निर्दय जीवनिकरि कहा दुःख न पाइएहै, सर्वही पाइएहै॥ ७१॥

अघप्रदायीनि विचिंत्य धर्मधी-
रुदुंबराणां न फलानि वल्भते ।
विधातुमिष्टे सुखदे प्रयोजने
करोति कस्तद्विपरीतमुत्तमः ॥ ७२ ॥

अर्थ—धर्मबुद्धी पुरुष है सो उदंबरनिके फलनिकौ पापके देनेवाले जानि नही खायहै, जातै सुखंदायक कार्य करनेकौ इष्ट होतसंतै कौन उत्तम पुरुष है सो तातै विपरीत करैहै, अपि तु नाही करैहै ॥ ७२ ॥

आदावंते स्फुटमिह गुणा निर्मला धारणीयाः
पापध्वंसि व्रतमपमलं कुर्वता श्रावकीयम् ।
कर्त्तुं शक्यं स्थिरगुरुतरं मंदिरं गर्त्तपूरं
न स्थेयोभिर्दृढतरमृते निर्मितं ग्रावजालैः॥७३॥

अर्थ—पापका नाश करनेवाला श्रावकसंबंधी निर्मलव्रतकौ करता जो पुरुष ता करि आदि अंत विषै प्रगटपने इहां निर्मल गुण धारणा योग्यहै । इहां दृष्टांत कहैहै—जैसै अत्यंत थिर जे पत्थरनके समूह तिनकरि दृढ किया जो गर्त्तपूर कहिए नीव ताविना स्थिर अर अतिभारी मंदिर करनेकौ समर्थ नाहीं तैसै ।

भावार्थ—जैसै दृढमूल विना निश्चल मंदिर न होयहै तैसै पंच उदंवर तीन मकारके त्यागरूप मूलगुण विना निर्मल व्रत न होयहै तातै आदितै लगाय अंतपर्यंत प्रथम मूलगुण धारणा योग्य है ॥ ७३ ॥

दातुं दक्षः सुरतरुरिव प्रार्थनीयं जनानां
चित्ते येषामिति गुणगणो निश्चलत्वं विभर्त्ति ।
भुक्त्वा सौख्यं भुवनमहितं चिंतितावाप्तभोगं
ते निर्वाधाममितगतयः श्रेयसीं यांति लक्ष्मीम् ॥७४॥

अर्थ—जीवनिकौ वांछित देनेकौ कल्पवृक्षसमान प्रवीन ऐसा यह गुणनिका समूह जिनके चित्तविषै निश्चलपनेकौ धारैहै ते पुरुष चिंतत-प्राप्तहै भोग जाविषै ऐसे लोकपूजित सुख कौ भोगकरि अनंत है ज्ञान जिनके ऐसे भये संते निर्बाध मोक्षलक्ष्मीकौ प्राप्त होयहै ॥ ७४ ॥

मद्य मांस मधु पंच उदंवर फल त्रसजीवनिके आधार
लौंणी निशिभोजन इत्यादिक तीव्र पाप त्याग दुखकार ।
विमल मूलगुण प्रथम धरत हम सब व्रत सोभा पावै सार
तातैं भोगि सार सुख क्रमतैं होय अमितगति जगसिरदार ॥

इत्युपासकाचारे पंचमः परिच्छेदः ।

इति श्री अमितगति आचार्यकृत श्रावकाचारविषैं
पंचम परिच्छेद समाप्त भया

अथ षष्ठः परिच्छेदः ।

आगै द्वादश अणुव्रतका वर्णन करैहै;—

मद्यादिभ्यो विरतैर्व्रतानि कार्याणि शक्तितो भव्यैः ।
द्वादश तरसा छेत्तुं शस्त्राणि शितानि भववृक्षम् ॥ १ ॥

अर्थ—मद्यादिकनितै विरक्त जे भव्यपुरुष तिनकरि शक्ति सारू द्वादश व्रत करणा योग्यहै। ते व्रत संसारवृक्षकौ वेगकरि छेदनेकौ तीक्ष्ण-शस्त्रकी ज्यौहै ॥ १ ॥

अणुगुणशिक्षाद्यानि व्रतानि गृहमेधिनां निगद्यंते ।
पंचत्रिचतुः संख्यासहितानि द्वादश प्राज्ञैः ॥ २ ॥

अर्थ—पंडितनि करि श्रावकनिके अणुव्रत गुणव्रत शिक्षाव्रत क्रमसै पांच तीन च्यार संख्या सहित द्वादश कहैहै ।

भावार्थ—पाच अणुव्रत तीन गुणव्रत च्यार शिक्षाव्रत ऐसै बारह व्रत श्रावकनिके कहैहै ॥ २ ॥

आगै अणुव्रतनिकौ कहैहै;—

हिंसासत्यस्तेयाब्रह्मपरिग्रहनिवृत्तिरूपाणि ।
ज्ञेयान्यणुव्रतानि स्थूलानि भवंति पंचात्र ॥ ३ ॥

अर्थ—इहां स्थूल हिसा झूंठ चौरी अब्रह्म परिग्रह इनितै निवृत्तिरूप पांच अणुव्रत जानना योग्यहै ॥ ३ ॥

तहां स्थूल हिसात्याग व्रतकौ कहैहै;—

द्वेधा जीवा जैनैर्मतास्त्रसस्थावरप्रभेदेन ।
तत्र त्रसरक्षायां तदुच्यतेऽणुव्रतं प्रथमम् ॥ ४ ॥

अर्थ—जैनीनिनै त्रस स्थावर के भेद करि दोयप्रकार जीव कहैहै तहां त्रसजीवनकी रक्षा होतसंतै सो प्रथम अणुव्रत कहिएहै ॥ ४ ॥

स्थावरघाती जीवस्त्रससंरक्षी विशुद्धपरिणामः ।
योऽक्षविषयान्निवृत्तः सः संयतासंयतो ज्ञेयः ॥ ५ ॥

अर्थ—जो जीव स्थावरघाती है स्थावरकी हिंसा त्यागनेकौ असमर्थहै, अर त्रस जीवानिका भले प्रकार रक्षासहितहै अर विशुद्धहै परिणाम जाके अर इंद्रियके विषयनितै विरक्तहै सो संयतासंयत कहिए देशव्रतका धारक श्रावक जानना ॥ ५ ॥

हिंसा द्वेधा प्रोक्ताऽरंभानारंभजत्वतोदक्षैः ।
गृहवासतो निवृत्तो द्वेधापि त्रायते तां च ॥ ६ ॥
गृहवाससेवनरतो मंदकषायः प्रवर्त्तितारंभाः ।
आरंभजां स हिंसां शक्नोति न रक्षितुं नियतम् ॥ ७ ॥

अर्थ—पंडितनिकरि आरभ अर अनारंभतै उपजवे पने करि हिसा सो कहीहै दोय प्रकार गृहवासतैं निवृत्त जो मुनि सो तौ दोय प्रकार हिसाकौ वचावैहै ॥ ६ ॥

अर जो गृहवासके सेवनेमै रत श्रावक मंदकषायस्वरूप वर्त्तायाहै आरभ जानैं सो निश्चयकरि आरंभ जनित हिंसाके त्यागनेकौ समर्थ न होय है ।

भावार्थ—मदकषायरूप चारित्रमोहके उदयतै अवशपनें व्यापार आंरभविषै उपजै सो तो आंरभजनित हिंसा कहिए, अर विना ही प्रयोजन चलाकरि आपही तीव्र कषायरूप हिंसा करना सो 'अनारंभजनित हिंसा कहिए सो इनि दोऊप्रकार हिसानिका त्याग तौ मुनीश्वरनिकै होय है, अर गृहस्थके शक्तिहीनपनातैं निर्दोष व्यापारादि जनित

हिसाका त्याग न होय सकै है परंतु परिणामनिविषैं सर्वहिंसातैं महा अरुचि हैं, निदा गर्हा आपकी करै है ऐसा जानना ॥ ७ ॥

शमिताद्यष्टकषायः प्रवर्त्तते यः परत्र सर्वत्र ।
निंदागर्हाविष्टः सः संयमासंयमं धत्ते ॥ ८ ॥

अर्थ——उपसमाए है आदिकें अनंतानुवंधी अप्रत्याख्यान रूप क्रोधादि अष्ट कषाय जानैं अर सर्व ठिकानै निदा गर्हा युक्त जो प्रवर्तै है सो संयमासंयम जो देशव्रत ताहि धारै है ॥ ८ ॥

कामासूयामायामत्सरपैशून्यदैन्यमदहीनः ।
धीरः प्रसन्नचित्ताः प्रियंवदो वत्सलः कुशलः ॥ ९ ॥
हेयादेयपटिष्टो गुरुचरणाराधनोद्यतमनीषः ।
जिनवचनतोयधौतस्वांतकलंको भवविभीरुः ॥ १० ॥
सम्यक्तरत्नभूषो मंदीकृतसकलविषयकृतगृद्धिः ।
एकादशगुणवर्त्ती निगद्यते श्रावकः परमः ॥ ११ ॥

अर्थ——विषयनिकी वांछा अदेखसका भाव मायाचार मत्सरता चुगलीखाना दीनपना जात्यादिमद इनकरि रहित होय अर प्रसन्नचित्त होय अर प्रियवचन कहनेवाला होय धीर होय प्रीतियुक्त अर प्रवीण होय ॥ ९ ॥

बहुरि त्यागने योग्य ग्रहण करने योग्य विषै पंडित होय अर गुरुचरणानके आराधने विपै उद्यमरूपबुद्धियुक्त होय, अर जिनवचनरूपजलकरि धोया है मनका कलंक जानै ऐसा होय, अर संसारतै भयभीत होय ॥ १० ॥

बहुरि सम्यक्तरूप रत्नके आभूपण करि सहित होय, अर मंद करी है समस्त विषयनि करि लोलुपता जानै ऐसा होय,

वहुरि एकादश गुण जे ग्यारह प्रतिमा तिनविषैं प्रवर्तने वाला होय सो परम श्रावक कहिए है ॥ ११ ॥

संरंभसमारंभारंभैर्योगकृतकारितानुमतैः ।
सकषायैरभ्यस्तैस्तरसा संपद्यते हिंसा ॥ १२ ॥
त्रित्रित्रिचतुःसंख्यैः संरंभाद्यैः परस्परं गुणितैः ।
अष्टोत्तरशतभेदा हिंसा संपद्यते नियतम् ॥ १३ ॥

अर्थ—संरंभ समारभ आरंभ अर मन वचनकाय अर कृत कारित अनुमोदना अर क्रोध मान माया लोभसहित गुणे भए निकरि वेगकरि हिसा उपजैहै ॥ १३ ॥ संरंभादिक तीन अर योग तीन अर कृत कारित अनुमत ये तीन अर कषाय च्यार इनतै परस्पर गुणो भएनि करि एकसौ आठ भेदरूप हिंसा निश्चय तै उपजैहै।

भावार्थ—सरंभ कहिए हिसा करनेका श्रद्धानविचार अर समारंभ कहिये हिंसाके उपकरण मिलावना अर आरंभ कहिए जीवनिका मारना ये तीनौ मन वचन काय करि गुणे भए नव भए; तिनकौ कृत कारित अनुमोदना करि गुणे सत्ताईस भए तिनकौं क्रोधादि च्यार कषायनितै गुणे एकसौ आठ भए। इनसैं एकसै आठ भंगनिकी पलटन कैसै होय है सो कहिए है प्रथम संरंभ मन करि करया क्रोधसहित ऐसा प्रथम भंग भया, वहुरि समारंभ मन करि करया क्रोध सहित ऐसा दूसरा भंग भया, वहुरि समारंभ मन करि कऱ्या क्रोधसहित ऐसा तीसरा भंग भया, ऐसै प्रथमभेद समाप्त भए योगरूप दूसरा भेद पलटै जैसे मन कह्या तहां वचन कहना, वहुरि ताकूं भी पूर्ण होतै तीसरा भेद पलटै, जैसै कृत कह्या था तहां कारित कहना ताकूं भी पूर्ण होतै चौथा भेद पलटै जैसैं क्रोध कह्या तहां मान कहना। जैसै भंग पलटनेतै एकसौ आठ भेद हिंसाके होयहै ऐसा जानना ॥ १३ ॥

जीवत्राणेन विना व्रतानि कर्माणि नो निरस्यंति।
चंद्रेण विना नक्षैर्हन्यंते तिमिरजालानि ॥ १४ ॥

अर्थ—जीवनिकी दया विना व्रतहै ते कर्मनिका नाश नांहीं करै है जैसैं चंद्रमा विना नक्षत्रनि करि अंधकारका समूह नांहीं हनिएहै तैसै।

भावार्थ—सब व्रतनमैं जीवदया प्रधानहै ऐसा जानना ॥ १४ ॥

तिष्ठंति व्रतनियमा नाहिंसामंतरेण सुखजनकाः।
पृथिवीं न विना दृष्टास्तिष्ठंतः पर्वताः क्वापि ॥ १५ ॥

अर्थ—सुखके उपजावने हार व्रत अर नियमहै ते दया विना नांहीं तिष्ठैहै, जैसै पृथ्वी विना तिष्ठते पर्वत कहूंभी न देखे तैसै।

भावार्थ—सब व्रत नियमनिका आधार दयाहै ऐसा जानना ॥१५॥

निघ्नानेनाहिंसामात्माधारां निपात्यते नरके।
स्वाधारां न हि शाखां छिंदानः किं पतति भूमौ ॥१६॥

अर्थ—आत्माका आधाररूप जो अहिंसा दया ताहि विनासता जो पुरुष ता करि आत्मा नरकविषै पटकिएहै, इहां दृष्टांत कहिएहै अपने अधाररूप जाय वैठ्या ऐसी जो शाखा डाली ताहि छेदता संता पुरुषहै सो पृथ्वीविषै कहा नाहीं पडैहै, पडैहीहै ॥ १६ ॥

स मतो विरताविरतः स्वल्पकषायो विवेकपरमनिधिः।
रक्षति यस्त्रसदशकं प्राणिहितं स्थावरचतुष्कम् ॥ १७ ॥

अर्थ—जो वेइंद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रियसैनी असैनी इनके पर्याप्त अपर्याप्त भेदकरि दश भेद भए यह जो त्रस दशक ताकी रक्षा करैहै, अर एकेंद्रिय वादर सूक्ष्म ताके पर्याप्त अपर्याप्त भेद करि च्यार भेद ऐसा स्थावर चतुष्क ताका हित वांछै है अवशतै तिनकी हिंसा

होयहै तौ भी अनुमोदना नाही करैहै, मंदहै कषाय जाकै अर विवेक का परमनिधान सो विरताविरत श्रावक कह्याहै ॥ १७ ॥

सर्वविनाशी जीवस्त्रसहननं त्याज्यते यतो जैनैः ।
स्थावरहननानुमतिस्ततः कृता तैः कथं भवति ॥ १८ ॥

अर्थ—यातै जीवहै सो सबका हिसकहै तातै जैनीनिकरि त्रसहिंसाका त्याग करिएहै तिनकरि स्थावरका हिसाविषै अनुमोदना कैसैं करिएहै ।

भावार्थ—कोउ कहै श्रावककै त्रसहिंसाका त्यागकै ऐसे उपदेशमैं स्थावरहिसामैं अनुमोदना आई ताकूं कह्याहै जीव सर्वहीका हिसकहै ताकै सर्व हिसा छूटती न जानि त्रसहिसा छुडाइए है किछू स्थावरकी हिसा करनेका उपदेश नाही तातै स्थावरहिंसामै अनुमोदना नाहीं ऐसा जानना ॥ १८ ॥

त्रिविधा द्विविधेन मता विरतिर्हिंसादितो गृहस्थानां ।
त्रित्रिधा त्रिविधेन मता गृहचारकतो निवृत्तानाम् ॥ १९ ॥

अर्थ—गृहस्थनिकै हिसादिकनितै विरति कहिए त्यागभाव सो दोय प्रकारसहित तीन प्रकारहै बहुरि गृहत्यागीनिकै तीनप्रकार सहित तीन-प्रकारहै ।

भावार्थ—करै नाहीं करावै नाहीं मनवचन काय करि ऐसै छह प्रकार त्यागहै अनुमोदनासहित नवकोटीत्याग नाहीं जातै हिंसादिकमैं अनुमोदनका प्रसंग बन रह्याहै, ऐसा गृहस्थनिकै जानना । बहुरि जे गृहाचारके त्यागीहै तिनकै कृत कारित अनुमोदनासहित मनवचन कायकरि नवकोहीका त्यागहै, ऐसा जानना ॥ १९ ॥

जीववपुषोरभेदो येषामेकांतिको मतः शास्त्रे ।
कायविनाशे तेषां जीवविनाशः कथं वार्यः ॥ २० ॥

अर्थ—जिनके शास्त्रविषै जीवका अर शरीरका एकांतिकरूप अभेद कह्याहै तिनके शरीरके विनाश होतसंतै जीवका विनाश कैंसै न भया ॥ २० ॥

आत्मशरीरविभेदं वदंति ये सर्वथा गतविवेकाः ।
कायवधे हंत कथं तेषां संजायते हिंसा ॥ २१ ॥

अर्थ—जो विवेकरहित आत्माका अर शरीरका सर्वथा भेद कहैहैं तिनके शरीरके वध होतसंतै हिसा कैसै होय यह बडे आश्चर्यकी बातहै ।

इहां भावार्थ ऐसाहै;—जो पहिले श्लोकमै तो सर्वथा जीवकै अर शरीरकूं अमेद मानैहै तिनके शरीर विनाश होतैं अवश्य जीवका नाश आया तब स्वयमेव हिसा आई, अर जे सर्वथा जीवको अर शरीरकौं भेद मानैहै तिनके शरीरके नाशमै हिंसा न ठहरी तब तेभी स्वच्छंद होतै हिंसकही भये । तातै दोऊ ही एकांती है ते हिंसकहै, ऐसा जानना ॥ २१ ॥

भिन्नाभिन्नस्य पुनः पीडा संपद्यतेतरां घोरा ।
देहवियोगे यस्मात्तस्मादनिवारिता हिंसा ॥ २२ ॥

अर्थ—जातै देहतै कोईप्रकार भिन्न कोई प्रकार अभिन्न ऐसा जो जीव ताकै शरीरका वियोग होतसंतै अतिशय करि घोर पीडा उपजैहै तातै अनिवारित हिसा होयहै ।

भावार्थ—लक्षण भेदकरि जीव शरीर भिन्नहै तथापि वंधदृष्टि करि अभेदहै तातैं जीवके शरीरके वियोग करनेमैं अवश्य हिसा होयहै, ऐसा जानना ॥ २२ ॥

तत्पर्यायविनाशे दुःखोत्पत्तिः परश्च संक्लेशः ।
यः सा हिंसा सद्भिर्वर्जयितव्या प्रयत्नेन ॥ २३ ॥

अर्थ—तिस पर्यायके विनाश होतसंतै दुःखकी उत्पत्ति होय है अर जो महासंक्लेश होयहै सो हिंसा संतानि करि यत्नसहित वर्जनकरना योग्यहै ॥ २३ ॥

प्राणी प्रमादकलितः प्राणव्यपरोपणं यदा धत्ते।
सा हिंसाऽकथि दक्षैर्भववृक्षनिषेकजलधारा ॥ २४ ॥

अर्थ—जो प्राणी प्रमाद करि व्याप्त भया संता शरीरादि प्राणनिका व्यपरोपणा करैहै घात करैहै सो पंडितानि करि हिंसा कही है, कैसीहै हिंसा संसार वृक्षके सींचनेकौ जलधारासमानहै।

भावार्थ—कषायसहित आपके वा परके प्राणनिका नाशकरणा सो हिंसाका लक्षण कह्याहै ॥ २४ ॥

म्रियतां मा मृत जीवः प्रमादबहुलस्य निश्चिता हिंसा।
प्राणव्यपरोपेऽपि प्रमादहीनस्य सा नास्ति ॥ २५ ॥

अर्थ—जीव मरो चाहै न मरो तीव्रप्रमादसहित जीवकै निश्चयरूप हिंसाहै, बहुरि प्राणनिका नाश होतै भी प्रमादरहित कै सो हिंसा नाहींहै।

भावार्थ—हिंसाका मूलकारण प्रमाद है ताके होतैं बाह्य प्राणव्यपरोपण होतें वा न होतै हिंसा अवश्य होयहै, अर ता विना अप्रमत्त मुनिराजकै अवश्यतै प्राणव्यपरोपण होतै भी हिंसा नाहीं कहीहै ॥२५॥

यो नित्योऽपरिणामी तस्य न जीवस्य जायते हिंसा।
न हि शक्यते निहंतुं केनापि कदाचनाकाशम् ॥ २६ ॥

अर्थ—जो नित्य परिणामरहित कूटस्थ है ताके जीवकी हिंसा न होयहै, जातै, कोऊ करि कदाचित् आकाश हनिवेकूं समर्थ न हूजिएहै।

भावार्थ—जो सर्वथा नित्य कूटस्थ आत्माकौ मानेहै ताके हिंसाका जानना न होय तब ताका त्यागभी न होयहै, तातैं नित्यपनेका एकांत मिथ्या दिखायाहै ॥ २६ ॥

क्षणिको यो व्ययमानः क्रियमाणा तस्य निष्फला हिंसा।
चलमानाः पवमानो न चाल्यमानः फलं कुरुते ॥ २७ ॥

अर्थ—जो क्षणिक नाश होता संता जीवहै ताकी करी भई, हिसा निष्फलहै जैसै चालता जो पवन सो चलता संता फलकौं न करैहै तैसैं।

भावार्थ—जे जीवकौ क्षणिक मानेहै तिनकै क्षण क्षण आपहीका नाश भया ताकी हिसा निष्फल भई, जैसै पवन आपही चालै सो चलाया संता फल कहा करै तातै क्षणिक मानना भी मिथ्याहै ॥२७॥

यस्मान्नित्यानित्यः कायवियोगे निपीड्यते जीवः।
तस्माद्युक्ता हिंसा प्रचुरकलिलबंधवृद्धिकरी ॥ २७ ॥

अर्थ—जातै कथंचित् नित्य कथंचित् अनित्य स्वरूप जीवहै सो शरीरके वियोग होतसंतै पीडिएहै दुखी होयहै, तातै प्रचुर पापकी बंध करनेवाली हिसायुक्त है।

भावार्थ—स्याद्वाद करि नित्य वा अनित्य स्वरूप जीव मानैहै तिन-हीकै हिसाका ज्ञान होयहै, तब तिनहीकै त्याग होयहै, एकातीकै हिसा-का जाने विना त्याग नांही। ऐसा इहां आशय जानना ॥ २८ ॥

देवातिथिमंत्रौषधपित्रादिनिमित्ततोऽपि संपन्ना।
हिसा धत्ते नरके किं पुनरिह नान्यथा विहिता ॥२९॥

अर्थ—देव गुरु मंत्र औषध पितर इत्यादिकनिके निमित्ततै भी प्राप्त भई हिसाहै सो नरकमै धरैहै तौ इहां फेर और प्रकार करी भई हिसा नरकविषै न धरैहै, धरैहीहै ॥ २९ ॥

आत्मवधो जीववधस्तस्य च रक्षात्मनो भवति रक्षा।
आत्मा न हि हंतव्यस्तस्य वधस्तेन मोक्तव्यः॥ ३०॥

अर्थ—जीवका वधहै सो आत्माका वधहै अर जीवकी रक्षाहै सो आत्माकी रक्षाहै, बहुरि आत्मा हनिवे योग्य नाही ता कारण तिस जीवका वध त्यागना योग्यहै।

भावार्थ—जीवनके घातविषै कपायभाव होयहै तिन कषायभावनि करि स्वभावघात होतै आत्माहीका घात भया, अर जीवनिकी रक्षा करनेतै कपाय घटै तब आयुहीकी रक्षा भई, बहुरि आत्मघात करना योग्य नाहीं। तातै हिंसा त्यागना योग्यहै॥ ३०॥

सर्वाविरतिः कार्या विशेषयित्वातिचार भीतेन।
पौर्वापर्य दृष्ट्वा सूत्रार्थ तत्त्वतो बुध्द्वा॥ ३१॥

अर्थ—अतीचार करि भयभीत पुरुप करि सर्वा विरतिः कहिए सर्वप्रकार त्याग पूर्वापर देखकरि भापित सूत्रके अर्थकौ निश्चयतै जान करि सो विशेपताकरि करणा योग्यहै।

भावार्थ—त्याग करणा सो या प्रकार मेरे त्यागहै ऐसें विशेषणसहित पूर्वापर विचारकै अर सूत्रके अर्थकौ जानकरि, बहुरि मत कदाच प्रतिज्ञाभंग होय ऐसै मनमै भय रखकरि करणा। विना विचारे करणा योग्य नाहीं॥ ३१॥

शक्त्यनुसारेण बुधैर्विरतिः सर्वापि युज्यते कर्तु।
तामन्यथा दधानो भंगं याति प्रतिज्ञायाः॥ ३२॥

अर्थ—पंडितनि करि शक्ति अनुसार सर्वही त्याग करणा योग्यहै, बहुरि ता त्यागकौ अन्यथा कहिए शक्ति विनाही करता जो पुरुष सो प्रतिज्ञाके भंगकौ प्राप्त होयहै।

भावार्थ—व्रतधारणमै शक्ति छिपावनी नाहीं अर शक्तिसिवाय भी न करणा ऐसा इहां कह्याहै ॥ ३२ ॥

आगै मिथ्यादृष्टी जीव केई प्रकार हिसा थापैहै तिनका निराकरण करिएहै;—

केचिद्वदंति मूढा हंतव्या जीवघातिनो जीवाः ।
परजीवरक्षणाथ धर्मार्थं पापनाशार्थम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—केई मूढ मिथ्यादृष्टी कहैहै कि परजीवनकी रक्षा के अर्थ वा धर्मके अर्थ वा पापके नाशके अर्थ जीवनके मारनेवाले जे हिसक जीव ते मारनेयोग्यहै ॥ ३३ ॥

तिनसै आचार्य कहैहै;—

युक्तं तन्नैवं सति हिंस्रत्वात्प्राणिनामशेषाणाम् ।
हिंसायाः कः शक्तो निषेधने जायमानायाः ॥ ३४ ॥

अर्थ—ऐसा कहना युक्त नाहीं जातै या प्रकार माने संतै हिसक-पनेतै समस्तजीवनिकी उपजी जो हिसा ताके निषेध करने विपै कौन समर्थ है ।

भावार्थ—हिसक जीवनिकी हिसा योग्य होय तौ हिसकजीव तौ सवहीहै सवहीकी हिसा ठहरै तातै हिंसक जीवनिकी भी हिसा करणा योग्य नाहीं ॥ ३४ ॥

आगै वानै कह्याथा जो धर्मके अर्थ हिसा करणी ताका निपेध करैहै;—

धर्मोऽहिंसाहेतुर्हिंसातो जायते कथं तथ्यः ।
न हि शालिः शालिभवः कोद्रवतो दृश्यते जातः ॥३५॥

अर्थ—धर्म है सो अहिंसाहेतु है अहिंसातै उपजैहै सो तैसा सत्यार्थ धर्म हिंसातै कैसै उपजै । इहां दृष्टांत कहैहै;—धानतै उपज्या जो चावल सो कोदूंतै उपज्या न देखिएहै ।

भावार्थ—दयाहै कारण जाका ऐसा धर्म हिंसातै कदाच न होयहै, जातै कारणानुरूप कार्य होयहै; तातै धर्मके अर्थ भी हिंसा करणा योग्य नाहीं ॥ ३५ ॥

आगै पहले वानै कह्याथा जो पापके नाशके अर्थ हिंसकनकी हिंसा करणी ताका निषेध करैहै;—

पापनिमित्तं हि वधः पापस्य विनाशने न भवति शक्तः ।
छेदनिमित्तं परशुः शक्नोति लतां न वर्द्धयितुम् ॥३६॥

अर्थ—पापका कारण जो जीवनिका घात सो पापके विनाशनै विषै समर्थ न होय है जैसे छेदनेका कारण फरसी सो लताके वढावनेको समर्थ न होय तैसै ॥ ३६ ॥

आगै हिंसकजीवनिकी हिंसा धर्मके अर्थ मानै ताका निषेध करैहै;—

हिंस्राणां यदि घाते धर्मः संभवति विपुलफलदायी ।
सुखविघ्नस्तर्हि गतः परजीवविघातिनां घाते ॥ ३७ ॥

अर्थ—जो हिंसकजीवनिके घातविषै वडा फलका देने वाला धर्म संभवैहै तो पर जीवनिकी हिंसाकरनेवालेनिके घात मै सुखविषै विघ्न आया ।

भावार्थ—हिंसक जीवनकी हिंसा करनेवाले नै उनके सुखमै विघ्न करया सोई हिंसा भई, धर्मकाहेका; ऐसा जानना ॥ ३७ ॥

यस्माद्गच्छंति गतिं निहता गुरुदुःखसंकटां हिंस्राः ।
तस्माद्दुःखं ददतः पापं न भवति कथं घोरम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—जातै हिंसक है ते मारे भए महादुःखका है संकट जा विषै ऐसी गतिकौ जाय है तातै दुःख देनेवालेकै घोर पाप कैसै न भया ॥३८॥

आगैं दुःखी जीवनिकी हिंसाका निषेध करै है:—

दुःखवतां भवति वधे धर्मो नेदमपि युज्यते वक्तुम् ।
मरणे नरके दुःखं घोरतरं वार्यते केन ॥ ३९ ॥

अर्थ—दुःखी जीवनिके घातविषै धर्म होय है ऐसा भी कहना योग्य नाही, जातै तरण होतसंतै नरकविषै अत्यंत घोर दुःख कौन करि निवारिए है। भावार्थ—कोई कहै कि दुःखी जीवनिकी हिंसामैं धर्म होय है जातै वो वाका दुःख दूर भया ताकूं कह्या है—वह जीव मरकै नरक गया तहां महा दुःख कैसै निवारैगा तातैं अधिक दुःख देनेतै पापही है धर्म नाहीं ॥ ३९ ॥

सुखितानामपि घाते पापप्रतिषेधने परो धर्मः ।
जीवस्य जायमाने निषेधितुं शक्यते केन ॥ ४० ॥

अर्थ—कोऊ कहै कि, सुखी जीवनके घात विषै भी विषय सुखरूप पापका निषेध होतै वड़ा धर्म है. ताकूं कह्या है—ऐसा नाहीं, जातै जीवनिके उपजते संतैं पाप निषेधनेकौं कौन करि समर्थ हूजिए है।

भावार्थ—वह जीव अन्यत्र उपजैगा तहां पाप करैगा तातै उलटा सिवाय पाप करावनेमैं धर्म नाही, पापही है ॥ ४० ॥

पौर्वापर्यविरुद्धं सम्यक्त्वमहीध्रपाटने वज्रम् ।
इत्थं विचार्य सद्भिः परवचनं सर्वथा हेयम् ॥ ४१ ॥

अर्थ—पंडितनि करि या प्रकार विचारकै पूर्वापर विरुद्ध अर सम्यक्त पर्वतके तोडनेकौ वज्र समान जो मिथ्या दृष्टीनिका वचन सो सर्वथा त्यागना योग्य है॥ ४१ ॥

अज्ञानतो यदेनो जीवानां जायते परमघोरम् ।
तच्छक्यते निहंतुं ज्ञानव्यतिरेकतः केन ॥ ४२ ॥

अर्थ—जो जीवनिकै अज्ञानतै महा घोर पाप उपजै है सो पाप ज्ञान विना कौन करि हनिवेकूं समर्थ हूजिए है।

भावार्थ—अज्ञानजनित पाप ज्ञानहीतै मिटै औरनितै न मिटैहै; ऐसा जानना ॥ ४२ ॥

यो धर्मार्थं छिंत्ते हिंस्राहिंस्रसुखदुःखिनो भविनः।
पीयूषं स्वीकर्त्तु स हंति विषविटपिनो नूनम् ॥ ४३ ॥

अर्थ—जो जीव धर्मके अर्थ हिंसक वा अहिंसक सुखी वा दुखी जीवनिकौ मारैहै सो निश्चयकरि अमृतके अंगीकार करनेकौ विषवृक्षनिकौ हनैहै, ताडैहै; तहाँ अमृत काहेका ॥ ४३ ॥

मनसा वचसा वपुषा हिंसां विदधाति यो जनो मूढः।
जन्मवनेऽसौदीर्वे दीर्घं चंचूर्यते दुःखी ॥ ४४ ॥

अर्थ—जो मूढ जन मन करि वचनकरि कायकरि हिंसा करैहै सो यह दुःखी भया संता दीर्घ संसार वनविषै बहुत काल तांई अतिशय करि चूर्ण कीजिए है ॥ ४४ ॥

इहां तांई अहिंसा अणुव्रतका वर्णन किया आगै सत्य अणुव्रतका वर्णन करैहै;—

यन्म्लेच्छेष्वपि गर्ह्यं यदनादेयं जिघृक्षतां धर्मम्।
यदनिष्टं साधुजनैस्तद्वचनं नोच्यते सद्भिः ॥ ४५ ॥

अर्थ—जो वचन म्लेच्छनिविषै भी निंदनीक अर धर्मकौ ग्रहण करनेके वांछक जे पुरुष तिनके अनादरने योग्य अर साधुजननि करि इष्ट नाही ऐसा जो असत्यवचन सो संतजननि करि नाही बोलिए है ॥ ४५ ॥

कामक्रोधक्रीडाप्रमादमदलोभमोहविद्वेषैः।
वचनमसत्यं संतो निगदंति न धर्मरतचित्ताः ॥ ४६ ॥

अर्थ—धर्मविषै रतहै चित्त जिनके ऐसे संतजनहै ते कामक्रोध क्रीडा प्रमाद लोभ मोह द्वेष इन भावनि करि असत्य वचनकौ न बोलै है ॥ ४६ ॥

सत्यमपि विमोक्तव्यं परपीडारंभतापभयजनकम्।
पापं विमोक्तुकामैः सुजनैरिव पापिनां वृत्तम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—पाप छोडनेकी है वांछा जिनके ऐसे पुरुषनि करि पर जीवनके पीडा आरंभ संताप भय इनका उपजावनेवाला सत्यवचन भी त्यागना योग्य है ॥ ४७ ॥

भाषंते नासत्यं चतुः प्रकारमपि संसृतिविभीतः।
विश्वासधर्मदहनं विषादजननं बुधावमतम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—संसारतै भयभीत पुरुषहै ते असदुद्भावन, भूतनिह्नव, विपरीत निंद्य ऐसे चारचूं ही प्रकार असत्यकौ न बोलैहै, कैसा असत्य वचन विश्वास प्रतीतिरूप धर्मकौ जलावनेवाला अर विषाद उपजानेवाला अर पंडितनिकरि करीहै अवज्ञाजाकी ऐसा है ॥ ४८ ॥

प्रथम असदुद्भावन असत्यकौ कहैहै;—

असदुद्भावनमाद्यं वचनमसत्यं निगद्यते सद्भिः।
एकांतिकाः समस्त भावा जगतीति तत् ज्ञेयम् ॥ ४९ ॥

अर्थ—जगतविषै सकल पदार्थ है ते एकांतस्वरूपहै ऐसै असत् कहिये अविद्यमानका उद्भावन कहिए प्रकट करना सो, संतन करि प्रथम असत्यवचन जानना योग्यहै ॥ ४९ ॥

आगै भूतनिह्नवकौ कहैहै;—

सदलपनं द्वितीयं वितथं कथयंति तथ्यविज्ञानाः।
सृष्टिस्थितिलययुक्तं किंचिन्नास्तीति तदभिहितम् ॥ ५० ॥

अर्थ—उत्पाद स्थिति नाशसहित किछू भी नाहीहै ऐसा कहना सो सदलपन कहिए भूतनिह्नव विद्यमान वस्तुका अभाव कहना ताहि सांचाहै ज्ञान तिनका ऐसे पंडितहै ते दूसरा असत्य कहैहै ॥ ५० ॥

आगै विपरीत असत्यकौ कहैहै;—

विपरीतमिदं ज्ञेयं तृतीयकं यद्वदंति विपरीतम् ।
सग्रंथं निर्ग्रन्थं निर्ग्रन्थमपीह सग्रन्थम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—परिग्रहसहित है सो तो निर्ग्रंथहै, अर परिग्रहरहित है सो भी इहां सग्रंथहै ऐसा जो विपरीत उलटा बोलैहै सो यहु तीसरा असत्य विपरीत जानना ॥ ५१ ॥

आगै निंद्यनामा असत्यकौ कहैहै;—

सावद्याप्रियगर्ह्यप्रभेदतो निंद्यमुच्यते त्रेधा ।
वचनं वितथं दक्षैर्जन्माब्धिनिपातने कुशलम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—पंडितनि करि सावद्य अर अप्रिय अर गर्ह्य इन भेदनि करि निंद्यवचन तीन प्रकार कहिएहै, कैसाहै यह असत्यवचन संसार-समुद्रविषै पटकनेमै प्रवीणहै ॥ ५२ ॥

आगै निंद्यवचनके तीन भेदनिमै प्रथम सावद्यवचनकौं कहैहै;—

आरंभाः सावद्या विचित्रभेदा यतः प्रवर्तन्ते ।
सावद्यमिदं ज्ञेयं वचनं सावद्यवित्रस्तैः ॥ ५३ ॥

अर्थ—जातै नानाप्रकारहै भेद जिनके ऐसे पापसहित आरंभ प्रवर्तैहै सो यह सावद्य वचनहै सो सावद्यतै भयभीत पुरुषनिकरि जानना योग्यहै ॥ ५३ ॥

आगै अप्रिय वचनकौ कहै हैं;—

कर्कशनिष्ठुरभेदनविरोधनादिबहुभेदसंयुक्तम् ।
अप्रियवचनं प्रोक्तं प्रियवाक्यप्रवणवाणीकैः ॥ ५४ ॥

अर्थ—प्रिय बोलनेमै चतुर है वाणी जिनकी ऐसे पुरुषनि करि कर्कश कहिए कठोरवचन बहुरि निठुरवचन बहुरि औरनमैं भेद करि देय ऐसा वचन बहुरि परस्पर विरोध उपजाय देय ऐसा वचन इत्यादि अनेक भेदन करि संयुक्त अप्रिय वचन कह्या है ॥ ५४ ॥

आगै गर्ह्य वचनकौ कहै हैं;—

हिंसनताडनभीषणसर्वस्वहरणपुरः सरविशेषम् ।
गर्ह्यवचो भाषंते गर्ह्योज्झितवचनमार्गज्ञाः ॥ ५५ ॥

अर्थ—हिंसारूप ताडनारूप भयानक सर्वद्रव्यहरण स्वरूप इत्यादिक है भेद जाके ऐसा जो निद्यवचन ताहि निद्यपना करि रहित वचनके मार्ग जाननेवाले है ते गर्ह्य वचन कहै है ॥ ५५ ॥

अर्थ्यं पथ्यं तथ्यं श्रव्यं मधुरं हितं वचो वाच्यम् ।
विपरीतं मोक्तव्यं जिनवचनविचारकैर्नित्यम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—जिनेंद्रके वचनके विचार करनेवाले पुरुष हैं तिन करि नित्यही प्रयोजनरूप सुखकारी जैसाका तैसा सुनने योग्य मधुर हितरूप ऐसा वचन कहना योग्य है, अर इनतैं विपरीत उलटा वचन है सो त्यागने योग्य है ॥ ५६ ॥

वैरायासाप्रत्ययविषादकोपादयो महादोषाः ।
जन्यंतेऽनृतवचसा कुभोजनेनैव रोगगणाः ॥ ५७ ॥

अर्थ—जैसै खोटे भोजन करि निश्चयतै रोग उपजै है तैसैं असत्य वचन करि वैरभाव श्रम अप्रतीति विषाद क्रोध इत्यादि महादोष हैं ते उपजै है ॥ ५७ ॥

वचसावृतेन जंतोर्व्रतानि सर्वाणि झटिति नाश्यंते ।
विपुलफलवंति महता दवानलेनेव विपिनानि ॥ ५८ ॥

अर्थ—जैसै महान दावानल करि वडे फलनि करि सहित जे वन है ते नाश कीजिए है तैसै असत्य वन करि जीवके सर्व व्रत है ते शीघ्र नाश कीजिए है ॥ ५८ ॥

इहां तांई असत्य त्याग अणुव्रतका वर्णन किया आगै अचौर्य व्रतका वर्णन करै है;—

क्षेत्रे ग्रामेऽरण्ये रथ्यायां पथि गृहे खले घोपे।
ग्राह्यं न परद्रव्यं नष्टं भ्रष्टं स्थितं वाऽपि ॥ ५९ ॥

अर्थ—खेतविषै ग्रामविषै वनविषै गलीविषै मार्गविषै घरविषै घूरेविषैं गायनके समूहविषैं दूसरेका द्रव्य पड़ा होय वा भूला होय वा धरया होय सो भी ग्रहण करना योग्य नाहीं ॥ ५९ ॥

तृणमात्रमपि द्रव्य परकीयं धर्मकांक्षिणा पुंसा।
अवितीर्ण नाऽऽदेयं वह्निसमं मन्यमानेन ॥ ६० ॥

अर्थ—धर्मका वांछक जो पुरुप ता करि विना दिया पराया द्रव्य अग्नि समान मान ता करि तृणमात्र भी ग्रहण करणा योग्य नाही ॥ ६० ॥

यो यस्य हरति वित्तं स तस्य जीवस्य जीवितं हरति।
आश्वासकरं बाह्यं जीवानां जीवितं वित्तम् ॥ ६१ ॥

अर्थ—जो जाका धन हरै सो ताका प्राण हरै है जातै जीवनके थिरता वधावनेवाला धन है सो वाह्य प्राण है ॥ ६१ ॥

सदृशं पश्यंति बुधाः परकीयं कांचनं तृणं वाऽपि।
संतुष्टा निजवित्तैः परतापविभीरवो नित्यम् ॥ ६२ ॥

अर्थ—पडित है ते पराये सुवर्णकौ वा तृणकौ समान देखे है, कैसे है ते अपने धननि करि संतुष्ट अर परकौ संताप उपजावनेमैं भयभीत है ॥ ६२ ॥

तैलिकलुब्धकखट्टिकमार्जारव्याघ्रधीवरादिभ्यः ।
स्तेनः कथितः पापी संततपरतापदानरतः ॥ ६३ ॥

अर्थ—तेली वहेलिया खटीक विलाव वाघ ढीमर इन तै चौर है सो अधिक पापी कह्या है, चौर निरंतर परजीवनकौ दुःख देनेमैं तत्पर है ॥ ६३ ॥

एसै अचौर्य अणुव्रतका वर्णन किया । आगैं परदारा त्याग अणुव्रतकौं कहै हैं;—

स्वसृमातृदुहितृसदृशीः दृष्ट्वा परकामिनीः पटीयांसः ।
दूरं विवर्जयंते भुजगीमिव घोरदृष्टिविषाम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—पंडित है ते परकी स्त्रीकौ वहनिसमान अर वडीकौ माता समान अर छोटीकौ वेटी समान देख करि भयानक दृष्टिविषै सर्वणीकी ज्यौं दूर त्यागै हैं ॥ ६४ ॥

न निषेव्या परनारी मदनानलतापितैरपि त्रेधा ।
क्षुत्क्षामैरपि पुरुषैर्न भक्षणीयं परोत्सृष्टम् ॥ ६५ ॥

अर्थ—काम अग्नि करि तप्तायमान जीवनि करि भी मन वचन काय करि परस्त्री सेवना योग्य नाहीं, जैसै क्षुधाकरि दुर्बल चतुर पुरुषनिकरि भी पराई औठ खाना योग्य नाहीं तैसैं ॥ ६५ ॥

विषवल्लीमिव हित्वा पररामां सर्वथा त्रिधा दूरम् ।
संतोषः कर्त्तव्यः स्वकलत्रेणैव बुद्धिमता ॥ ६६ ॥

अर्थ—परस्त्रीकौ विषवेलकी ज्यौं सर्वथा मन वचनकायकरि दूर त्यागकै बुद्धिमान पुरुषकरि अपनी स्त्रीकरि ही संतोष करणा योग्यहै ॥ ६६ ॥

नाशक्त्या सेवंते भार्यां स्वमपि मनोभवाकुलिताः ।
वन्हिशिखाप्याशक्त्या शीतार्तैः सेविता दहति ॥ ६७ ॥

अर्थ—कामकरि व्याकुल भए संतैं आशक्ति जो गृद्ध्रता करि अपनी भार्याकौं भी न सेवेहै जैसै शीतकरि पीडित पुरुपनि करि भी आशक्ति कर सेई भई अग्निकी शिखाहै सो कहा न दहैहै, दहैहीहै ॥ ६७ ॥

दृष्टा स्पृष्टा श्लिष्टा दृष्टिविषा याऽहिमूर्त्तिरिव हंति।
तां पररामां भव्यो मनसापि न सेवते जातु ॥ ६८ ॥

अर्थ—ज्यो परस्त्री देखी वा स्पर्शी वा आलिगी संती दृष्टिविष सर्पकी मूर्तिकी ज्यो हनैहै तिस परस्त्रीकौं भव्यजीव हैं सो मनकरि भी कदाच न सेवेहै ॥ ६८ ॥

दीप्ताकारा तप्ता स्पृष्टा दहति पावकशिखेव।
मारयति योपभुक्ता प्ररूढविपविटपिशाखेव ॥ ६९ ॥

अर्थ—जो परस्त्री दीप्त है आकार जाका अर तप्तायमान सो स्पर्शी भई अग्निकी शिखाकी ज्यो दहैहै, अर जो भोगी भई फैलरही विप-वृक्षकी शाखाकी ज्यो मारैहै ॥ ६९ ॥

मोहयति झटिति चित्तं निपेव्यमाना सुरेव या नितरां।
या गलमालिंगंती निपीडयति गंडमालेव ॥ ७० ॥

अर्थ— जो परस्त्री सेई भई मदिराकी ज्यौ अतिशयकरि जलदी चित्तकौं मोहहै। बहुरि जो गलेकौं आलिंगन करती लिपटी गंडमाला नाम रोगकी ज्यो पीडा उपजावैहै ॥ ७० ॥

व्याघ्रीव याऽऽमिपाशा विलोक्यरभसा जनं विनाशयति।
पुरुपार्थपरैः सद्भिः परयोपा सा त्रिधा त्याज्या ॥ ७१ ॥

अर्थ—जो परस्त्री मांसभखनी व्याघ्रीकी ज्यो पुरुपकौ देख करि जबरदस्ती विनाश करैहै सो परस्त्री पुरुपार्थमै तत्पर जे संत पुरुप तिनकरि मन वचन कायतै त्यागनी योग्यहै ॥ ७१ ॥

मलिनयति कुलद्वितयं दीपशिखेवोज्ज्वलापि मलजननी।
पापोपयुज्यमाना परवनिता तापने निपुणा ॥ ७२ ॥

अर्थ—जो परस्त्री दीपकी लोयसमान उज्ज्वलभी मैलकी उपजावनेवाली है, वह कज्जल उपजावैहै यह रागद्वेश उपजावैहै बहुरि पापिनी उपयुज्यमाना कहिए संयोगकौं प्राप्त करी संती संताप करनेविषैं प्रवीणहै ॥ ७२ ॥

ऐसै परस्त्रीत्याग अणुव्रतका वर्णन किया। आगै परिग्रहप्रमाण नामा अणुव्रतकौ कहैहैं,—

वास्तु क्षेत्रं धनं धान्यं दासीदासंचतुष्पदं भांडं ।
परिमेयं कर्त्तव्यं सर्वं संतोषकुशलेन ॥ ७३ ॥

अर्थ—संतोषविषै प्रवीण जो पुरुष ताकरि वास्तु कहिए हाट हवेली क्षेत्र कहिए खेतीका क्षेत्र धन कहिए सुवर्ण रूपादिक धान्य कहिए चावल गेहूं आदिक बहुरि दासी दास आदि द्विपद अर चतुष्पद कहिये घोडा गौ इत्यादिक भांड कहिए बासन वस्त्रादिक इन सवका परिमाण करना योग्यहै।

भावार्थ—जीवकै तीन लोकके पदार्थनकी तृष्णा है सो सब छूटती न जानि तृष्णा घटनेकौ पदार्थनिका परिमाण करायाहै ॥ ७३ ॥

विध्यापयति महात्मा लोभं दावाग्निसन्निभं ज्वलितम् ।
भुवनं तापयमानं संतोषोद्गाढसलिलेन ॥ ७४ ॥

अर्थ—महापुरूष है सो दावानलसमान चलता जो लोभताहि संतोषरूप महाजल करि वुझावैहै कैसा है लोभ जैसे अग्नि लोककौं संताप उपजावैहै ऐसाहै ॥ ७४ ॥

सर्वारंभा लोके संपद्यंते परिग्रहनिमित्ताः ।
स्वल्पयते यः संगं स्वल्पयति सः सर्वमारंभम् ॥ ७५ ॥

अर्थ—लोकविषैं सर्व हिंसादिक आरंभहै ते परिग्रहके निमित्त होयहै अथवा परिग्रहतै होयहै इस कारणतै जो परिहग्रकौ घटावैहै सो सर्व आरंभकौ घटावैहै ॥ ७५ ॥

ऐसैं परिग्रहपरिमाण अणुव्रतका वर्णन किया । आगै दिग्विरतिनाम गुणव्रतकौ कहैहैं;—

ककुबष्टकेऽपि कृत्वा मर्यादां यो न लंघयति धन्यः ।
दिग्विरतिस्तस्य जिनैर्गुणव्रतं कथ्यते प्रथमम् ॥ ७६ ॥

अर्थ—जो धन्य पुरुष दिशानके अष्टकविषै मर्यादाकौ करिकै नाहीं उलंघै है ताकै जिनदेवनि करि दिग्विरतिनामा गुणाव्रत कहिए है । पूर्वादि आठौ दिशा तथा उपलक्षणतै नीचै ऊपर ऐसैं दशौं दिशानके प्रसिद्ध नदी पर्वतादिकनतैं जो मर्यादा करनाके इसतैं परे मैं गमनादि नाहीं करूंगा सो प्रथम दिग्विरतिनामा गृणव्रत जानना ॥ ७६ ॥

सर्वारंभनिवृत्तेस्ततः परं तस्य जायते पूतम् ।
पापापायपटीयः सुखकारि महाव्रतं पूर्णम् ॥ ७७ ॥

अर्थ—तिस दिग्विरतिधारी पुरुषकै तिस मर्यादतै परै सर्व आरंभकी निवृत्ति कहिए त्याग तातै सुखकारी अर पापके नाश करणेमै प्रवीण ऐसा पूर्ण महाव्रत होय है ॥ ७७ ॥

आगैं देशविरतिकौ कहै हैं;—

देशावधिमपि कृत्वा यो नाक्रामति सदा पुनस्त्रेधा ।
देशविरतिर्द्वितीयं गुणव्रतं तस्य जायेत ॥ ७८ ॥

अर्थ—वहुरि देशकी मर्यादा कौ भी करकै जो फेर मन वचन काय करि नाहीं उलंघै है ताकै देशविरतिनामा दूसरा गुणव्रत होय है ।

भावार्थ—तिस करी भई दिशानिकी मर्यादाविषैं भी ग्राम दुकान घर बगीचा गली इत्यादिक निकालके नियमरूप मर्यादा करणी सो देशव्रत जानना ॥ ७८ ॥

काष्ठेनैव हुताशं लाभेन विवर्द्धमानमतिमात्रम् ।
प्रति दिवसं यो लोभं निषेधयति तस्य कः सदृशः॥७९॥

अर्थ—जैसै काष्ठकरि अग्नि सिवाय सिवाय बढता होय तैसैं पदार्थनके लाभ करि तृष्ण बढती होय है। बहुरि जो प्रतिदिन लोभकौ त्यागैहै ताके समान और कहा है ॥ ७९ ॥

आगैं अनर्थदंडविरतिनामा गुणव्रतकौ कहै है;—

योऽनर्थं पंचविधं परिहरति विवृद्धशुद्धधर्ममतिः ।
सोऽनर्थदंडविरतिं गुणव्रतं नयति परिपूर्त्तिम् ॥ ८० ॥

अर्थ—विशेपपनें बढती है शुद्ध धर्म विषै बुद्धि जाकी ऐसा जो पुरुष पांच प्रकार अनर्थकौ त्यागैहै सो अनर्थ दंड विरति नाम गुणव्रतकौ पूर्णताकौ प्राप्त करै है ॥ ८० ॥

आगै पांच अनर्थ पापके नाम कहै है;—

पंचानर्था दुष्टाध्यानं पापोपदेशनाशक्तिः ।
हिंसोपकारि दानं प्रमादचरणं श्रुतिर्दुष्टा ॥ ८१ ॥

अर्थ—दुष्ट ध्यान कहिए शिकार तथा काहूकी जीत काहूकी हार तथा संग्राम तथा परस्त्रीगमन तथा चौरी इत्यादिकका चितवन करना। बहुरि चित्रामादिक विद्या अर व्यापार लिखना खेती करना चाकरी करना इत्यादी हिसादिक आरंभके उपदेश विषै आशक्तिता सो पापोपदेशनाशक्ति कहिए छुरी विष अग्नि तरवार धनुप इत्यादि हिसाके उपकरण देना सो हिसोपकरणदान कहिए। बहुरि पृथ्वी खोदना वृक्ष मोडना घास काटना जल सींचना इत्यादि प्रमादचरण कहिए।

रागादि वढावनेवाली खोटी कथा सुणनी इत्यादि दुष्ट श्रुति कहिए। ऐसै पांच अनर्थ पापका त्याग करना सो अनर्थदंडविरति जानना।८१।

बहुरि ताहीके विशेष कहैहैं;—

मंडलविडालकुक्कुटमयूरशुकसारिकादयो जीवाः।
हितकामैर्न ग्राह्याः सर्वे पापोपकारपराः॥ ८२॥

अर्थ—हितके वांछक जे पुरुष तिनकरि कुत्ता विलाव मुर्गा और सुवा सारी इत्यादिक सर्व पापके करावने विषै तत्पर जीवहै ते ग्रहण करना योग्य नाहीं॥ ८२॥

लोहं लाक्षा नीली कुसुंभ मदनं विषं शणः शस्त्रम्।
संधानकं च पुष्पं सर्व करुणापरैर्हेयम्॥ ८३॥

अर्थ—दयामे तत्पर जे पुरुष तिनकरि लोहे लाख नील कुसुंभ विष सण शस्त्र संधारना पुष्प सर्व त्यागना योग्यहै॥ ८३॥

नीली सूरणकंदो दिवसद्वितयोषिते च दधिमथिते।
विद्धं पुष्पितमन्नं कालिंगं द्रोणपुष्पिका त्याज्या॥८४॥

अर्थ—नील अर सूरण अर कंद अर दोय दिनके वासे दही अर छाछ बहुरि वीधा अर फूलसहित टपकी लग्या अन्न अर कलींदा अर राई ये त्यागना योग्यहै॥ ८४॥

ऐसै अनर्थदंडविरतिका वर्णन किया। आगै सामायिक व्रतकौं कहैहैं;—

आहारो निःशेषो निजस्वभावादन्यभावमुपयातः।
योऽनंतकायिकोऽसौ परिहर्त्तव्यो दयालीढैः॥ ८५॥

अर्थ—जो समस्त आहार अपने स्वभावतै अन्यभावको प्राप्त भया चलितरस भया बहुरि जो अनंतकायसहित है सो यहु दयासहित पुरुषनिकरि त्यागना योग्यहै॥ ८५॥

त्यक्तार्त्तरौद्रयोगो भक्त्या विदधाति निर्मलध्यानः।
सामायिकं महात्मा सायायिक संयतो जीवः॥ ८६॥

अर्थ—त्यागे है आर्त्त रौद्र ध्यान जानै अर निर्मल है ध्यान जाकै ऐसा महात्मा रागद्वेषके त्याग तै भले प्रकार यत्नसहित जीवै है सो सामायिककौ धारै है।

भावार्थ—रागद्वेषके त्यागतै आत्मविषै "सं" कहिए एकरूप होय करि "अयनं" कहिए परिणामना सो समय है, अर समयका जो भाव सामायिक कहिए सो ऐसे सामायिकके काल समस्त सावद्य योगके त्याग तै श्रावककौं भी उपचारतै महाव्रती कह्या है इतना यह विशेष जानना॥ ८६॥

कालत्रितये त्रेधा कर्तव्या देवबंदना सद्भिः।
त्यक्ता सर्वारंभं भवमरणविभीतचेतस्कैः॥ ८७॥

अर्थ—जन्ममरणतै भय भीत हैं चित्त जिनके ऐसे सत्पुरुषनि करि प्रभात अर मध्याह्न अर अपराह्न इन तीनो काल विषै मन वचन काय करि अरहंतादि देवनिकी वंदना करनी योग्य है॥ ८७॥

आगैं प्रोपधोपवासकौं कहै है;—

सदनारंभनिवृत्तैराहारचतुष्टयं सदा हित्वा।
पर्वचतुष्के स्थेयं संयमयमसाधनोद्युक्तैः॥ ८८॥

अर्थ—गृहके आरंभतै रहित अर यावज्जीव त्यागरूप संयम अर थोड़ेकाल त्यागरूप यम इनविषै उद्यमी पुरुषनि करि पर्वचतुष्क कहिए एक मास मै दोय अष्टमी दोय चतुर्दशी इनविषै आहारचतुष्टय कहिए खाद्य स्वाद्य असन (लेह्य) पेय इनकौं त्यागकरि सदा तिष्ठना योग्य है।

भावार्थ—गृहारंभ त्यागकै अर आहार त्यागकै संयमरूप पर्वतविषै सदा तिष्ठना सो प्रोषधोपवासव्रत जानना ॥ ८८ ॥

तांबूलगंधमाल्यास्नानाभ्यंगादिसर्वसंस्कारम् ।
ब्रह्मव्रतगतचित्तैः स्थातव्यमुपोषितैस्त्यक्ता ॥ ८९ ॥

अर्थ—तांबूल माला स्नान उवटना इत्यादि सर्व संस्कारकौ त्यागकरि ब्रह्मचर्यविषै प्राप्त हुवा है चित्त जिनका ऐसे पोसहसहित पुरुषनि करि तिष्ठना योग्य है ॥ ८९ ॥

उपवासानुपवासैकस्थानेष्वेकमपि विधत्ते यः ।
शक्त्यनुसारपरोऽसौ प्रोषधकारी जिनैरुक्तः ॥ ९० ॥

अर्थ—उपवास अर अनुपवास अर एकस्थान विषै एककौ भी जो शक्ति अनुसार धारै है सो यहु पोसह करनेवाला जिनदेवनि करि कह्या है ॥ ९० ॥

उपवासं जिननाथा निगदंति चतुर्विधाशन त्यागम् ।
सजलमनुपवासमभी एकस्थानं सकृद्भुक्तिम् ॥ ९१ ॥

अर्थ—च्यार प्रकार आहारका जो त्याग ताहि ये जिननाथ उपवास कहै है अर जलसहितकौ अनुपवास कहै है अर एकवार भोजनकौ एकस्थान कहै है ।

भावार्थ—इहां जलमात्र लेय ताकौ अनुपवास कह्या सो उपवासका अभाव रूप अर्थ न लेना किंचित् उपावास है ऐसा अर्थ ग्रहण करना ॥ ९१ ॥

आगै भोगोपभोगपरिमाण व्रतकौ कहै हैं;—

भोगोपभोगसंख्या विधीयते येन शक्तितो भक्त्या ।
भोगोपभोगसंख्या शिक्षाव्रतमुच्यते सद्भिः ९२ ॥

अर्थ—जा करि शक्तिसारूं भोग अर उपभोगकी संख्या करिए है सो भोगोपभोगसंख्या नामा शिक्षाव्रत संतन करि कहिए है ॥ ९२ ॥

आगै भोगोपभोगका स्वरूप कहै है.—

तांबूलगंधलेपनमज्जनभोजनपुरोगमो भोगः ।
उपभोगो भूषा स्त्रीशयनासनवस्त्रवाहाद्याः ॥ ९३ ॥

अर्थ—तांबूल सुगंधलेपन स्नान भोजन इत्यादिकतो भोग हैं अर भूषण स्त्री शयन आसन वस्त्र वाहन इत्यादिक उपभोग हैं। एकवार भोजनमे आवै सो भोग अर वार वार भोगनेमें आवै सो उपभोग ऐसैं जानना ॥ ९३ ॥

आगै अतिथिसंविभाग व्रतकौ है;—

परिकल्प्य संविभागं स्वनिमित्तकृताशनौषधादीनाम् ।
भोक्तव्यं सागारैरतिथिव्रतपालिभिर्नित्यम् ॥ ९४ ॥

अर्थ—अतिथि व्रतके पालनेवाले श्रावकनि करि अपने अर्थ करे जे भोजन औषधादिक तिनका भले प्रकार विभाग करिकै पात्रकौ देकै भोजन करना योग्य है ॥ ९४ ॥

अतति स्वयमेव गृहं संयममविराधयन्ननाहूतः ।
यःसोऽतिथिरुद्दिष्टः शब्दार्थविचक्षणैः पुरुषैः ॥ ९५ ॥

अर्थ—शब्दार्थ विषै विचक्षण जे पुरुष तिन करि सो साधु अतिथि कह्या है, सो कौन ? जो संमयकौ नांही विराधता संता विना बुलाया स्वयमेव गृहिप्रति अतति कहिए गमन करै है, आवै है ॥९५॥

अशनं पेयं स्वाद्यं खाद्यमिति निगद्यते चतुर्भेदम् ।
अशनमतिथेर्विधेयो निजशक्त्या संविभागोऽस्य ॥ ९६ ॥

अर्थ—अशन पेय स्वाद्य खाद्य ऐसे च्यार प्रकार आहार कहिए ताका विभाग कहिए वांटा अपनी शक्ति सारू इस अतिथि पात्रकू करणा योग्य है।

भावार्थ—अपने अर्थ किया आहार तामैसै पात्रकै आर्थे शक्ति-माफिक देना योग्य है ॥ ९६ ॥

मुद्गौदनाद्यमशनं क्षीरजलाद्यं जिनैः पेयम्।
तांवूलदाडिमाद्यं स्वाद्यं खाद्यं च पूपाद्यम् ॥ ९७ ॥

अर्थ—मूंग भात इत्यादि अशन कहिए अर दूध जल आदिककौ जिनदेवनै पेय कह्या है अर तांवूल दाडिमादिकौ खाद्य कहा है अर पूवा आदिकौ खाद्य कह्या है ऐसा जानना ॥ ९७ ॥

आगै सल्लेखनाका वर्णन करै है;—

ज्ञात्वा मरणागमनं तत्त्वमतिर्दुर्निवारमति गहनम्।
पृष्ट्वा वांधव वर्ग करोति सल्लेखनां धीरः ॥ ९८ ॥

अर्थ—दुर्निवार अर अतिगहन कहिए भयानक ऐसा जो मरनका आगमन ताहि जाति करि निश्चयरूप है मति जाकी ऐसा धीर पुरुप है सो वाधवनके समूहकौ पूछ कै मोह छुडायकै आगम प्रमाण सल्लेखनाविधिकौ श्रावक मांडै है, ऐसा जानना ॥ ९८ ॥

आराधनां भगवतीं हृदये विधत्ते
सज्ञानदर्शनचरित्रतपोमयीं यः।
निर्धूतकर्ममलपंकमसौ महात्मा
शर्मोदकं शिवसरोवरमेति हंसः ॥ ९९ ॥

अर्थ—जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तपमयी जो आराधना भगवती ताहि हृदयविपै धारै है सो यह्व महात्मा हंस मोक्षसरोवरकौं

प्राप्त होय है, कैसा है मोक्षसरोवर नाश भया है कर्ममल रूप कीच जाका अर सुखरूप है जल जा विषैं ऐसा है ।

भावार्थ—जो सन्यास मरन करै है सो थोडेही कालमै मोक्षकौं प्राप्त होय है, ऐसा नियम जानना ॥ ९९ ॥

आगै अधिकारकौ संकोचै है;—

जिनेश्वरनिवेदितं मननदर्शनालंकृतं
द्विषड्विधमिद व्रतं विपुलबुद्धिभिर्धारितम् ।
विधाय नरखेचरत्रिदशसंपदं पावनीं
ददाति मुनिपुंगवामितगतिस्तुतां निर्वृतिम् ॥ १०० ॥

अर्थ—जिनेश्वर देवनैं कह्या अर ज्ञानदर्शन करि शोभित अर महाबुद्धीनकरि धरया ऐसा यह द्वादश प्रकार व्रतहै सो मनुष्य विद्याधर देव इनकी पवित्र संपदाकौ प्राप्त कराकै निर्वाण अवस्थाकौ देयहै कैसीहै निर्वाण अवस्था अप्रमाणहै महिमा जिनकी ऐसे मुनिनविषैं श्रेष्ठ मुनि तिनकरि स्तुतिगोचर करीहै ।

भावार्थ—मुनीन्द्र जाकी स्तुति करैहै ऐसी मुक्तिकौ प्राप्त करैहैं ॥ १०० ॥

सवैया तेईसा ।

पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत शिक्षाव्रत पुनि निर्मल च्यार ।
सम्यग्दर्शन ज्ञानसहित जो धारै तीव्र प्रमाद निवार ॥
नर विद्याधर अमर संपदा अद्भुत भोगि भोग जगसार ।
लहै अमितगति सुखमय शिवपद वंदूं चरण तास अविकार ॥

इति श्रीमदमितगत्याचार्यकृते श्रावकाचारे षष्ठ परिच्छेदः ।

ऐसैं श्री अमितगति आचार्यविरचित श्रावकाचारविषैं षष्ठ (छठा) परिच्छेद समाप्त भया ।

अथ सप्तम परिच्छेदः ।

आगै व्रतनिकी महिमा दिखावैहैं;—

व्रतानि पुण्याय भवंति जंतो-
र्न साति चाराणि निषेवितानि ।
सस्यानि किं क्वापि फलंति लोके
मलोपलीढानि कदाचनापि ॥ १ ॥

अर्थ—जीवकै अतीचारसहित सेये भए व्रतहै ते पुण्यके अर्थ होय है, इहा दृष्टांत कहैहै जैसै विना नीदे कूडासहित मलसहित लोकविषै सस्य है ते कहां कहूं भी कदाचित भी फलैहै ? अपि तु नाही फलैहै ॥ १ ॥

मत्वेति सद्भिः परिवर्जनीयाः
व्रते व्रते ते खलु पंच पंच ।
उपेयनिष्पत्तिमपेक्षमाणा
भवंत्युपाये सुधियः सयत्नाः ॥ २ ॥

अर्थ—ऐसी मान करि पंडितनि करि व्रत व्रत विषै ते पाच पांच अतीचार त्यागने योग्य है, जातै उपेय कहिए जाके अर्थ उपाय करिए ऐसा कार्य ताकी उत्पत्तीकौ वांछते पंडित है ते उपाय जो ताका कारण ताविषै यत्न सहित होयहै ।

भावार्थ—व्रततौ उपेय है अर अतीचार त्याग उपाय है जो व्रत-नकौ वांछै है तो अतीचारत्याग करहु, ऐसा उपदेश जानना ॥ २ ॥

आगैं अहिंसाव्रतके अतीचार कहैहैं;—

भारातिमात्रव्यपरोपघात-
छेदान्नपानप्रतिषेधबंधाः ।
अणुव्रतस्य प्रथमस्य दक्षैः
पंचापराधाः प्रतिषेधनीयाः ॥ ३ ॥

अर्थ—भारका प्रमाणतैं उलंघकरि धरना, अर घात कहिए पीडा का कारण लाठी वेत आदितैं मारना इहां प्राणके नाशरूप घातका अर्थ नहीं ग्रहण करणा जातैं वह तो अनाचारस्वरूपही है, वहुरि छेद कहिए कान नासिकादिक अंगनिका छेदना, वहुरि अन्नजलका रोकना, अर वंध कहिए वांछित स्थानकौं न जाने देना रस्सादिक तैं वांधना सो वंध कहिए । ये प्रथम अणुव्रतके पांच अतीचार पंडितनि करि त्यागना योग्यहै ॥ ३ ॥

आगैं सत्य अणुव्रत अतीचार कहै है—

न्यासापहारः परमंत्रभेदो
मिथ्योपदेशः परकूटलेखः ।
प्रकाशना गुह्यविचेष्टितानां
पंचातिचाराः कथिता द्वितीये ॥ ४ ॥

अर्थ—न्यासापहार कहिए कोजनै द्रव्य सौंप्या था ताकूं वह भूलकै थोडा मागै तव कहै इतनाही है, वहुरि पर मंत्रभेद कहिए अंगविकारादिकतैं परके अभिप्रायकौं जानिईर्षातैं ताका प्रकाशना, वहुरि स्वर्ग मोक्षके कारण क्रियाविशेषनिमैं अन्यथा प्रवर्त्तावना सो मिथ्यापदेश कहिए, वहुरि दूसरेके कहनेतैं ठगनेके अर्थ झूंठ लिखना सो कूटलेखक्रिया है, वहुरि स्त्रीपुरुषादिकके गुप्त चरित्रका प्रकाश करना सो

रहोभ्याख्यान कहिए । ये पांच अतीचार दूसरे सत्य अणुव्रतविषै कहेहै ॥ ४ ॥

आगै अचार्य अणुव्रतके अतीचार कहैहै;—

व्यवहारः कृत्रिमकः स्तेननियोगस्तदाहृतादानम् ।
ते मानवैपरीत्यं विरुद्धराज्यव्यतिक्रमणम् ॥ ५ ॥

अर्थ—झूंठे सुवर्णादि वनावना सो कृत्रिमव्यवहार कहिए, वहुरि चौरको चौरीमै लगावना सो स्तेन प्रयोग कहिए, वहुरि चोर करि ल्याए द्रव्यका ग्रहण करना सो तदाहृतादान कहिए वहुरि वडे मानतै लेना छोटे मानतै देना सो मानवैपरीत्य कहिए, वहुरि राजनियमका उल्लंघन करना महसूल आदि चोरना सो विरुद्ध राज्यातिक्रमण कहिए । ये तीसरे अणुव्रतके पांच अतीचार कहे ॥ ५ ॥

आगै परस्त्रीत्याग अणुव्रतके अतीचार कहैहैं;—

आत्तानुपात्तेत्वरिकांग संगा-
वनंगसंगो मदनातिसंगः ।
परोपयामस्य विधानमेते
पंचातिचारा गदिताश्चतुर्थे ॥ ६ ॥

अर्थ—परकरि ग्रहण करी वहुरि नाहीं ग्रहण करी ऐसी व्याभिचारिणी स्त्रीके अगका संग करणा तिनप्रति गमन करना, वहुरि अनंगसंग कहिए हस्तादिकतै क्रीडा करणा, वहुरि कामका तीव्र परिणाम, अर दूसरेका विवाह करावना । ये पांच अतीचार अणुव्रतके कहैहै ॥६॥

आगैं परिग्रह परिणाम अणुव्रतके अतीचार कहै है ।

क्षेत्रवास्तुधनधान्यहिरण्य-
स्वर्णकर्मकरकुप्यकसंख्याः ।

योऽतिलंघति परिग्रहलोभ-
स्तस्य पंचकमवाचि मलानाम् ॥ ७ ॥

अर्थ—क्षेत्र कहिए खेतीका स्थान वास्तु कहिए घर इन दोऊनका एकस्थान, अर हिरण्य कहिए सोना इनका एकस्थान, अर धन गौ आदि अर धान्य गेहूं आदि इनका एकस्थान अर, कर्मकर दासीदास, अर कुप्प कहिए वस्त्रादि इन पांचनकी संख्याकौ जो परिग्रहके लोभ-सहित उलंघैहै ताके आतीचारनिका पंचक कह्या ॥ ७ ॥

आगै दिग्विरतिके पांच अतीचार कहै है,—

स्मृत्यंतरपरिकल्पनमूर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमाः प्रोक्तः।
क्षेत्रविवृद्धिः प्राज्ञैरतिचाराः पंच दिग्विरतेः ॥ ८ ॥

अर्थ—जो योजनादिकका परिमाण करया था ताकूं भूल और सुरत करना, अर ऊपर नींचै तिरछा इन तीनूंनिका उलंघना कहिए पर्वतादिपै चढना कूपादिमै उतरना विलादिमै घुसना ऐसै तीन भए, बहुरि लोभके वशतै क्षेत्रकी वृद्धि वांछना। ये दिग्विरतिके पांच अतिचार पंडितनिनैं कहे है ॥ ९ ॥

आगै देशविरतिके अतीचार कहै है;—

आनयनयोज्ययोजनपुद्गलजल्पनशरीरसंज्ञाख्याः।
अपराधाः पंच मता देशव्रते गोचराः सद्भिः ॥९॥

अर्थ—मर्यादा वाहिर आनयन कहिए बुलावना, बहुरि मर्यादा बाहिर योज्य योजन कहिए प्रयोग, बहुरि मर्यादा बाहिर लोष्ठादिकतैं कार्य करावना सो पुद्गलक्षेप कहिए, अर मर्यादा बाहिर पुरुषतै वचन बोलना, अर मर्यादा बाहिर शरीरकी समस्यातै कार्य करावणा। ये पांच अतीचार देशव्रतसंबंधी संतननैं कहे है ॥ ९ ॥

आगे अनर्थ दंडविरातिके अतीचार कहै है;—

असमीक्षितकारित्वं प्राहुर्भोगोपभोगनैरर्थ्यम् ।
कंदर्पं कौत्कुच्यं मौखर्यमनर्थदंडस्य ॥ १० ॥

अर्थ—विना विचारे प्रयोजनतै अधिक करना, बहुरि भोग उपभोगनिका निःप्रयोजन सचयं करना, बहुरि तीव्ररागके उदयतैं हास्य मिल्या अयोग्य वचन कहना सो कंदर्प कहिए, बहुरि ते तीव्रराग अर अयोग्य वचन दोऊ पर विषै शरीरके कर्म करि युक्त होय सो कौत्कुच्छ कहिए, बहुरि ढीटपणा सहित असमीचीन बहुत प्रलाप करना सो मोखर्य कहिए । ये पांच अनर्थ दडविरतिके अतीचार है ॥ १० ॥

आगें सामायिकके अतीचार कहै है;—

योगा दुःप्रणिधाना स्मृत्यनुपस्थान मादराभावः ।
सामायिकस्य जैनैरतिचाराः पंच विज्ञेयाः ॥ ११ ॥

अर्थ—दुःप्रणिधान कहिए पापरूप अथवा अन्यथा योगरूप जे मन वचनकाय तीन तौ ये भये, बहुरि सुरत भूल जाना अर आदरका अभाव, ये पाच अतीचार सामायिकके जैनीन करि जानने योग्य है ॥ ११ ॥

आगें पोसहके अतीचार कहै है;—

ज्ञेया गतोपयोगा उत्सर्गादानसंस्तरकविधाः ।
उपवासे मुनिमुख्यैरनादरः स्मृत्यसमवस्था ॥ १२ ॥

अर्थ—गतोपयोग कहिए विना देखे वा विना प्रतिलेखन करे भूमिमैं मलमूत्र तजना वा अर्हतादिकनिकी पूजाके उपकरण गंधमाल्यादिक वा आपके औढना आदिके अर्थ वस्त्रादिक इनका ग्रहण करना बहुरि साथरा विछावना, तीन तौ ये भए बहुरि अनादर कहिए

आवश्यकनिमै उत्साहका अभाव अर पोसहकी सुरत भूल जाना, ए पांच अतीचार मुख्य आचार्यनिनै पोसह विषै कहे है ॥ १२ ॥

आगै भोगोपभोग विरतिके पांच अतीचार कहै है;—

सहचित्तं संबद्धं मिश्रं दुःखपक्रमभिषवाहारः ।
भोगोपभोगविरतेरतिचाराः पंच परिवर्ज्याः ॥ १३ ॥

अर्थ—सचित्तवस्तु तथा सचित्तवस्तु करि स्पर्शित वस्तु तथा सचित्त करि मिल्या वस्तु बहुरि दुःखतै पचै ऐसा वस्तु बहुरि काम बढावनेवाला वस्तुका आहार, ये भोगोपभोगविरतिके पांच अतीचार त्यागने योग्य है ॥ १३ ॥

आगै दानके अतीचार कहै है;—

मत्सरकालातिक्रमसचित्तनिक्षेपणा विधानानि ॥
दानेऽन्यव्यपदेशः परिहर्तव्या मलाः पंच ॥ १४ ॥

अर्थ—दानादि सै अनादर भाव सो मात्सर्य कहिए, बहुरि योग्य कालका उल्लंघन करना, बहुरि सचित्त कमलपत्रादि विषै भोजन धरना, बहुरि सचित्ततै ढाकना, बहुरि अन्य पै आज्ञा करि दिवावना, ये दानमै पांच अतीचार त्यागना योग्य है ॥ १५ ॥

आगै सल्लेखनाके अतीचार कहै है;—

जीवितमरणाशंसानिदानमित्रानुरागसुखशंसा ।
सन्यासे मलपंचकमिदमाहुर्विदितविज्ञेयाः ॥ १५ ॥

अर्थ—यह शरीर अवश्य अनित्य है सो यह कैसे रहै ऐसी अभिलाषा सो जीवितशंसा कहिए, बहुरि रोगके उपद्रव तै आकुलित-पणें करि मरण वांछना सो मरणशंसा कहिए, बहुरि परलोकमै भोगनिकी वांछा करना सो निदान, बहुरि पूर्वै मित्रनसूं क्रीडा करीथी ताका स्मरण करना सो मित्रानुराग कहिए, बहुरि पहले भोगे सुख-

निका चिंतवन करणा सो सुखशंसा कहिए। यह संन्यास विपै अतीचारनिका जो पंचक ताहि जान्या है जानिवे योग्य जिननै ऐसे अर्हतादिक हैं ते कहै है ॥ १६ ॥

आगै सम्यग्दर्शनके अतीचार कहैहै;—

शंकाकांक्षा निंदा परशंसासंस्तवा मला पंच।
परिहर्तव्याः सद्भिः सम्यक्तविशोधिभिः सततम्॥ १६॥

अर्थ—जिनवचनमै शंका करणी, वा भोगनिकी वांछा करणी, वा धर्मात्मानमै निंदा करणी ग्लानि करणी, मिथ्यादृष्टीनकी प्रशंसा करणी, स्तुति करणी; ये पांच अतीचारहै ते सम्यक्त विशोधन करनेवाले जे सत्पुरुप तिनकरि निरंतर त्यागना योग्यहै ॥१६॥

आगै अतीचारनके कथनकौ संकोचैहै;—

सप्ततिं परिहरंति मलानामेवमुत्तमधियो व्रतशुद्धयै।
श्रावका जगति ये शुभचित्तास्ते भवंति भुवनोत्तमनाथा ॥ १७ ॥

अर्थ—या प्रकार लोकमै उत्तमबुद्धी श्रावकहै जे अतिचारनिकी सप्तति कहिए सत्तरका समूह ताहि त्यागैहै ते शुभचित्त लोकके उत्तम नाथ होयहै ॥ १७ ॥

आगैं शल्यनिका निपेध करैहै;—

निदानमायाविपरीतदृष्टी-
नाराचपंक्तीरिव दुःखकर्त्रीः।
ये वर्जयंतेसुखभागिनस्ते
निःशल्यता शर्मकरी हि लोके॥ १८॥

अर्थ—जे पुरुप बाननकी पंक्तिसमान दुःख करनेवाली जो भोगनिकी वांछारूप निदान अर कुटिल भावरूप माया अर विपरीत दृष्टि

कहिए मिथ्यादृष्टी इन तीनौको त्यागेहै ते सुखके भोगनेवालेहै, जातै लोकविषैं निःशल्यपना सुखकारीहै ऐसा जानना ॥ १८ ॥

यस्यास्ति शल्यं हृदये त्रिधेयं
व्रतानि नश्यंत्यखिलानि तस्य ।
स्थिते शरीरं ह्यवगाह्य कांडे
जनस्य सौख्यानि कुतस्तनानि ॥ १९ ॥

अर्थ—जाके हृदयविषै तीन प्रकार यह शल्यहै ताके समस्त व्रत नाशकौ प्राप्त होयहै, जातै मनुष्यके शरीरको व्यापक वाणको तिष्ठतें संते काहेतै सुख होय? नाहीं होयहै ॥ १९ ॥

प्रशस्तमन्यच्च निदानमुक्तं
निदानमुक्तैर्व्रतिनामृषीन्द्रैः ।
विमुक्तिसंसारनिमित्तभेदा-
द्द्विधा प्रशस्तं पुनरभ्यधायि ॥ २० ॥

अर्थ—निदानरहित जे मुनींद्रहै तिनकरि व्रतीनके निदानहै सो प्रशस्त अर अप्रशस्त ऐसै दोय प्रकार कह्याहै, बहुरि प्रशस्त निदान मुक्तिका संसारका निमित्त इन भेदनितैं दोय प्रकार कह्या।

भावार्थ—निदानके भेद दोय, एक प्रशस्तनिदान दूजा अप्रशस्त निदान; तहां प्रशस्त निदानके भेद दोय, एक मुक्तिनिमित्त, एक संसारनिमित्त, ऐसा जानना ॥ २० ॥

आगै मुक्तिनिमित्त निदान कौ कहै है;—

कर्मव्यपायं भवदुःखहानिं
वोधिं समाधिं जिनवोधसिद्धिम् ।
आकांक्षतः क्षीणकषायवृत्ते-
र्विमुक्तिहेतुः कथितं निदानम् ॥ २१ ॥

अर्थ—कर्मनिका अभाव अर संसारके दुःखकी हानि अर दर्शन ज्ञान तपस्वरूप बोधि अर समाधि कहिए ज्ञानसहित मरण अर जीवनके ज्ञानकी सिद्धि इनकौ वांछता क्षीण कहिए मंदहै कषायनिकी प्रवृत्ति जाकै ऐसा जो पुरुष ताकै मुक्तिका हेतु निदान कह्याहै ।

भावार्थ—निदान नाम वांछाका है सो मुक्तिहीकी वाछा है, जातै मुक्तिविना कर्मादिकका अभाव होय नाहीं तातै सो निदान मुक्तिहेतु कह्या, ऐसा जानना ॥ २१ ॥

आगै संसारनिमित्त प्रशस्तनिदानकौ कहै है;—

जातिं कुलं बांधववर्जितत्वं
दरिद्रतां वा जिनधर्मसिद्ध्यै ।
प्रयाचमानस्य विशुद्धवृत्तेः
संसारहेतुर्गदितं जिनेंद्रैः ॥ २२ ॥

अर्थ—जिन धर्मकी सिद्धिके अर्थ जातिकौ वा कुलकौ वा बांधवनिकरि रहितपनेकौं वा दारिद्रपनेकौ वाछता जो निर्मल है प्रवृत्ति जाकी ऐसा पुरुष ताके जिनेद्रनै संसारके निमित्त प्रशस्त निदान कह्या है ।

भावार्थ—कोऊ चाहै कि जाति कुल भला मिलै तामै जिनधर्म सधै तथा बांधवादि आकुलताके हेतु है इन करि रहित होऊ जातै धर्म सधै वा धन पापका कारण है तातै धनरहित मै होऊ जातै धर्म सधै सो ऐसी वांछा धर्मके आशयते कथंचित् भली है तथापि जाति आदि संसारविना होय नाहीं, तातै संसार हेतु प्रशस्त निदान कह्या ॥ २२ ॥

उत्पत्तिहीनस्य जनस्य नूनं
लाभो न जातिप्रभृतेः कदाचित् ।

उत्पत्तिमाहुर्भवमुद्धबोधा
भवं च संसारमनेककष्टम् ॥ २३ ॥

अर्थ—उत्पत्तिरहित जो जीव ताकै निश्चयतै जाति आदिका लाभ कदाच होय नाही, बहुरि उद्धत है ज्ञान जिनका ऐसे ज्ञानी पुरुष हैं ते उत्पत्तिकौं भव कहै है, बहुरि भव है सो अनेक दुःखरूप संसार है।

भावार्थ—जाति आदि संसारविना नाहीं तातै आत्मादिककी वांछा है, ऐसा जानना ॥ २३ ॥

संसारलाभो विदधाति दुःखं
शरीरिणां मानसमांगिकं च।
यतस्ततः संसृतिदुःखभीतै-
स्त्रिधा निदानं न तदर्थमिष्टम् ॥ २४ ॥

अर्थ—जातै संसारका लाभ है सो जीवनिकौ शरीर संबंधी वा मनसंबंधी दुःख करै है तातै संसारके दुःखनतै भयभीत पुरुषनि करि संसारके अर्थ निदान है सो मन वचन काय करि नाहीं इच्छिये है ऐसा जानना ॥ २४ ॥

आगै अप्रशस्त निदानकौ कहै है;—

भोगाय मानाय निदानमीशै-
र्यदप्रशस्तं द्विविधं तदिष्टम्।
विमुक्ति लाभ प्रतिबंधहेतोः
संसारकांतारनिपातकारि ॥ २५ ॥

अर्थ—आचार्यननै जो अप्रशस्त कहिए खोटे निदान है सो भोगके अर्थ अर मानके अर्थ ऐसा दोय प्रकार इष्ट किया है, कैसा है,

अप्रशस्त निदान मुक्तिके लाभके रोकनेकौ कारण संसारमै पटकनेवाला ऐसा है।

भावार्थ—पंचेद्रियनिके विषयनिकी अभिलाषा सो भोगार्थ निदान कहिए अर अपनी महंतताके अर्थ वांछा सो मानार्थ निदान कहिए सो खोटे निदान संसारके कारणके है ऐसा जानना ॥ २५ ॥

ये संति दोषा भुवनांतराले
तानंगभाजां वितनोति भोगः।
के तेऽपराधा जननिन्दनीया
न दुर्जनो यान् रभसा करोति ॥ २६ ॥

अर्थ—विषय भोग है सो जीवनिकै लोकविषै जो दोष है तिनहिं विस्तारै है, इहा दृष्टांत कहै है—जननि करि निंदनीक ते कौन अपराध है जिनहिं दुष्टजन जबरदस्ती न करै है, सर्व ही करै है ॥ २६ ॥

ये पीडयंते परिचर्यमाणाः
ये मारयंते बत पोष्यमाणाः।
ते कस्य सौख्याय भवंति भोगा
जनस्य रोगा इव दुर्निवाराः ॥ २७ ॥

अर्थ—आचार्य कहै है वडे खेदकी बात है जे भोग आचरन करे संते सेये संते पीडा उपजावै है अर पुष्ट करे संते मारै है ते भोग रोगनि समान दुर्निवार कौन मनुष्यकै सुखके अर्थ होय है, अपि तु नाहीं होय हैं ऐसा जानना ॥ २७ ॥

विनश्वरात्मा गुरुपंककारी
मेघो जलानीव विवर्द्धमानः।
ददाति यो दुःखशतानि कृष्णः
स कस्य भोगो विदुषा निषेव्यः ॥ २८ ॥

अर्थ—सो विषय भोग कौनकै पंडितजन करि सेयवे योग्य होय अपि तु नाहीं होय। कैसा है विषय भोग जो वर्द्धमान भया संता जैसैं मेघ जलनिकौ देय है तैसै दुःखनिके सैकडानिकौ देय है, कैसा है मेघविनशनशील है स्वरूप जाका सो यह भोगभी विनसनशीलहै, वहुरि मेघ महाकीचका करनेवाला है वहुरि मेघ काला है, सो यह भोग भी मलीन है ऐसा जानना ॥ २८ ॥

यो वाधते शक्रममेय शक्तिं
स कस्य वाधां कुरुते न कामः ।
यः प्लोषते पर्वतवर्गमग्निः
स मुंचते किं तृणकाष्टराशिम् ॥ २९ ॥

अर्थ—जो काम अप्रमाण है शक्ति जाकै ऐसा जो इंद्र ताहि पीडै है सो काम कौनकै वाधा न करै है? सर्वहीकै करै है। इहां दृष्टांत कहै है—जो अग्नि पर्वतनके समूहकौ जलावै है सो अग्नि कहा तृणकाष्ठके समूहकौ छोडै है, अपि तु नाहीं छोडै है; ऐसा जानना ॥ २९ ॥

समीरणाशीव विभीमरूपः
कोपस्वभावः पररंध्रवर्ती ।
अनात्मनीनं परिहर्तुकामै-
र्न याचनीयः कुटिलः स भोगः ॥ ३० ॥

अर्थ—आपके अर्थ अहित ऐसा जो दुःख ताके त्यागनेकी है वांछा जिनकै ऐसे पुरुषनि करि सो विषयभोग चाहना योग्य नाही, कैसा है भोग, सर्प समान है भयानकरूप जाका, कैसा है सर्प क्रोधरूप है स्वभाव जाका सो यह भोग भी क्रोधका अभिप्राय लिये है, वहुरि सर्प पराये विलमै तिष्ठै है तैसै भोग भी स्त्री आदि परद्रव्यमै

वर्त्तै है, बहुरि सर्प कुटिल है तैसै भोग भी मायाचार सहित है, ऐसा जानना । ऐसै भोग निंद्य जानिकै ताके अर्थ निदान करना योग्य नाही ॥ ३० ॥

आगै मानका निषेध करैहै ।

देवं गुरुं धार्मिकमर्चनीयं
मानाकुलात्मा परिभूय भूयः ।
पाथेयमादाय कुकर्मजालं
नीचां गतिं गच्छति नीचकर्मा ॥ ३१ ॥

अर्थ—मानकरि आकुल है आत्मा जाका ऐसा जो पुरुष है सो देवका गुरुका धर्मात्माका पूजनीकका वारंवार तिरस्कार अपमान करकै अर नीचकर्म जीव पापकर्मके समूहरूप वटसारी कौ ग्रहण करि नीचगतिकौ जाय है ।

भावार्थ—मानी जीव गुरुका भी अविनय करै है अर पापकर्म बांधि तिर्यंचादि गतिकौ प्राप्त होय है ऐसा जानना ॥ ३१ ॥

वामनः पामनः कोपनो वंचनः
कर्कशो रोमशः सिध्मलः कश्मलः ।
कोलिको मालिकः शालिकश्छिपकः
किंकरो लुब्धको मुग्धकः कुष्ठिकः ॥ ३२ ॥
चित्रकः कौशिको मूपितो जाहको
वंजुलो मंजुलः पिप्पलःपन्नगः ।
कुक्कुरस्तित्तिरो रासभो वायसः
कुक्कुटो मर्कटो मानतो जायते ॥ ३३ ॥

अर्थ—मानतै जीवजोनीचपर्याय पावै है सो कहै है;—वामन होय है, गमर होय है, क्रोधी होय है, ठिग होय है, कठोर होय है, रोमश

कहिए बडे रोमका धारी होय है, सिध्मल कहिये भूरा होय है, पापी होय है, कोली होय है, माली होय है, सिलावट होय है छींपा होय है, चाकर होय है, पराधीन लोभी होय है, मूढ होय है, कोढी होय है ॥ ३२ ॥ चीता होय है, घूघू होय है, मूसा होय है जाहक होय है, बहुरि वंजुल मंजुल पिप्पल कोईनीच तिर्यंचविशेष है सो होय है, बहुरि सर्प अर कुत्ता अर तीतर अर गधा अर कागला अर मुर्गा अर वन्दर इत्यादि नीच मनुष्य तिर्यंचन पर्याय जीव मानतै पावै है तातै मान त्यागना योग्य है, यहु तात्पर्य है ॥ ३३ ॥

लक्ष्मीक्षमाकीर्त्तिकृपासपर्या
निहत्य सत्या जनपूजनीयाः ।
निषेव्यमाणो रभसेन मानः
श्वभ्रालये निक्षिपतीति घोरे ॥ ३४ ॥

अर्थ—सेया भया मान है सो सत्यार्थ रूप अर लोकनि करि पूजनीक ऐसी जो लक्ष्मी अर क्षमा अर कीर्ति अर दया अर पूजा इनकौ नासकै अर जबरदस्ती घोर नरकवासविषै पटकै है ॥ ३४ ॥

अनंतकालं समवाप्य नीचां
यद्येकदा याति जनोऽयमुच्चाम् ।
तथाप्यनंता बत याति जाती-
रुच्चो गुणः कोऽपि न चात्र तस्य ॥ ३५ ॥

अर्थ—जीव है सो अनंतकाल तांई नीचजातिकौ पाय करि एक-काल उच्चजातिकौं प्राप्त होय है, आचार्य कहै है, बडे खेदकी बात है तो भी जीव अनंत जातिनकौ प्राप्त होय है। बहुरि ताजीवकै इहां ऊंचा गुण कोई भी न देखिए है।

भावार्थ—जीव अनंतकाल निगोदादि नीचपर्यायनिमै वसै है, कदाच क्षत्रियादि उच्च कुलमै उपजै है सो तहा भी अनंतवार भया तातैं संसारमै ऊंच गुण किछू भी न देखिए है, तातै मान करना वृथा है ऐसा जानना ॥ ३५ ॥

उच्चासु नीचासु च हंत जंतो-
र्लब्धासु नो योनिषु वृद्धिहानी ।
उच्चो व नीचोऽहमपास्त बुद्धिः
स मन्यते मानपिशाचवश्यः ॥ ३६ ॥

अर्थ—ऊंच जातिनकौ वा नीचजातिनकौ पाए संतै जीवकी हानि वृद्धि नाहीं है, बहुरि मान पिशाचके वशीभूत अज्ञानी जीव है सो "मै ऊंचाहूं नीचा नाहीं" ऐसा मानै है ये बडे खेदकी बात है ॥ ३६ ॥

उच्चोऽपि नीचं स्वमवेक्षमाणो
नीचस्य दुःखं न किमेति घोरम् ।
नीचोऽपि पश्यति यः स्वमुच्चं
स सौख्यमुच्चस्य न किं प्रयाति ॥ ३७ ॥
उच्चत्वनीचत्वविकल्प एष
विकल्प्यमानः सुखदुःखकारी ।
उच्चत्वनीचत्वमयी न योनि-
र्ददाति दुःखानि सुखानि जातु ॥ ३८ ॥

अर्थ—ऊंचा है सो भी आपको नीचा देखता संता कहा नीचके घोर दुःखकौ न प्राप्त होय है, होय ही है। बहुरि नीचा है सो भी आपको ऊंचा देखता संता कहा ऊंचा पुरुषके सुखकौ न पावै है, पावै ही है ॥ ३७ ॥ यह ऊंचपना नीचपनाका विकल्प है सो कल्प्या

भया संता दुःख करनेवाला है। बहुरि ऊंचपना नीचपना मयी जाति है सो सुखनिकौ वा दुःखनिकौ कदाचित् न देय है॥ ३८॥

भावार्थ—कोऊ पुरुष औरनतै आप बडा है सो आपतै बडेकौं देखि आपको दुखी मानै है। बहुरि कोई पुरुष औरनितैं छोटा है सो भी आप तै छोटेनिकौं देखि आपको बडा मान सुख मानै है। तातैं मोही जीवकी मिथ्या माननेमैं सुख दुःख है किछू बाह्य जाति आदि सुख दुःखका कारन नाहीं। ऐसा जानि जात्यादिकका गर्व न करना ऐसा इहा प्रयोजन जानना॥ ३७-३८

हिनस्ति धर्मं लभते न सौख्यं
कुबुद्धिरुच्चत्वनिदानकारी।
उपैति कष्टं सिकतानिपीडी
फलं न किंचिज्जननिन्दनीयः॥ ३९॥

अर्थ—ऊंचपनेका निदान करनेवाला कुबुद्धि पुरुष है सो धर्मका नाश करै है अर सुखकौ न पावै है, इहां दृष्टांत कहै है, जैसै लोकविषैं निदनीक मूर्ख पुरुष वालू रेतका पेलनेवाला कष्टकौ प्राप्त होय है अर किछू फलकौ नहीं प्राप्त होय है तैसै।

भावार्थ—निदान करे सुख न मिलै है, जातै सुख तौ पुण्योदयके आधीन है, अर पुण्यके आशयतै पुण्य होय नाहीं तातैं जैसै वालू रेत पेले किछू तेल न कढै उलटा कष्ट होय है तैसा निदान भी जानना॥ ३९॥

यशांसि नश्यंति समानवृत्ते-
र्गदातुरस्येव सुखानि सद्यः।
विवर्द्धते तस्य जनापवादो
विषाकुलस्येव मनोविमोहः॥ ४०॥

अर्थ—जैसै रोग करि पीडित पुरुपके सुख शीघ्र नाशकौ प्राप्त होय हैं तैसैं मानसहित है प्रवृति जाकी ऐसा जो पुरुप ताके यश शीघ्र नाशकौ प्राप्त होय है। बहुरि ताका लोकापवाद बढै है जैसैं विपकरि आकुल हैं चित्त जाका ऐसा जो पुरुप ताके मनमै अचेतपना बढै तैसै। ऐसा जानना ॥ ४० ॥

हुताशनेनेव तुपारराशि-
विंनश्यतेऽलं विनयो मदेन ।
नैवानुरागं विनयेन हीनो
लोके शमेनैव चरित्रमेति ॥ ४१ ॥

अर्थ—जैसै अग्निकारि तुपारकी राशि विनाशकौ प्राप्त होय है तैसैं मानकरि विनय नाशकौ प्राप्त होय हैं। बहुरि विनय करि हीन है सो लोकमै प्रीति भावकौ न पावै है शमभाव करि ही चारित्रकौं पावै है, ऐसा जानना ॥ ४१ ॥

पूता गुणा गर्ववतः समस्ता भवंति वंध्या यमसंयमाद्याः ।
प्ररोप्यमाणा विधिना विचित्राः किमूपरे भूमिरुहाःफलंति॥४२॥

अर्थ—गर्वसहित पुरुपकै यम कहिए कालकी मर्यादारूप नियम अर संयम कहिए इंद्रिय विपय अर हिंसाका त्याग इत्यादि पवित्र गुण हैं ते स्वर्गादि फल रहित होय हैं। इहां दृष्टांत कहै है, ऊपर भूमिविपै विधिसहित लगाये नानाप्रकार वृक्ष है ते कहा फलै है, अपि तु नाही फलै है ॥ ४२ ॥

न जातु मानेन निदानमित्थं करोति दोपं परिचिंत्य चित्रं ।
प्राणापहारं न विलोकमानो विषेण तृप्तिं वितनोति कोऽपि। ४३ ।

अर्थ—या प्रकार मानके नानाप्रकार दोषकौ बिचारिकै मानसहित निदानकौ कदाच भी न करैहै। जैसैं प्राणके नाशकौ देखता पुरुष कोई भी विषकरि तृप्तिकौं न विस्तारैहै तैसै॥ ४३॥

यो घातकत्वादि निदानमज्ञः करोति कृत्वा चरणं विचित्रं।
हि वर्द्धयित्वा फलदानदक्षं स नंदनं भस्मयते वराकः॥ ४४॥

अर्थ—जो नाना प्रकार चारित्रकौं करकै अर अज्ञानी घातकपना आदिका निदान करैहै सो बावरा पुरुष फलदेनेमैं प्रवीण ऐसा जो नंदन वन ताहि बढाय करि भस्म करैहै।

भावार्थ—जो चारित्रधारी द्वीपायनकी ज्यौ मारने आदिका निदान करैहै सो चारित्र का नाश करैहै अनंतसंसारी होयहै ऐसा जानना॥४४॥

यः संयमं दुष्करमादधानो
भोगादिकांक्षां वितनोति मूढः।
कंठे शिलामेष निधाय गुर्वी
विगाहते तोय मलभ्य मध्यम्॥ ४५॥

अर्थ—जो मूढ दुःखकर संयमकौ धारता संता भोगादिककी वांछाकौ विस्तारैहै सो कंठविषै बडी शिलाकौ धारिकै नाहीं मिलने योग्यहै मध्य जाका ऐसा औडा जलकौ अवगाहै है॥ ४५॥

त्रिधा विधेयं न निदानमित्थं
विज्ञाय दोषं चरणं चरद्भिः।
अपथ्यसेवां रचयंति संतो
विज्ञातदोषा न कृतौषधेच्छाः॥ ४६॥

अर्थ—अणुव्रतादिरूप चारित्रकौ आचरन करते जे पुरुष तिनकरि या प्रकार निदानके दोषकौ जानिकै निदानहै सो मन वचन काय करि

करणा योग्य नाही, जैसै करीहै औषधकी इच्छा जिननै अर जान्याहै अपथ्यका दोष जिननै ऐसे सज्जनहै ते अपथ्यका सेवन न करैहै।

भावार्थ—संसाररोगकी औषध चारित्रहै अर निदान संसाररोग वढावनेवाला कुपथ्यहै। जे चारित्रधारै है अर निदानकौ बुरा जानैहै ते निदान न करैहै, ऐसा जानना ॥ ४६ ॥

ऐसा निदानशल्यका वर्णन किया। आगै मायाशल्यका वर्णन करैहै;—

आयासविश्वासनिराशशोक-
द्वेषावशादश्रमवैरभेदाः।
भवंति यस्यामवनाविवागाः
सा कस्य माया न करोति कष्टम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—जैसै भूमिमै वृक्ष होय तैसै प्रयास अर विश्वासका अभाव अर शोक अर द्वेष अर कष्ट अर श्रम अर वैर इत्यादि भेद है ते जिस मायाविषै होयहै सो कौनकै कष्ट न करै, सर्वहीकै करै ॥ ४७ ॥

स्वल्पापि सर्वाणि निषेव्यमाणा
सत्यानि माया क्षणतः क्षिणोति।
नाल्पा शिखा किं दहतींधनानि
प्रवेशिता चित्ररुचेश्चितानि ॥ ४८ ॥

अर्थ—थोडी भी सेई भई माया क्षणमात्र मैं सर्व सत्यका नाश करैहै। इहा दृष्टांत कहैहै;—अग्निकी अल्पज्वाला प्रवेश करी भई कहा संचयरूप इंधननकौ नाहीं दहैहै? दहैहीहै ॥ ४८ ॥

निकर्त्तितुं वृत्तवनं कुठारी
संसारवृक्षं सवितुं धरित्री।

बोधप्रभांध्वंसयितुं त्रियामा
माया विवर्ज्या कुशलेन दूरम् ॥ ४९ ॥

अर्थ—प्रवीण पुरुष करि माया दूर त्यागनी योग्यहै, कैसीहै माया चारित्रवनके काटनेकौं कुल्हाडीसमानहै, अर संसार रूप वृक्षके उपजावनेकौ पृथ्वीसमानहै, अर ज्ञानरूप प्रभाप्रकाश के नाशनेंकौ रात्रिसमानहै। ऐसा जानना ॥ ४९ ॥

हिनस्ति मैत्रीं वितनोत्यमैत्रीं
तनोति पापं वितनोति धर्मम्।
पुष्णाति दुःखं विधुनोति सौख्यं
न वंचना किं कुरुते विनिंद्यम् ॥ ५० ॥

अर्थ—माया है सो मैत्री कहिए प्रीति ताका नाश करै है अर अप्रीतिकौ विस्तारै है, पापकौ विस्तारै है अर धर्मका विध्वंस करै है, दुःखकौ पुष्ट करै है अर सुखका अभाव करै है। बहुरि सो माया कौन निंदने योग्य है ताहि न करै है, सर्व ही करै है ॥ ५० ॥

ऐसै मायाका वर्णन किया। आगै मिथ्यात्व शल्यका वर्णन करैं है;

न बुध्यते तत्त्वमतत्वमंगी
विमोह्यमानो रभसेन येन।
त्यजंति मिथ्यात्वविषं पटिष्ठाः
सदा बिभेदं बहुदुःखदायि ॥ ५१ ॥

अर्थ—जिस मिथ्यात्वविष करि जबरदस्ती अचेत भया संता जीव है सो तत्व अतत्वकौ न जानै है तिस बहुत भेदरूप मिथ्यात्वविषकौं पंडित जन हैं ते त्यागै है, कैसा है मिथ्यात्वविष बहुत दुःखका देनेवाला है, ऐसा जानना ॥ ५१ ॥

आगैं मिथात्वके अभिप्राय का वर्णन करैहै।

वदंति केचित् सुखदुःखहेतु-
न विद्यते कर्म शरीर भाजाम्।
मानस्य तस्मिन्निखिलस्य हाने-
र्मानव्यपेतस्य न चास्ति सिद्धिः॥ ५२॥

अर्थ—कोई कहै है—जीवनिकै सुख दुःखका कारण कर्म नाही है, जातै तिस कर्म विषै समस्त प्रमाणनिकी हानि है, बहुरि प्रमाण रहितकी सिद्धि नाहीं।

भावार्थ—कोई कहै है सुख दुःखका कारण कर्म नाही तातै कर्म इंद्रियनिके गोचर नाहीं अर ताका लिंग कोऊ दीसै नाहीं, बहुरि कर्म-समान और पदार्थ दीसै नाही, बहुरि कर्म विना न होय ऐसे पदार्थकी अप्राप्ति है, बहुरि हमारे आगममै भी कर्मका अभाव कह्या है; ऐसे सर्व प्रमाणके अगोचर है। बहुरि जो प्रमाणमै न आवै सो वस्तु नाहीं, तातै कर्म नाहीं है॥ ५२॥

बहुरि फेर कहैं हैं;—

सत्त्वेऽपि कर्तु न सुखादिकार्य
तस्यास्ति शक्तिर्गतचेतनत्वात्।
प्रवर्त्तमानाः स्वयमेव दृष्टाः
विचेतनाः क्वापि मया न कार्ये॥ ५३॥

अर्थ—जीवविषै सुखादिकार्यके दूर करनेकी ता कर्मके शक्ति नाहीं, जातै कर्मके अचेतपनाहै। मैंने कोई कार्यविषै अचेतनपदार्थकौ स्वयमेव प्रवर्त्तते न देखे।

भावार्थ—जीवकै सुख ज्ञानादि घात करनेकौ कर्म समर्थ नाहीं जातै आप अचेतन है। लोकमे अचेतन पदार्थ कार्य करते न देखेहैं, ऐसा तातै कर्मका अभाव साध्या॥ ५३॥

अब आचार्य कहै है।

एषा महामोहपिशाचवश्यै-
र्न युज्यते गीरभिधीयमाना।
प्रमाणमस्माक मबध्यमानं
यतोऽस्य सिद्धावनुमानमस्ति ॥ ५४ ॥

अर्थ—महा मोहरूप पिशाचके वशीभूत जे मिथ्यादृष्टी तिनकरि कही यह वाणी युक्त नाहीं, जातैं इस कर्मकी सिद्धिविषै हमारा अबाधित अनुमान प्रमाण है ॥ ५४ ॥

सो ही अनुमान दिखावैं हैं।

रागद्वेषमदमत्सर शोक-
क्रोधलोभभयमन्मथ मोहाः।
सर्वजंतुनिवहैरनुभूताः
कर्मणा किमु भवंति विनैते ॥ ५५ ॥

अर्थ—सर्व जीवनिके समूहनि करि अनुभव किए ऐसे जे रागद्वेष मद मत्सर शोक क्रोधलोभ भय काम मोह इत्यादि विकारभावहै ते कर्म विना ये कैसै होय।

भावार्थ—संसारी जीवनिकै कर्म बंधेहै जातै कर्मनिके उदयका कार्य जो रागादिभावहै ते सर्व जीवनि करि स्वसंवेदन प्रत्यक्षकरि जानिएहै, कर्मोदयविना रागादिक कैसैं होय; जाकै कर्म बंध नाहीं सो रागादि सहित नाही जैसै मुक्तजीव। इहां कार्यलिंगतै अनुमान कियाहै ॥ ५५ ॥

आगै फेर आशंकाका उत्तर करैहै,—

ते जीवजन्याः प्रभवंति नूनं
नैषापि भाषा खलु युक्तियुक्ता।

नित्यप्रसक्तिः कथमन्यथैषां
संपद्यमाना प्रतिषेधनीया ॥ ५६ ॥

अर्थ—वादी कहैहै कि ते रागादिभाव जीवहीतै उपजैहै; ताकौ आचार्य कहैहै—कि ऐसी वाणी निश्चयकरि युक्त नाही, जातै ये रागादि जीवहीतैं उपजे होय तौ इन रागादिकनिकी नित्यसंबंधता आई सो कैसैं निषेध करने योग्य होय।

भावार्थ—रागादि भाव आत्माके स्वभाव होय तौ स्वभावका अभाव होनेतै सर्व अवस्थामैं रहे चाहिए तब जीवकै मोक्ष कैसे होय, तातैं रागादिकहै ते कर्मोदयके निमित्त विना न होयहै, ऐसा जानना ॥ ५६ ॥

आगैं फेर कहैहै;—

नित्येजीवे सर्वदा विद्यमाने
कादाचित्का हेतुना केन संति।
निर्मुक्तानां जायमाना निषेद्धुं
ते शक्यंते केन मुक्तिश्च तेभ्यः ॥ ५७ ॥

अर्थ—सदाकाल विद्यमान जो नित्य जीव ता विषै कहीं होय कहीं न होय ऐसे कदाच होनेवाले जे रागादिक ते कौन कारणकरि होयहै, अर मुक्त जीवनिकै उत्पन्न भए जे रागादिक ते काहे करि निषेधनेकौ समर्थ हूजिए अर तिनतै मुक्ति काहेकरि होय।

भावार्थ—जैसैं फटिकमणि निर्मल तो सदा है तामैं काला पीला आदिजैसा डांक लगै तैसा परिणमैं सो परिणमन कदाचित् होयहै तातै ताकौ कदाचित्क कहिए तैसैं आत्मा तो नित्यहै ताकै मोहादि कर्मका निमित्त मिले रागादिरूप परिणमन होयहै सो कादाचित्कहै, अर ते रागादि कर्म निमित्तविना होय तो रागादिक नित्यस्वभाव ठहरै तब

तिनका मुक्तजीवकैंभी अभाव कैसै होय अर तिनतै कैसैं छूटै, तातैं कर्मका अस्तित्व मानना योग्यहै ॥ ५७ ॥

आगैं फेर कहैहै;—

तुल्यप्रतापोद्यमसाहसानां
केचिल्लभंते निजकार्यसिद्धिम्।
परे न तामत्र निगद्यतां मे
कर्माऽस्ति हित्वा यदि कोऽपि हेतुः ॥ ५८ ॥

अर्थ—समान है प्रताप अर उद्यम जिनके ऐसे पुरुषनिकै मध्य केई पुरुष अपने कार्यकी सिद्धिकौ पावै हैं, बहुरि और केई ता कार्यकी सिद्धिकौ न पावै हैं; सो इहां कर्मसिवाय और कोई भी कारण होय तौ मोसैं कहि।

भावार्थ—समान पुरुष समान उद्यम करै तहां कोईकै सिद्धि होय कोई कै न होय सो इहां कर्मसिवाय और कारण नाहीं, ऐसा जानना ॥ ५८ ॥

आगैं फेर कहै हैं;—

विचित्रदेहाकृति वर्णगंध-
प्रभावजातिप्रभवस्वभावाः।
केन क्रियंते भुवनेंगिवर्गा-
श्चिरंतनं कर्म निरस्य चित्राः ॥ ५९ ॥

अर्थ—लोकविषै नानाप्रकार शरीर वर्ण गंध वीर्य जाति इनके उपजावने रूप है स्वभाव जिनके ऐसे जे अनेकजीवनिके समूह ते पहला पुरातन कर्मविना कौन करि करिए है।

भावार्थ—पहला कर्म न होय तो आगामी नाना शरीर काहे तैं उपजै, तातै प्राचीन कर्म मानना योग्य है ॥ ५९ ॥

विवर्द्ध्य मासान्नव गर्भमध्ये
बहुप्रकारैः कलिलादिभावैः ।
उद्वर्त्य निष्कासयते सवित्र्या
को गर्भतः कर्म विहाय पूर्वम् ॥ ६० ॥

अर्थ—गर्भविषै नव मास ताईं नानाप्रकार रुधिरादि भावनि करि बढायकै अर पलटकै माताके गर्भ तै पूर्व कर्मविना कौन निकासै है।

भावार्थ—पहला कर्म न होय तो गर्भ मै वृद्धि होना अर मुख पलटकै गर्भ तै निकासना इत्यादि कार्य कैसै होय, तातै पूर्व कर्म अवश्य मानना ॥ ६० ॥

आगै वादीनै कही थी कि कर्म अचेतन है सो कार्य कैसैं करै ताका उत्तर करै है;—

विलोकमानाः स्वयमेव शक्तिं
विकारहेतुं विषमद्यजाताम् ।
अचेतनं कर्म करोति कार्यं
कथं वदंतीति कथं विदग्धाः ॥ ६१ ॥

अर्थ—विष वा मदिरा इन अचेतननतै उपजी जो विकारकी कारण शक्ति ताहि आपही देखते संते चतुर पुरुष है ते " अचेतन जो कर्म सो कार्यकौ कैसै करै है " ऐसी कैसै कहै है ।

भावार्थ—मदिरादि अचेतन वस्तु है सो जैसै गहलपना उपजावै है तैसैं कर्म भी अचेतन है सो अपना कार्य करै है, यामै शंका कहा, प्रत्यक्ष अचेतनका कार्य देखिए है ॥ ६१ ॥

आगै फेर कहै है;—

नानाप्रकारा भुवि वृक्षजाती-
र्विधूय पत्राणि पुरातनानि ।

अचेतनः किं न करोति कालः
प्रत्यग्रपुष्पप्रसवादिरम्याः ॥ ६२ ॥

अर्थ—पृथ्वीविषै अचेतन जो काल है सो नानाप्रकार वृक्षकी जो जाति ताहि पुराने पत्रनकौ झड़ाय करि नवीन पुष्प पत्रादिकानि करि मनोहर कहा न करै है ? करै ही है।

भावार्थ—जैसैं अचेतनकाल है सो वृक्षनिके पहले पत्र झड़ाय नवीन पत्रादि करै है तैसै अचेतन कर्म भी अपना कार्य करै है, ऐसा जानना ॥ ६२ ॥

आगैं फेर कहै है;—

यैर्निःशेषं चेतनामुक्तमुक्तं
कार्याकारि ध्वस्तकार्यावबोधैः ॥
धर्माधर्माकाशकालादि सर्वं
द्रव्यं तेषां निष्फलत्वं प्रयाति ॥ ६३ ॥

अर्थ—जिन पुरुषनि करि चेतनारहित अचेतन द्रव्य है सो सर्वथा कार्यका करनेवाला नाहीं ऐसा कह्या तिनकै धर्म अधर्म आकाश काल आदि सर्व द्रव्य निष्फलपनेकौं प्राप्त होय है, कैसे हैं ते पुरुष नष्ट भया है कार्यका ज्ञान जिनकै।

भावार्थ—जे सर्वथा अचेतनकौं कार्यका करनेवाला न मानै हैं तिनकै धर्मादि द्रव्य अचेतन है ते निष्फल ठहरै तातै तिनकैं कार्य कारणपने का ज्ञान नाहीं। यद्यपि धर्मादि द्रव्य प्रेरक कर्त्ता नाहीं तथापि निमित्त नैमित्तिक भाव मात्र परस्पर कार्य कारणपना है, सो स्याद्वाद तै अविरोध सधै है ॥ ६३ ॥

आगै कोऊ कहैकि अमूर्त्त जीवकै मूर्त्तीक कर्म नहीं बंधै है, ताका समाधान करै है;—

जीवैरमूर्त्तैः सह कर्म मूर्त्तं
संबध्यते नेति वचो न वाच्यम् ।
अनादिभूतं हि जिनेन्द्रचन्द्राः
कर्मांगिसंबंध मुदाहरंति ॥ ६४ ॥

अर्थ—अमूर्तीक जीवनि सहित मूर्तीक कर्म न बंधैहै ऐसा कहना योग्य नाहीं: जातै जिनेद्रचंद्रहै ते कर्म अर जीवनिका अनादितै संबंध कहैहै ।

भावार्थ—जीव कर्मका अनादि संबंधहै सो अनादिस्वभावमें तर्क नाहीं, ऐसा जानना ॥ ६४ ॥

आगैं इस कथनको संकोचै है ?

इत्यादि मिथ्यात्वमनेकभेदं
यथार्थतत्वप्रतिपत्तिमुदि ।
विवर्जनीयं त्रिविधेन सद्भि-
र्जैनं व्रतं रत्नमिवाश्रयद्भिः ॥ ६५ ॥

अर्थ—संतन करि इत्यादिक मिथ्यात्व नानाप्रकार यथार्थ तत्वज्ञानका नाश करनेवालाहै सो मन वचनकायकरि त्यागना योग्यहै कैसेहैं सत्पुरुष जिन भगवानके व्रतकौं रत्नकी ज्यौ सेवैहै ॥ ६५ ॥

आगैं एकादश प्रतिमानका वर्णन करै है ।

एकादशोक्ता विदितार्थतत्त्वै-
रुपासकाचारविधेर्विभेदाः ।
पवित्रमारोढुमनन्यलभ्यं
सोपानमार्गा इव सिद्धिसौधम् ॥ ६६ ॥

अर्थ—जानेहैं पदार्थनिके स्वरूप जिननै ऐसे अर्हतादिकनि करि श्रावकके आंचारकी विधिके भेद ग्यारह कहेहे, ते भेद पवित्र मोक्ष

महलके चढनेकौं सिवाणके मार्ग समानहै, कैसाहै मोक्षमहल अन्य सामान्य जनकरि नाहीं पावने योग्यहै, ऐसा जानना ॥ ६६ ॥

आगैं ग्यारह प्रतिमानमैं प्रथम दर्शनप्रतिमाकौ कहैहैं;—

यो निर्मलां दृष्टिमनन्यचित्तः
पवित्रवृत्तामिव हारयष्टिम् ।
गुणावनद्धां हृदये निधत्ते
स दर्शनी धन्यतमोऽभ्यधायि ॥ ६७ ॥

अर्थ—नाहींहै और ठिकाने चित्त जाका ऐसा जो पुरुष पवित्र अर गोल हारकी लडीसमान निर्मलदृष्टिकौ हृदयमै धारैहै सो दर्शनसहित, पुरुष अतिशयकरि धन्य कह्याहै, कैसी है हारकी लडी गुण जे डोर तिनकरि बंधीहै, अर निर्मल दृष्टि वात्सल्य आदि गुण कर बंधी है ऐसा जानना ॥ ६७ ॥

आगैं व्रतप्रतिमाकौ कहैहै;—

विभूषणानीव दधाति धीरो
व्रतानि यः सर्वसुखाकराणि ।
आक्रष्टुमीशानि पवित्रलक्ष्मीं
तं वर्णयंते व्रतिनं वरिष्ठाः ॥ ६८ ॥

अर्थ—सर्व सुखनिके स्थान जे बारह व्रत तिनहि जो आभूषणनिकी ज्यों धारैहै ता पुरुपकौं आचार्य व्रती कहैहैं, कैसेहैं बारह व्रत पवित्रलक्ष्मी जो स्वर्गमोक्षकी लक्ष्मी ताके प्राप्तकरनेकौं समर्थहै, ऐसा जानना ॥ ६८ ॥

आगैं सामायिकप्रतिमाकौं कहैहैं;—

रौद्रार्त्तमुक्तो भवदुःखमोची
निरस्तनिःशेषकषायदोषः ।

सामायिकं यः कुरुते त्रिकालं
सामायिकस्थः कथितः स तथ्यम् ॥ ६९ ॥

अर्थ—आर्त्त रौद्र खोटे ध्याननि करि रहित अर संसार दुःखनि का त्यागनेवाला अर त्यागेहैं समस्त क्रोधादि कषाय जानै ऐसाजो पुरुष त्रिकाल सामायिककौ करैहै सो पुरुष सत्यार्थ सामायिक विषै तिष्ठ्या कह्याहै ॥ ६९ ॥

आगैं प्रोषधप्रतिमाकौ कहैहैं;—

मंदीकृताक्षार्थ सुखाभिलाषः
करोति यः पर्वचतुष्टयेऽपि।
सदोपवासं परकर्म मुक्त्वा
सः प्रौषधी शुद्धधियामभीष्टः ॥ ७० ॥

अर्थ—मंद करीहै इंद्रिय विषय जनित सुखकी अभिलाषा जानैं ऐसा जो पुरुष पर्वचतुष्टय कहिये एकमासकी दोय अष्टमी दोय चतुर्दशी इन चारनि विषै आरंभ छोडकरि निश्चयकरि सदा उपवास करैहै सो प्रोषधप्रतिमाधारी शुद्धबुद्धीनिके अभीष्टहै वांछितहै ॥ ७० ॥

आगैं सचित्तत्यागप्रतिमाकौ कहैहै।—

दयार्द्र चित्तो जिनवाक्यवेदी
न वल्भते किंचन यः सचित्तम्।
अनन्यसाधारण धर्मपोषी
सचित्तमोची स कषायमोची ॥ ७१ ॥

अर्थ—दयाकरि भीज्याहै चित्त जाका अर जिनेंद्रके वचननिका जाननेवाला ऐसा जो पुरुष कछूभी सचित्तकौ न खायहै सो और के समान नाहीं ऐसे असाधारण धर्मका पुष्ट करनेवाला कषायरहित सचित्तत्यागी कह्याहै ॥ ७१ ॥

आगैं रात्रिभोजनका त्याग वा दिनमै अब्रह्मत्याग प्रतिमाकौं कहैंहैं;—

निषेवते यो दिवसे न नारी-
मुद्दामकंदर्पमदापसारी।
कटाक्षविक्षेपशरीरविद्धो
बुधैर्दिन ब्रह्मचरः स बुद्धः ॥ ७२ ॥

अर्थ—जो पुरुष तीव्र कामके मदका दूर करनेवाला दिवसविषै नारीकौं न सेवैहै, सो पंडितनि करि स्त्रीकटाक्षका चलावनारूप वाणनि करि नाहीं वींध्या दिनविषै ब्रह्मचारी कह्याहै। दिनविषै तो स्त्रीका न सेवना सो दिनब्रह्मचारीहै वा यहु रात्रिभोजनकाभी त्यागीहै, तातैं याहीका नाम रात्रिभोजन त्यागी भी कह्याहै; ऐसा जानना ॥ ७२ ॥

आगैं ब्रह्मचर्यप्रतिमाकौं कहैंहै:—

यो मन्यमानो गुणरत्नचौरीं
विरक्तचित्तस्त्रिविधेन नारीम्।
पवित्र चारित्रपदानुसारी
स ब्रम्हचारी विषयापहारी ॥ ७३ ॥

अर्थ—जे विरक्त पुरुष स्त्री कौं मन वचन काय करि गुणरत्नकी चोरनेवाली मानता संता पवित्र चारित्रके पदका अनुसारी विषयनका त्यागी सो ब्रह्मचारी कह्या है ॥ ७३ ॥

आगैं आरंभ त्याग प्रतिमाकौं कहै है;—

विलोक्य षड्जीवविघातमुच्चै-
रारंभमत्यस्यति यो विवेकी।
आरंभमुक्तः स मतो मुनीन्द्रै-
र्विरागिकः संयमवृक्षसेकी ॥ ७४ ॥

अर्थ—अतिशयकरि पट्कायिक जीवनिका घात देखकैं जो विवेकी आरंभकौं त्यागै है सो मुनींद्रनिकरि आरंभ रहित कह्या है, कैसा है सो विरागी संयमवृक्षका सीचनेवाला है ॥ ७४ ॥

आगै परिग्रह त्याग प्रतिमाकौ कहै है;—

यो रक्षणोपार्जननश्वरत्वै-
र्ददाति दुःखानि दुरुत्तराणि ।
विमुच्यते येनपरिग्रहोऽसौ
गीतोऽपसंगैरपरिग्रहोऽसौ ॥ ७५ ॥

अर्थ—जो परिग्रह रक्षा करणा उपार्जन करणा विनसना दुःखतै उतरे जाय ऐसे दुःखनिकौ देय है, ऐसा यहु परिग्रह जाकरि त्यागिए सो यहु परिग्रह रहित जे मुनींद्र तिन करि अपरिग्रह कह्या है ॥७५॥

आगैं अनुमति त्याग प्रतिमाकौ कहैं है;—

आरंभसंदर्भ विहीनचित्तः
कार्येषु मारीमिव हिंस्ररूपाम् ।
यो धर्ममतानुमतिं न दत्ते
निगद्यते सोऽननु मंत्रमुख्यः ॥ ७६ ॥

अर्थ—आरंभकी रचना करि हीन है चित्त जाका अर धर्मका अनुमोदन करनेवाला ऐसा जो पुरुप पापकार्यनिविपैं हिंसकरूप मारी समान जो अनुमति कहिए सलाह ताहि न देवै सो नाहीं अनुमति करनेवालेनि मै प्रधान कहिए है ।

भावार्थ—पापकर्मकी अनुमोदनाका त्यागकरै सो अनुमतित्यागी दशमप्रतिमा धारी कहिए, ऐसा जानना ॥ ७६ ॥

आगै उद्दिष्टत्याग प्रतिमाकौ कहैहै;—

यो वंधुरावंधुरतुल्यचित्तो
गृह्णाति भोज्यं नवकोटिशुद्धम् ।
उद्दिष्टवर्जी गुणिभिः स गीतो
विभीलुकः संसृति मातुधान्याः ॥ ७७ ॥

अर्थ—जो पुरुष भले बुरे आहारमैं समानहै चित्त जाका ऐसा जो पुरुष नवकोटिशुद्ध कहिए मन वचनकाय करि करया नाहीं कराया नाहीं करे हुएकौ अनुमोद्या नाहीं ऐसे आहारकौ ग्रहण करैहै सो उद्दिष्टत्यागी गुणवंतनिनै कह्याहै, कैसाहै सो संसाररूप राक्षसीसै विशेषभयभीत है ॥ ७७ ॥

ऐसैं ग्यारह प्रतिमाका वर्णन किया। इहां संक्षेप ऐसाहै, जो मिथ्यात्व अर अनंतानुबंधी कषाय इनके उदयका अभाव तौ सम्यग्दर्शन होतैंही भया, बहुरि अप्रत्याख्यानावरणके उदयके अभावतै देशविरतनामा पंचम गुणस्थान होयहै ताकै दर्शन प्रतिमासै लगाय ऊपर ऊपर विशुद्धताकी अधिकतातैं ग्यारह भेद कहेहैं सम्यक्सहित वारह व्रतनिहीकी ऊपर ऊपर निर्मलता होती जायहै, ऐसा जानना। इहां कोऊ कहैकि देशव्रतका घातक जो अप्रत्यारव्यानावरण कषाय ताके उदयका तो अभाव भया अव हीनअधिक विशुद्धिता किस कर्मके उदयतैं होयहै—ताका ऊत्तर;—यद्यपि इहां अप्रत्यारव्यानावरण कषायका उदय नाहीं तथापि प्रत्यारव्यानावरणकषायके मंद तीव्र उदयतैं हीन अधिक विशुद्धिता होयहै जैसैं प्रत्याख्यान कपायका अभाव होतै षष्ठमादि गुणस्थानमै हीनाधिक विशुद्धता संज्वलनके तीव्रमंद उदयतैं होयहै तैसैं, ऐसा जानना ॥ ७७ ॥

क्रमेणामूंश्चित्ते निदधति मुदैकादश गुणानलं निंदा गर्हानिहितमनसो येऽस्ततमसः ।

भवान् द्वित्रान् भ्रांत्वाऽमरमनुजयोर्भूरिमहसो-
र्विधूतैनोवंधाः परमपदवीं यांति सुखदाम् ॥७८॥

अर्थ—दूर भयाहै अज्ञान अंधकार जिनका, वहुरि निंदा गर्हा विषैं लगाया है मन जिननै ऐसे पुरुष अतिशय करि हर्षसहित इन पूर्वोक्त ग्यारह गुणनकौ चित्तविषैं धारैहै ते पुरुष वडे है तेज जिनके ऐसे देव मनुष्यनिविषै दोय तीन भव भ्रमण करि वहुरि नाश कियेहै पापबंध जिननै ऐसे ते सुखकी देने वाली परमपदवी जो मुक्ति ताहि प्राप्त होयहै ।

भावार्थ—जे सम्यग्दृष्टी ग्यारह प्रतिमाकौ धारैहै । आपकी निंदा गर्हा करैहै ते दो तीन भव देवादिकके सुख भोगकै सिद्ध होयहै, ऐसा जानना ॥ ७८ ॥

इदं धत्ते भक्त्या गृहिजनहितं योऽत्र चरितं
मदक्रोधायासप्रमदमदनारंभमकरम् ।
भवांभोधिं तीर्त्वाजननमरणावर्त्तनिचितं
व्रजत्येषोऽध्यात्मामितगतिमतं निर्वृतिपदम् ॥७९॥

अर्थ—जोपुरुष इहां भक्तिसहित ये गृहस्थ जनका हितरूप चारित्रकौ धारैहै सो यहु आत्मा ज्ञानी संसार समुद्रकौ तिरके सर्वज्ञदेवकरि कह्या जो शिवपद ताहि प्राप्त होयहै, कैसाहै संसार समुद्र क्रोध स्वेद हर्ष काम आरंभ येहीहै मगर जाविषै, बहुरिजन्म मरणरूप भौंरनिकरि व्याप्तहै ॥ ७९ ॥

कवित्त छंद ।

दर्शन व्रत सामायिक प्रोषध सचित रात्रिभोजन परिहार ।
ब्रह्मचर्य आरंभ परिग्रह अनुमतिविरति दसम सुखकार ॥

पुनि उद्दिष्टत्याग पडिमा इम धारत जो श्रावक दुखहार।
सो स्वर्गादि संपदा लहिकै होय अमितगति पद अविकार॥

इत्युपासकाचारे सप्तम परिच्छेदः।

ऐसैं श्री अमितगति आचार्यविरचित श्रावकाचारविषैं
सप्तम परिच्छेद समाप्त भया।

अथ अष्टम परिच्छेदः ।

आगे छह प्रकार आवश्यककौ कहैहैं;—

जिनं प्रणम्य सर्वीयं सर्वज्ञं सर्वतो मुखम् ।
आवश्यकं मया षोढा संक्षेपेण निगद्यते ॥ १ ॥

अर्थ—जिनदेवकौं नमस्कार करिकै मोकरि छह प्रकार संक्षेपकरि आवश्यक कहिऐहै, कैसेहै जिनदेव सर्वीयं कहिऐ सर्वज्ञेयाकाररूप परिणया जो ज्ञान ता स्वरूपहै, वहुरिसर्वकाजाननेवालाहै, वहुरि सर्व तरफहै मुखजाका ऐसाहै,

भावार्थ—सर्वदर्शीहै ॥ १ ॥

आगमोऽनंतपर्यायो यतो जैनो व्यवस्थितः ।
अभिधातुं ततः केन विस्तरेण स शक्यते ॥ २ ॥

अर्थ—जातै जिनभाषित आगमहै सो अनतभेदस्वरूप तिष्टैहै तातै विस्तारसहित कौनकरि कहनेकौ समर्थ हूजिएहै ॥ २ ॥

मत्तोऽपि संति ये बालाश्चिभाकारेषु जंतुषु ।
अस्यावबोधतस्तेषामुपकारो भविष्यति ॥ ३ ॥

अर्थ—नाना प्रकार जीवनिकौ होतसंतै भी जे अज्ञानीहै तिनका इसके ज्ञानतै उपकार होयगा ।

भावार्थ—आगमतौ अनंतहै सो सर्व कौन कहिसकै परंतु इहां संक्षेपमात्र आवश्यकका स्वरूप कहिएहै, जाके जाने मोतै भी जे मंदज्ञानी है तिनका उपकार होयगा, ऐसा जानना ॥ ३ ॥

आवश्यकं न कर्त्तव्यं नैःफल्यादित्यसांप्रतम्।
प्रशस्ताध्यवसायस्य फलस्यात्रोपलब्धितः ॥ ४ ॥

प्रशस्ताध्यवसायेन संचितं कर्म नाश्यते।
काष्ठं काष्ठांतकेनेव दीप्यमानेन निश्चितम् ॥ ५ ॥

अर्थ—कोऊ कहै कि आवश्यक करना योग्य नाहीं, जातै ताके फलरहितपनाहै। ताकौ आचार्य कहैहैं—सो कहना अयुक्तहै जातैं इस आवश्यकविषै प्रशस्तपरिणामनिकी प्राप्ति है॥ ४ ॥बहुरि प्रशस्त-परिणाम करि संचयरूप जो कर्म सो निश्चयतैं नाशिएहै जैसैं जाज्वल्य-मान अग्निकरि काठ नाशिए तैसैं॥ ५ ॥

अर्थ—कोऊ कहै कि आवश्यकका किछू फल नाहीं तातैं आवश्यक न करना, ताकौ कह्या है कि आवश्यक क्रिया करणे तै भले परिणाम होय हैं तिन तै कर्मका नाश होय है तातैं आवश्यक क्रिया निष्फल नाहीं॥ ४–५ ॥

जायते न स सर्वत्र न वाच्यमिति कोविदैः।
स्फुटं सम्यक्कृते तत्र तस्य सर्वत्र संभवात्॥ ६ ॥

अर्थ—सो आवश्यक क्रिया सर्व जायगां न होय है ऐसे पंडितनि करि कहना योग्य नाही, जातै आवश्यक क्रियाकौ भलै प्रकार करते संतै सब जायगां संभवै है।

भावार्थ—कोऊ कहै कि आवश्यक सर्वत्र न होवै है ताकूं आचार्यनैं कह्या है कि भले प्रकार करे सर्वत्र होय है, यामै संदेह न करना॥६॥

न सम्यक्करणं तस्य जायते ज्ञानतो विना।
शास्त्रतो न विना ज्ञानं शास्त्रं तेनाभिधीयते॥ ७ ॥

अर्थ—आवश्यक क्रियाका भले प्रकार करना तिसके ज्ञान विना न होय है, वहुरि शास्त्रविना ज्ञान नाहीं ता कारण करि शास्त्र कहिए है ॥ ७ ॥

लाभपूजायशोऽर्थित्वे तस्य सम्यक्कृताधपि
प्रशस्ताध्यवसायस्य संभवो नोपलभ्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—लाभ पूजा यशके अर्थीपने करि वांछा सहित तिस आवश्यक क्रियाकौं भले प्रकार करे संतै भी प्रशस्त परिणामका होना न पाइए है ॥ ८ ॥

तदयुक्तं यतो नेदं सम्यक्करण मुच्यते ।
अत एवात्र मृग्यंते सम्यक्कृत्यधिकारिणः ॥ ९ ॥

अर्थ—सो लाभ पूजादिककी वाछा सहित कारण योग्य नाहीं जातैं वाछा सहित यहु कारण भला न कहिए है, इस ही तै इहां भले करने योग्यके अधिकारी हेरिए है ।

भावार्थ—भले प्रकार आवश्यक क्रियाका करनेवाला पुरुषका स्वरूप कहिए है ॥ ९ ॥

संसारदेहभोगानां योऽसारत्वमवेक्षते ।
कषायेंद्रिययोगानां जयनिग्रहरोधकृत् ॥ १० ॥

अर्थ—जो पुरुष संसार देह भोगनिका असारपना देखै है अर कषाय, इंद्रिय, योग, इनका यथाक्रम, जय, निग्रह, रोध करै है ।

भावार्थ—कषायनकौ जीतैहै इन्द्रियनिकौं दमै है, मन वचन कायके योगनकौ रोकै है सो आवश्यक क्रियाका अधिकारी है ॥ १० ॥

आगै ताका विशेष स्वरूप कहै है;—

अनेकयोनिपाताले विचित्रगतिपत्तने ।
जन्ममृत्युजरावर्त्ते भूरिकल्मषपाथसि ॥ ११ ॥

संसारसागरे भीमे दुःखकल्लोलसंकुले।
रागद्वेषमहानक्रे रौद्रव्याधिझषाकुले ॥ १२ ॥
चिरं वंभ्रम्यमाणानां जिनेंद्रपद वंदना।
दुराया जायतेऽत्यर्थमिति यो हृदि मन्यते ॥ १३ ॥

अर्थ—अनेक जोनि है पाताल जा विषै, बहुरि नानाप्रकार गति ही है पत्तन कहिए पुर जा विषै, अर जन्म् मृत्यु जरा ही है आवर्त्त कहिए भौरे जामै अर महापापही है जल जा विषैं अर दुःख रूप लहरन करि व्याप्त अर रागद्वेष ही है बडे नक्र जा विषै अर भयानक रोगरूप मच्छनि करि भरया ऐसा जो भयानक संसारसमुद्र ता विषै बहुत कालतै अतिशय करि भ्रमते जे जीव तिनकौं जिनेंद्रके चरणनिकी जो वंदना सो अतिशय करि दुर्लभ है ऐसा जो पुरुष हृदय विषै मानै है ॥ ११-१२-१३ ॥

बहुरि कहै है;—

अनर्थकारिणः कांताजननी जनकादयः।
स्वस्योपकारिणो योऽलं बुध्यते परमेष्ठिनः ॥ १४ ॥

अर्थ—स्त्री माता पितादिकनिकौ अनर्थके करनेवाले मानै है अर आपके उपकार करने वाले पंच परमेष्ठीनकौ मानै है ॥ १४ ॥

बहुरि कैसे है;—

सर्वाणि गृहकार्याणि परकार्याणि पश्यति।
शुद्धधीर्धर्मकार्याणि निजकार्याणि यःसदा ॥ १५ ॥
यौवनं जीवितं धिष्ण्यमैश्वर्यं जनपूजितम्।
नश्वरं वीक्षते सर्वं शरदभ्रमिवानिशम् ॥ १६ ॥
दर्शनज्ञानचारित्रत्रितयं भवकानने।
जानीते दुर्लभं भूयो भ्रष्टं रत्नमिवांबुधौ ॥ १७ ॥

मयूरस्येव मेघौघे वियुक्तस्येव बांधवे ।
तृषार्तस्येव पानीये विवद्धस्येव मोक्षणे ॥ १८ ॥

सव्याधेरिव कल्पत्वे विदृष्टेरिव लोचने ।
जायते यस्य संतोषो जिनवक्त्रविलोकने ॥ १९ ॥

परीषहसहः शांतो जिनसूत्रविशारदः ।
सम्यग्दृष्टिरनाविष्टो गुरुभक्तः प्रियंवदः ॥ २० ॥

आवश्यकमिदं धीरः सर्वकर्मनिषूदनम् ।
सम्यक्कर्तुमसौ योग्यो नापरस्यास्ति योग्यता ॥ २१ ॥

अर्थ—बहुरि जो सर्व गृहसंबंधी कार्यनकौ परके कार्य मानैहै, अर सुबुद्धी धर्मकार्यनकौं सदा अपने कार्य मानैहै ॥ १५ ॥

बहुरि जो यौवनकौं जीवनकौ घरकौ अर लोकमान्य ऐश्वर्यकौ सबकौ शरदके मेघसमान निरंतर विनासीक देखैहै ॥ १६ ॥

बहुरि संसारवनमैं दर्शज्ञानचारित्रके त्रितयकौ जैसै समुद्रविषै पड्या रत्न फेर दुर्लभहै तैसै मानैहै ॥ १७ ॥

बहुरि मेघनके समूहविषै मयूरनके हर्ष होय तथा बिछुरे पुरुषकै बांधवविषै हर्ष होय तथा प्यासकरि पीडित पुरुष कै जलविषैं हर्ष होय वा बँधेकै छूटने विषै हर्ष होय ॥ १८ ॥

वा रोगसहितकै नीरोगपनेमै हर्ष होय अंधेकै नेत्र विषै हर्ष होय तैसै जाकै जिनेद्रके मुख देखने विषै हर्ष होयहै ॥ १९ ॥

बहुरि क्षुधादि परीषहनिका सहनेवाला होय शांत होय जिनसूत्र-विषै प्रवीण होय सम्यग्दृष्टि होय मानरहित होय गुरुभक्त होय प्रिय-बोलनेवाला होय ॥ २० ॥

सो यहु धीर पुरुष सर्व कर्मका नाश करनेवाला जो यहु आवश्यक ताहि करने योग्य है, और पुरुषकै आवश्यक करनेकी योग्यता नाहीं; ऐसा जानना ॥ २१ ॥

आगै फेर कहैहैं;—

औचित्यवेदकः श्राद्धो विधान करणोद्यतः।
कर्मनिर्जरणाकांक्षी स्ववशीकृतमानसः ॥ २२ ॥
भक्तिको बुद्धिमानर्थी बहुमान परायणः।
पठनं श्रवणे योग्यो विनयोद्यमभूषितः ॥ २३ ॥

अर्थ—उचितपनेका जाननेवाला होय।

भावार्थ—यह कालादिक आवश्यकके उचितहै ऐसा जाकै ज्ञान होय, बहुरि श्रद्धावान होय, अर आवश्यकके विधान करनेमैं उद्यमी होय, अर कर्मकी निर्जराका वांछक होय, अर अपने वश कियाहै मन जानै ऐसा होय ॥ २२ ॥

बहुरि भक्तिमान् होय, बुद्धिमान होय धर्मार्थी होय महाविनयमैं तत्पर होय, अर पढनेविषै सुननेविषै योग्य होय, अर विनयसहित आवश्यकके उद्यम करि भूषित होय ॥ २३ ॥

आगै फेर कहै है;—

गुणाय जायते शांते जिनेंद्रवचनामृतम्।
उपशांतज्वरे पूतं भैषज्यमिव योजितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—रागद्वेषकी मंदतातै शांतभया जो पुरुष ताविषै जिनेंद्रका वचनामृत गुणके अर्थ हायहै, जैसै उपशांत भयाहै ज्वर जाका ऐसा पुरुषविषै योजित किया औषध जैसै गुणकै अर्थ होय तैसै ॥ २४ ॥

अयोग्यस्य वचो जैनं जायतेऽनर्थहेतवे।
यतस्ततः प्रयत्नेन मृग्यो योग्यो मनीषिभिः ॥ २५ ॥

अर्थ—जातैं अयोग्यपुरुषकै जिनेंद्रका वचन अनर्थनिमित्त होयहै।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी जिन वचनका प्रयोजन न जानि उलटा एकांत पकडि अपना विगाड करैहै, तातै पंडितनि करि यत्नसहित योग्यपुरुष हेरना योग्यहै ॥ २५ ॥

कषायाकुलिते व्यर्थं जायते जिनशासनम्।
सन्निपातज्वरालीढे दत्तं पथ्यमिवौषधम् ॥ २६ ॥

अर्थ—कषायकरि आकुलित पुरुषविषै जिनशासन निरर्थक होयहै, जैसै संनिपातज्वरसहित पुरुषविषै दिया हितरूप औषध व्यर्थ होय तैसैं।

भावार्थ—तीव्रकषायीकौ जिन वचन न रुचैहै, ऐसा जानना ॥२६॥

आगैं आवश्यक करनेवालेके चिह्न कहैहैं;—

सत्कथा श्रवणानंदो निंदाश्रवणवर्जनम्।
अलुब्धत्वमनालस्यं निंद्यकर्मव्यपोहनम् ॥ २७ ॥
कालक्रम व्युदासित्वमुपशांतत्वमार्दवम्।
विज्ञेयानीति चिह्नानि षडावश्यककारिणः ॥ २८ ॥

अर्थ—भलीकथाके सुननेमै तौ आनंद, अर परनिंदाके सुननेका त्याग, अर निर्लोभपना, अर आलस्यरहितपना, अर निंद्यकर्मका त्याग ॥ २७ ॥

अर कालके उलंघनेका त्यागीपना, अर मानरहितपना, इत्यादिक चिह्नहै ते षट आवश्यकका करनेवाला जो पुरुष ताके जानने योग्यहै ॥ २८ ॥

आगैं छह आवश्यकके नाम कहैहैं;—

सामायिकं स्तवः प्राज्ञैर्वन्दना सप्रतिक्रमा।
प्रत्याख्यानं तनूत्सर्गः षोढावश्यकमीरितम् ॥ २९ ॥

अर्थ—सामायिक १ स्तवन १ वंदना १ प्रतिक्रमण १ प्रत्याख्यान १ कायोत्सर्ग १ ऐसै छह प्रकार आवश्यक पंडितनि करि कह्याहै ॥ २९ ॥

द्रव्यतः क्षेत्रतः सम्यकालतो भावतो बुधैः ।
नामतो न्यासतो ज्ञात्वा प्रत्येकं तन्नियुज्यते ॥ ३० ॥

अर्थ—द्रव्यतै, क्षेत्रतैं, कालतै, भावतैं, नामतैं, स्थापनातै, भले प्रकार जानकर सो आवश्यक एक एक प्रति लगाइएहै।

भावार्थ—सामायिकादि छहौं क्रियानमैं नामादिक छह छह लगाइएहै, जैसैं—द्रव्यसामायिक, क्षेत्रसामायिक, कालसामायिक, भावसामायिक, नामसामायिक, स्थापनासामायिक। ऐसैंही स्तवादि विषैं लगाय लेना ॥ ३० ॥

आगैं सामायिकका स्वरूप कहैहै;—

जीविते मरणे योगे वियोगे विप्रिये प्रिये ।
शत्रौ मित्रे सुखे दुःखे साम्यं सामायिकं विदुः ॥ ३१ ॥

अर्थ—जीवनेमैं अर मरनेमै, संयोगमै अर वियोगमैं, अप्रियमै अर प्रियमैं, शत्रुमैं अर मित्रमै, सुखमैं अर दुःखमैं, समभावकौ समायिक कहैहैं।

भावार्थ—सर्वेही जीवना मरणा आदिको ज्ञेयपनेकरि समान जान करि रागद्वेष न करना सो सामायिक कहिऐ ॥ ३१ ॥

आगैं स्तवका स्वरूप कहैहैं;—

जिनानां जितजेयाना मनंत गुणभागिनाम् ।
स्तवोऽस्तावि गुणस्तोत्रं नामनिर्वचनं तथा ॥ ३२ ॥

अर्थ—जीतेहैं जीतनेयोग्य कर्म जिननै ऐसे जे जिन अर्हन्त तिनका जो गुणनिका स्तोत्र तथा नामकी निरुक्ति करना सो स्तव कह्याहै, कैसेहै जिन अनंतगुणके भजनेवाले ऐसे है ।

भावार्थ—जिनदेवके अनंतज्ञानादि गुणनिका स्तोत्र पढना तथा "कर्म वैरीनिकौ जीतै सो जिन" इत्यादि नामनि की निरुक्ति करना सो स्तव कहिए ॥ ३२ ॥

आगै वंदनाका स्वरूप कहैहैं;—

कर्मारण्यहुताशानां पंचानां परमेष्ठिनाम् ।
प्रणतिर्वंदनाऽवादि त्रिशुद्ध्या त्रिविधा बुधैः ॥ ३३ ॥

अर्थ—कर्मवनकौं अग्निसमान जे पंच परमेष्ठी तिनकौ नमस्कार करना सो मनवचनकायकी शुद्धि ताकरि तीनप्रकार वंदना पंडितनि करि कही ।

भावार्थ—पंच परमेष्ठीनकौं प्रणाम करणा सो वदना कहिए॥ ३३ ॥

आगै प्रतिक्रमणका स्वरूप कहैहैं;—

द्रव्यक्षेत्रादिसंपन्नदोषजालविशोधनम् ।
निंदागर्हा क्रियालीढं प्रतिक्रमणमुच्यते ॥ ३४ ॥

अर्थ—द्रव्य क्षेत्र आदिशब्दतै काल अर भाव इनविषै लगे जे दोष तिनके समूहका विशेष शोधना निंदा गर्हादिक्रिया सहित सो प्रतिक्रमण कहिएहै ।

भावार्थ—निंदा गर्हासहित लगे दोषनकौ याद करि निराकरण करना सो प्रतिक्रमण कहिए ॥ ३४ ॥

आगै प्रत्याख्यानका स्वरूप कहै है,—

नामादीनामयोग्यानां षण्णां त्रेधा विवर्जनम् ।
प्रत्याख्यानं समाख्यातमागम्यागोनिषिद्धये ॥ ३५ ॥

अर्थ—अयोग्य जे नामादिक कहिए नामस्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव छहौनकौं आगामी पापके निषेधके अर्थ मन वचन काय करि त्याग करना सो प्रत्याख्यान कह्याहै।

भावार्थ—आगामी पापका त्याग करनेकै अर्थि अयोग्य द्रव्यादिका त्याग करना सो प्रत्याख्यान कहिए॥ ३५॥

आगै कायोत्सर्गकौ कहैहैं;—

आवश्यकेषु सर्वेषु यथाकालमनाकुलः।
कायोत्सर्गस्तनूत्सर्गः प्रशस्तध्यानवर्द्धकः॥ ३६॥

अर्थ—सर्व आवश्यक क्रियानविषैं जिसकाल चाहिए तिसही काल आकुलतारहित शरीरविषैं ममत्वका त्याग सो प्रशस्त ध्यानका वढावने वाला कायोत्सर्ग है।

भावार्थ—सामायिकादि क्रियानिविषैं यथाकाल शरीरसै ममत्व त्यागना सो कायोत्सर्ग कहिए॥ ३६॥

आगै आवश्यकक्रियानिमैं आसनादिकका विधान कहै है;—

ज्ञेयास्तत्रासनं स्थानं कालो मुद्रा तनूत्सृतिः।
नामावर्त्तप्रमा दोषा षडावश्यक कारिभिः॥ ३७॥

अर्थ—छह आवश्यक करनेवाले पुरुषनि करि तहां आसन १ स्थान १ काल १ मुद्रा १ कायोत्सर्ग १ प्रणाम १ आवर्त्त १ प्रमाण दोष इतनी वस्तुका जानना योग्यहै॥३७॥

आगैं आसनका वर्णन करैं है;—

आस्यते स्थीयते यत्र येन वा वंदनोद्यतैः।
तदासनं विवोद्धव्यं देशपद्मासनादिकम्॥ ३८॥

अर्थ—वंदना करनेमैं उद्यमी जे पुरुष तिनकरि जाविषै वा जाकरि आस्यते कहिये स्थिररूप हूजिए सो देश कहिए क्षेत्र अर पद्मासनादिक आसन जानने योग्यहै। ऐसैं आसन शब्दकी निरुक्ति करी ॥ ३८ ॥

आगै आवश्यक करनेके अयोग्य क्षेत्रनिकौ कहैहै;—

संसक्तः प्रचुरच्छिद्रस्तृणपांश्वादिदूषितः।
विक्षोभको हृषीकाणं रूपगंधरसादिभिः ॥ ३९ ॥
परीषहकरो दंशशीतवातातपादिभिः।
असंबद्धजनालापः सावद्यारंभगर्हितः ॥ ४० ॥
आर्द्रीभूतो मनोऽनिष्टः समाधाननिषूदकः।
योऽशिष्ट जनसंचारः प्रदेशं तं विवर्जयेत् ॥ ४१ ॥

अर्थ—संसक्त कहिये स्त्रीपुरुष नपुंसकादिकनिकी भीड जहां होय बहुरि बहुत छिद्रनिकरि युक्त होय, अर तृण धूलि आदिकरि दूषित होय, बहुरि रूप गंधरस इत्यादिकनि करि इंद्रियनिकौ विशेष क्षोभ करनेवाला होय ॥ ३८ ॥ बहुरि शीत वात दंश आताप आदिकरि परीषहका करनेवाला होय, बहुरि असंबद्ध कहिए संबंधरहित निःप्रयोजन मनुष्यनिका जहां वचनालाप होय, बहुरि पापसहित आरंभ करि निंदित होय ॥ ४० ॥ चालो होय, मनकौ अनिष्ट होय, समाधानका नाश करनेवाला होय, अर नीचलोकका जहां संचार होय ऐसा होय ता क्षेत्रकौ त्यागै ॥ ४१ ॥

भावार्थ—आवश्यक करनेवाला पूर्वोक्त क्षेत्रकौ चित्तकौ क्षोभकारी जानि परित्याग करै ॥

आगै आवश्यक योग्य स्थानकौ कहैहैं;—

विविक्तः प्रासुकः सेव्यः समाधानविवर्द्धकः।
देवर्जुदृष्टिसंपातवर्जितो देवदक्षिणः ॥ ४२ ॥

जनसंचारनिर्मुक्तो ग्राह्यो देशो निराकुलः ।
नासन्नो नातिदूरस्थः सर्वोपद्रव वर्जितः ॥ ४३ ॥

अर्थ—एकांत होय, अर प्रासुक होय, सेव्य कहिए व्रतीन के सेवने-योग्य होय, अर समाधानका वढावनेवाला होय, अर देव कहिए जिन-चैत्यादिक तिनकी सूधी दृष्टिके पड़नेकरि रहित होय ।

भावार्थ—प्रतिमादिकके सन्मुख न होय, अर जिनचैत्यादिकके दाहना होय ॥ ४२ ॥ अर मनुष्यनिके आने जानेकरि रहित होय अर न अतिनिकट न अतिदूर होय, सर्व उपद्रवकरि वर्जित होय, ऐसा निराकुल क्षेत्र ग्रहण करना योग्यहै ।

भावार्थ—ऐसे क्षेत्रमै सामायिक करै ॥ ४३ ॥

आगै जापैं बैठै ताका स्वरूप कहैं हैं;—

स्थेयोऽछिद्रं सुखस्पर्शं विशब्दकमजंतुकम् ।
तृणकाष्ठादिकं ग्राह्यं विनयस्योपबृंहकम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—थिर होय, छिद्ररहित होय, सुखरूप होय स्पर्श जाका ऐसा होय, शब्दरहित होय, जीवरहित होय, वैराग्य का वढावनेवाला होय, ऐसा तृणकाष्ठादिकका साथस ग्रहण करना योग्य है ॥ ४४ ॥

आगैं आसनका स्वरूप कहैहैं;—

जंघाया जंघयाश्लेषे समभागे प्रकीर्त्तितम् ।
पद्मासनं सुखाधायि सुसाध्यं सकलैर्जनैः ॥ ४५ ॥

अर्थ—समभागविषै जंघाकरि जंघाका आश्लेष कहिए गाढा चिपटना होय सो सुखका आधार समस्त जननि करि सुखतैं साधनेयोग्य सो पद्मासन कह्याहै ॥ ४५ ॥

वुधैरुपर्यधोभागे जंघयोरुभयोरपि ।
समस्तयोः कृते ज्ञेयं पर्यंकासनमासनम् ॥ ४६ ॥

अर्थ—सर्व दोऊ जंघानको ऊपर अर अधोभागमैं करे संते पंडित-जननिकरि पर्यंकासन नामका आसन जानने योग्य है ॥ ४६ ॥

ऊर्वोरुपरि निक्षेपे पादयोर्विहिते सति ।
वीरासनं चिरं कर्त्तुं शक्यं वीरैर्न कातरैः ॥ ४७

अर्थ—दोऊ चरणनिकौं ऊरू कहिए जांघ ऊपरि धरे संते वीरासन आसन होयहै । या वीरासनकौ बहुत काल तांई वीर पुरुष ही करनेकौ समर्थहै, कायरसमर्थ नहींहै; ऐसा जानना ॥ ४७ ॥

युतपार्ष्णिभवे योगे स्मृतमुत्कुटुकासनम् ।
गवासनं जिनैरुक्तमार्याणां यतिवंदने ॥ ४८ ॥

अर्थ—दोउ एडीनके योगमे उत्कुटकासन जानना, बहुरि आर्यिका जब मुनिनकौ वंदना करैहै तब जिनभगवान करि गवासन नामका आसन कह्याहै ॥ ४८ ॥

विनयासक्तचित्तानां कृतिकर्मविधायिनाम् ।
न कार्यव्यतिरेकेण परमासनमिष्यते ॥ ४९ ॥

अर्थ—विनयविषै आसक्त चित्त जिनका ऐसे जे कृतिकर्म करनेवाले पुरुष तिनको कार्यविना और आसन न कहिएहै ।

भावार्थ—पद्मासन अर कायोत्सर्ग इन आसननिविना और आसन किछू कार्यविशेष होयतौ करै, कार्यविना दोयही आसन करना जोग्यहै, ऐसा जानना ॥ ४९ ॥

ऐसैं आसनका वर्णन किया । आगै स्थानका स्वरूप कहैहै;—

स्थीयते येन तत् स्थानं द्विःप्रकारमुदाहृतम् ।
वंदना क्रियते यस्मादूर्ध्वीभूयोपविश्य वा ॥ ५० ॥

अर्थ—जा करि स्थिर हूजिए सो स्थान दोय प्रकार कह्याहै जातै वंदना है सो खडेरहकरि वा वैठकरि करिये है ।

भावार्थ—खडे रहना वा वैठना ऐसा दोय प्रकार स्थान जानना ॥ ५० ॥

अगै कालका स्वरूप कहैंहै;—

घटिकानां मतं षट्कं संध्यानां त्रितये जिनैः।
कार्यस्यापेक्षया कालः पुनरन्यो निगद्यते ॥ ५१ ॥

अर्थ—संध्यानिका कालत्रय कहिए प्रभात मध्याह्न सायंकाल इन तीनौ संध्यानविषै छह घडी काल जिनदेवनिनै आवश्यकका कहिएहै, बहुरि कार्यकी अपेक्षा करि और कहिएहै ।

भावार्थ—मुख्य काल तौ छहघडीही काल कह्याहै बहुरि कार्यकी अपेक्षाकरि दोय घडी आदिभी कह्याहै ॥ ५१ ॥

आगैं मुद्राका स्वरूप कहै हैं;—

जिनेंद्रवंदनायोगमुक्ताशुक्तिविभेदतः ।
चतुर्विधोदिता मुद्रा मुद्रामार्गविशारदैः ॥ ५२ ॥

अर्थ—जिनेंद्रमुद्रा १ वंदना मुद्रा १ योगमुद्रा १ मुक्ताशुक्तिमुद्रा १ इन भेदनिकरि मुद्राके मार्गविषैं प्रवीण जे पुरुष तिनकरि च्यार प्रकार मुद्रा कहीहै ॥ ५२ ॥

आगै जिनमुद्राका स्वरूप कहैंहै;—

जिनमुद्रांसरं कृत्वा पादयोश्चतुरंगुलम् ।
ऊर्द्धजानोरवस्थानं प्रलंबितभुजद्वयम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—दोऊ पादनका चार अंगुल अंतर करिकै घुटनेके ऊपर स्थित ऐसी लंबायमान दोऊ भुजा जामै सो जिनमुद्रा जानना ॥५३॥

आगैं वंदनामुद्रका स्वरूप कहैहैं;—

मुकुलीभूतमाधाय जठरोपरि कूर्परम् ।
स्थितस्य वंदना मुद्रा करद्वन्द्वं निवेदितम् ॥ ५४ ॥

अर्थ—मुकुलीभूत कहिए कमलकी डोडीसमान अर पेटके ऊपरहै कुटनी जाविषै, ऐसैं विनती करनेवाला हस्तयुगलकौ धारिकै तिष्ठ्या जो पुरुष ताकै वंदनामुद्रा कहीहै ॥ ५४ ॥

आगै योग मुद्राका स्वरुप कहै हैं।

जिनाः पद्मासनादीनामंकमध्ये निवेशनम्।
उत्तानकरयुग्मस्य योगमुद्रां बभाषिरे ॥ ५५ ॥

अर्थ—ऊँचाहै हथेलीनका मुख जाका ऐसा हस्तयुगलकौ पद्मास-नादिकनिकी ओलीके मध्यविषै जो धारना ताहि जिन जे अर्हंतादिक ते योगमुद्रा कहैहैं ॥ ५५ ॥

आगै मुक्ताशुक्तिमुद्राका स्वरूप कहैहैं;—

मुक्ताशुक्तिर्मता मुद्रा जठरोपरि कूर्परम्।
ऊर्द्ध्वजानोः कर द्वंद्वं संलग्नांगुलि सूरिभिः ॥ ५६ ॥

अर्थ—पेटके ऊपरहै कूर्पर कहिए कुहनी जाविषै अर घुटनेनके ऊपरहै हस्तयुगल जाके अर भले प्रकार लग रहीहै अंगुली जाकी सो मुक्ताशुक्तिमुद्रा आचार्यनि करि कहीहै ॥५६॥

आगै कायात्सर्गका स्वरूप कहैहैं;—

त्यागो देहममत्वस्य तनूत्सृतिरुदाहृता।
उपविष्टोपविष्टादिविभेदेन चतुर्विधा ॥ ५७ ॥

अर्थ—शरीरके ममत्वका जो त्याग सो कार्योत्सर्ग उपविष्टोपवि-ष्टादि भेदकरि च्यार प्रकार कह्याहै ॥ ५७ ॥

तहां प्रथम उपविष्टोपविष्ट कार्योत्सर्गकौ कहैहै;—

आर्त्तरौद्रद्वयं यस्यामुपविष्टेन चिंत्यते।
उपविष्टोपविष्टाख्या कथ्यते सा तनूत्सृतिः ॥ ५८ ॥

अर्थ—जाविषैं आर्त्त रौद्रध्यान दोनौं बैठ करि चिंतिए सो उपविष्टोपविष्टनामा कायोत्सर्ग कहिए है।

भावार्थ—जामैं जीवके परिणाम वा शरीर दोनौं पडतेहै तातैं उपविष्टोपविष्ट कह्याहै॥ ५८॥

आगै उपविष्टोत्थित कार्योत्सर्गकौ कहैहैं;—

धर्मशुक्लद्वयं यस्यामुपविष्टेन चिंत्यते।
उपविष्टोत्थितां संतस्तां वदंति तनूत्सृतिम्॥ ५९॥

अर्थ—जाविषैं धर्म अर शुक्ल दोनों ध्यान बैठकरि चिंतिए ताहि संतजन उपविष्टोत्थित कायोत्सर्ग कहैंहैं।

भावार्थ—इसमैं शरीर तौ बैठाहै अर परिणाम चढतैंहै, तातै उपविष्टोत्थित कह्याहै॥ ५९॥

आगै उत्थितोपविष्ट कायोत्सर्ग कहैहै;

आर्त्तरौद्रद्वयं यस्यामुत्थितेन विधीयते।
तामुत्थितोपविष्टाह्वां निगदंति महाधियः॥ ६०॥

अर्थ—जाविषै आर्त्त रौद्र दोनौं ध्यान ठाडे होयकरि करिए ताकूं महाबुद्धिपुरुष उत्थितोपविष्ट नाम कायोत्सर्ग कहैंहै।

भावार्थ—जा विषै परिणाम तो पड़तेहै अर शरीर खड़ाहै, तातैं उत्थितोपविष्ट कह्याहै॥ ६०॥

आगै उत्थितोत्थित कायोत्सर्ग कहैहै;—

धर्मशुक्लद्वयं यस्यामुत्थितेन विधीयते।
उत्थितोत्थितनामानं तं भाषंते विपश्चितः॥ ६१॥

अर्थ—जाविषैं धर्म शुक्ल दोनों ध्यान ठाढे होय करि करिए ताकौ उत्थितोत्थित कायोत्सर्ग कहैहैं।

भावार्थ—जा विषै परिणाम चढतहै अर शरीर भी खडाहै तातै उत्थितोत्थित कह्याहै, ऐसा जानना ॥ ६१ ॥

आगै प्रणामका स्वरूप कहैहै;—

एकद्वित्रिचतुः पंचदेहांशप्रतेर्मतः ।
प्रणामः पंचधा देवैः पादानतनरामरैः ॥ ६२ ॥

अर्थ—एक दोय तीन च्यार पाच जे शरीरके अंग तिनके नमनतैं पांच प्रकार प्रणाम जिनदेवनिनै कह्याहै, जिनदेव कैसेहै जिनके चरननकौ सर्वतरफतै देव अर मनुष्य नमैहै ॥ ६२ ॥

एकांगः शिरसो नामे सद्व्यंगः करयोर्द्वयोः ।
त्रयाणां मूर्द्धहस्तानां सत्र्यंगो नमने मतः ॥ ६३ ॥
चतुर्णां करजानूनां नमने चतुरंगकः ।
करमस्तकजानूनां पंचागः पंचक्ष नते ॥ ६४ ॥

अर्थ—एक मस्तकहीके नमावने विषैं एकांग नमस्कार कहिए अर दोऊ हाथनके नमावनेमै द्व्यंग कहिए दोय अंगनि करि नमस्कार कहिए, अर मस्तक अर दोयहाथके नमावनमैं त्र्यंग कहिए तीन अंग करि नमस्कार कह्या है ॥ ६३ ॥ अर दोय हाथ अर दोय घुटने इन च्यारौं नमनमै च्यार अंगनिकरि नमस्कार कह्याहै, अर दोय हाथ अर एक मस्तक अर दोय धूंटे इन पाचनकौ नमाये संते पंचांग नमस्कार है । ऐसा जानना ॥ ६४ ॥

आगै आवर्त्तकका स्वरूप कहैहै;—

कथिता द्वादशावर्त्ता वपुर्वचनचेतसाम् ।
स्तवसामायिकाद्यंतपरावर्त्तनलक्षणाः ॥ ६५ ॥

अर्थ—शरीर वचन चित्त इनका स्तवन अर सामायिकके आदि अंतमै आवर्त्तन कहिए फेरनाहै लक्षण जिनका ऐसे वारह आवर्त्त कहैहै ।

भावार्थ—सामयिकादिकके आदि अंतमै मन वचन कायके योगकौं हाथ जोडिकै तीन वार भक्ति सहित पलटना तब एकवार मस्तक नवावना, ऐसै च्यार वार मस्तस नवावनेमै बारह आवर्त्त जानना ॥ ६५॥

आगै कायोत्सर्गकी संख्या कहैहैं;—

अष्टविंशतिसंख्यानाः कायोत्सर्गा मता जिनैः।
अहोरात्रगताः सर्वे षडावश्यककारिणाम् ॥ ६६ ॥

अर्थ—छह आवश्यक करनेवालेनके रात्रिदिनविषैं सर्व अठ्ठाईस कायोत्सर्ग जिनदेवनै कहेहै ॥ ६६ ॥

आगै ते अठ्ठाईस कायोत्सर्ग कहां कहां होयहैं तिनका स्वरूप कहैहैं,—

स्वाध्याये द्वादश प्राज्ञैर्वंदनायां षडीरिताः।
अष्टौ प्रतिक्रमे योगभक्तौ तौ द्वावुदाहृतौ ॥ ६७ ॥

अर्थ—पंडितनिनै स्वाध्यायविषै वारह कायोत्सर्ग कहेहैं, अर वंदनामै छह कहेहै अर प्रतिक्रममणविषै आठ कहेहै अर योगभक्तिविषै ते दोय कायोत्सर्ग कहेहै। ऐसै सर्व अठ्ठाईस कायोत्सर्ग करनेका अवसर जानना ॥ ६७ ॥

आगै कौन कायोत्सर्ग कितने उच्छ्वास ताईं करणा ताका प्रमाण कहैहैं;—

अष्टोत्तरशतोच्छ्वासः कायोत्सर्गः प्रतिक्रमे।
सांध्ये प्राभातिके वार्द्धमन्यस्तत्सप्तविंशतिः ॥ ६८ ॥

अर्थ— एकसौ आठ उछ्वासमात्र कायोत्सर्ग संध्यासंबंधी प्रतिक्रमणमैं कह्याहै, अर प्रभातसंबधी प्रतिक्रमणमें अर्द्ध कहिए चौवन उच्छ्वासमात्र कायोत्सर्ग कह्याहै, बहुरि और कायोत्सर्ग सत्ताईस उच्छ्वासमात्र कह्याहै ॥ ६८ ॥

सप्तविंशतिरुच्छ्वासाः संसारोन्मूलनक्षमे ।
संति पंचनमस्कारे नवधा चिंतिते सति ॥ ६९ ॥

अर्थ—संसारकेनाश नाश करनेमै समर्थ जो पंचनमस्कार मंत्र ताका नव प्रकार चिंतवन करे संते सत्ताईस उच्छ्वास होयहै ।

भावार्थ—एक णमोकारमंत्रका जाप तीन उच्छ्वासमैं करै ऐसै नव णमोकारके जापमै सत्ताईस उच्छ्वास जानना ॥ ६९ ॥

प्रतिक्रमद्वयं प्राज्ञैः स्वाध्यायानां चतुष्टयम् ।
वंदना त्रितयं योगभक्तिद्वितयमिष्यते ॥ ७० ॥

अर्थ—प्रतिक्रमण दोय, स्वाध्याय च्यार, वंदना तीन, योगभक्ति दोय पंडितनि करि कहिएहै ॥ ७० ॥

उत्कृष्टश्रावकेणैते विधातव्याः प्रयत्नतः ।
अन्यैरेते यथाशक्ति संसारांतं यियासुभिः ॥ ७१ ॥

अर्थ—जे प्रतिक्रमणादि पूर्वै कहे ते उत्कृष्ट श्रावककरि भले प्रकार जत्नतै करणा योग्यहै, वहुरि और जे संसारके पार जानेके इच्छुकहै तिनकरि प्रतिक्रमणादिक जैसी शक्ति होय तैसै करणा योग्यहै ॥७१॥

इच्छाकारं समाचारं संयमासंयमस्थितिः ।
विशुद्धवृत्तिभिः सार्द्धं विदधाति प्रियंवदाः ॥ ७२ ॥

अर्थ—संयमासंयमविषैं है स्थिति जाकी, भावार्थ—एकही समय त्रस-हिंसाका त्यागी अर स्थावरहिंसाका त्यागी ऐसा देशव्रती, प्रिय वचन-का वोलनेवाला, सो निर्मल है प्रवृत्ति जिनकी ऐसे जे आचार्यादिक तिनकै साथ इच्छाकारनामा समाचारकौ करैहै ।

भावार्थ—श्रावकहै सो आचार्यदिकके उपदेशमै इच्छा करैहै, कहैहै कि हे भगवन् ! आप कह्या सो मै इच्छूं हू । ऐसा जानना ॥ ७२ ॥

वैराग्यस्य परां भूमिं संयमस्य निकेतनम्।
उत्कृष्टः कारयत्येष मुंडनं तुंडमुंडयोः ॥ ७३ ॥

अर्थ—उत्कृष्ट श्रावक है सो वैराग्यकी परम भूमिका अर संयमका ठिकाना ऐसा, तुंड कहिये मुखडाढी मूंछका अर मुंड कहिए मूंडके वालका मुंडन जो मूडना ताहि करावैहीहै।

भावार्थ—ग्यारह प्रतिमाका धारी ऊत्कृष्ट श्रावक डाढी मूछके वाल कतरावैहै, ऐसा जानना ॥ ७३ ॥

केवलं वा सवस्त्रं वा कौपीनं स्वीकरोत्यसौ।
एकस्थानान्नपानीयो निंदगर्हापरायणः ॥ ७४ ॥

अर्थ—यहु उत्कृष्ट श्रावकहै सो केवल कौपीन वा वस्त्रसहित कौपीन कौं अंगीकार करैहै, कैसाहै यहु एक स्थानविषै हीहै अन्नपानीका लेना जाकै अर आपकी निदा अर गर्हा विषै तत्परहै ॥ ७४ ॥

स धर्मलाभशब्देन प्रतिवेश्म सुधोपमम्।
सपात्रो याचते भिक्षां जरामरणसूदनीम् ॥ ७५ ॥

अर्थ—सो श्रावक पात्रसहित घर घर प्रति अमृत समान धर्मलाभ शब्द करि जरा मरणकी नाश करनेवाली भिक्षाकौ याचैहै, ऐसा जाना ॥ ७५ ॥

आगैं वंदनाके वत्तीस दोपनिका वर्णन करैहैं;—

समस्तादरनिर्मुक्तो १ मदाष्टकवशीकृतः २।
प्रतीक्ष्य पीडताकारी २ कूर्चमूर्द्धजकुंचकः ४ ॥ ७६ ॥
चलयन्निखिलं कायं दोलारूढ इवाभितः ५।
अग्रतः पार्श्वतः पश्चाद्रिंषन् कूर्म इवाभितः ६ ॥ ७७ ॥
करटी वांकुशारूढः कुर्वन् मूर्द्धनतोन्नती ७।
क्षिप्रं मत्स्य इवोत्प्लुत्य परेषां निपतन् पुरः ८ ॥ ७८॥

कुर्वन् वक्षोभुजद्वंद्वं विज्ञप्तीं द्राविडीमिव ९।
पूज्यात्मासादनाकारी १० गुर्वादिजनर्भ षितः ११॥७९॥
भयसप्तकवित्रस्तः १२ परिवारर्द्धिगर्वितः १३।
समाजतो वहिर्भूय किंचिल्लज्जाकुलाशयः १४ ॥ ८० ॥
प्रतिकूलो गुरोर्भूत्वा १५ कुर्वाणो जल्पनादिकम् १६ ॥
कस्यचिदुपरि क्रुद्धस्तस्याकृत्वा क्षमां त्रिधा १७ ॥८१॥
ज्ञास्यते वंदनां कृत्वा भ्रमयँस्तर्जनीमिति १८।
हसनोद्घट्टने कुर्वन् १९ भृकुटी कुटिलालकः २०॥८२॥
निकटीभूय गुर्वादे २१ राचार्यादिभिरीक्षितः २२।
करदानं गणेर्मत्वा २३ कृत्वा दृष्टिपथं गुरोः २४॥८३॥
लब्ध्वोपकरणादीनि २५ तेषां लाभाशयापि च २६।
असंपूर्णविधानेन २७ सूत्रीदितपिधायकम् २८ ॥८४॥
कुर्वन् मूक इवात्यर्थं हुंकारादि पुरः सरः २९।
वंदारूणां स्वशब्देन परेषां छादयन् ध्वनिम् ३०॥८५ ॥
गुर्वादेरग्रतो भूत्वा ३१ मूर्द्धोपरिक्रमभ्रमी ३२।
द्वात्रिंशदिति मोक्तव्या दोषा वंदनकारिणाम् ॥ ८६ ॥

अर्थ—समस्त आदररहित क्रियाकर्म करना सो अनादृत दोषहै १ बहुरि जात्यादि अष्टमदके वशीभूत भया वंदना करै सो स्तब्ध दोषहै २ बहुरि प्रतीक्ष्य कहिए देखकरि अंगनकौ पीडै दाबै सो पीडित दोष है ३ बहुरि डाढीके वा मूंछके सिरके वालनकौं मरोडै सो कुंचित दोषहै ४ बहुरि डोलामै बैठेकी ज्यो समस्त शरीर चलाव्रतासता वंदना करै सो दोलायित दोषहै ५ बहुरि आगेतै पसवाडेतै पीछेतै कछवेकी ज्यौ 'तरफसै चेष्टा करैं अंग संकोचै वा विस्तारै सो कच्छपैंगित दोषहै ६ बहुरि हाथके अगूटाकौ मस्तकविपैं अंकुशकी ज्यो लगाय करकै वाकी ज्यों

मस्तककौं नींचा ऊंचा करै सो अंकुशित दोषहै ७ बहुरि मच्छकी ज्यों उछलकरि औरनके आगैं पडै वा मछलीकी ज्यौं तडफडावै सो मत्स्योद्वर्त्तदोषहै ८ बहुरि द्रविड देशके पुरुषकी विनतीसमान वक्षस्थलपैं दोऊ हाथ करकै वंदना करै सो द्राविडीविज्ञप्ति दोषहै तथा याहीका नाम वेदिकाबद्ध दोषहै ९ बहुरि आचार्यादिक पूज्य पुरुषनकी विराधना करता वंदना करै सो आसादना दोषहै १० बहुरि गुरु आदिकके भयतैं वंदना करै सो विभीत दोषहै ११ बहुरि जो मरणादिक सात भयकरि भयभीत भया वंदना करै सो भय दोषहै १२ बहुरि परिवार-ऋद्धि करि गर्वित भया संता वंदना करै सो ऋद्धिगौरव दोषहै १३ बहुरि साधर्मीनके समाजतै बाहिर होय करि मानौ लज्जातैं किंचित् आकुल भया वंदना करै सो लज्जित दोषहै १४ बहुरि गुरुकै प्रतिकूल होयकरि वंदना करै सो प्रतिकूलदोषहै १५ बहुरि वचनालाप आदि करता संता वंदना करै सो शब्ददोष है १६ बहुरि काहूकै ऊपर क्रोध-रूप भया तामैं मन वचन कायकरि क्षमा न करायकै वंदना करै सो प्रदुष्ट दोषहै १७ बहुरि कोई जाणैगा ऐसै वंदना करि अंगुलीकौ भ्रमावै सो मनो दुष्टदोषहै १८ बहुरि हंसना अर अंग घिसना इनकौ करता संता वंदना करै सो हसनोद्धदन दोषहै १९ बहुरि भौंह टेडीकरि वंदना करै सो भृकुटीकुटिल दोषहै २० बहुरि गुरु आदिकनिके अति-निकट होय करि वंदना करै सो प्रविष्ट दोषहै २१ बहुरि आचार्यादि-कनि करि देख्या संता वंदना करै,—

भावार्थ—आचार्यादिकनिकै आगै तौ भले प्रकार करै अन्यथा यद्वा तद्वा करै सो दृष्टदोषहै २२ संघाविषैं करदान मानकरि वंदना करै,

भावार्थ—संघके खुशी रहनेके अर्थ वा संघतै भक्त्यादिककी वांछा करि वंदना करै सो करमोचन दोषहै २३ बहुरि गुरूनकी

आंख्यां छिपाय वंदना करै सो अदृष्ट दोषहै २४ बहुरि उपकरणादि पाय करि वंदना करै सो आलब्ध दोषहै २५ बहुरि तिन उपकारणादिकनके मिलनेके वांछा करि वंदना करै सो अनालब्ध दोषहै २६ बहुरि असंपूर्ण विधान करि कहिए काल शब्द अर्थ इत्यादिक करि हीन वंदना करै सो हीनदोषहै २७ बहुरि सूत्रके अर्थकौं ढांक करि वंदना करै सो पिधायिक दोषहै २८ बहुरि गूंगेकी ज्यौ अतिशय करि हुंकारादि करता वंदना करै सो मूकदोषहै २९ बहुरि और वंदना करनेवालेनके शब्दनकौ ढापकै वंदना करै, सो दर्दुर दोषहै ३० बहुरि गुरु आदिकनि कै आगै होय करि वंदना करै सो अग्र दोषहै ३१ बहुरि अंतमै वंदनाकी चूलिकामै क्रम भूलि जलदी करै,

भावार्थ—जब वंदना थोडीसी बाकी रहै तब जलदी जलदी करै क्रम भूलि जाय सो उत्तर चूलिक दोषहै ३२ या प्रकार बत्तीस दोष वंदना करनेवालेनकौं त्यागने योग्यहैं ॥ ६८ ॥

क्रियमाणा प्रयत्नेन क्षिप्रं कृषिरिवेप्सितम् ।
निराकृतमला दत्ते वंदना फलमुल्वणम् ॥ ८७ ॥

अर्थ—दूर करेहैं मल जाके ऐसी यत्नसै करि भई जो वंदना सो वांछित महाफलकौ देयहै, जैसै दूर करेहैं तृण कंटकादि मल जाके ऐसी यत्न करि करी भई खेती महाफल देय तैसैं, ऐसा जानना ॥ ८७ ॥

आगै कायोत्सर्गके बत्तीस दोप कहैहै;—

स्तब्धीकृतैकपादस्य स्थानमश्वपतेरिव १ ।
चलनं वातधूताया लताया इव सर्वतः २ ॥ ८८ ॥
श्रयणं स्तंभकुटयादेः ३ पट्टकाद्युपरिस्थितिः ४ ।
उपरि मालमालंब्य शिरसावस्थितिः कृता ५ ॥ ८९ ॥

निगडेनेव बद्धस्य विकटांघ्रिखस्थितिः ६ ।
कराभ्यां जघनाच्छादः किरातयुवतेरिव ७ ॥ ९० ॥
शिरसो नमनं कृत्वा ८ विधायोन्नमनस्थितिः ९ ।
उन्नमय्य स्थितिर्वक्षः शिशोर्धात्र्या इव स्तनम् १० ॥ ९१ ॥
काकस्येव चलाक्षस्य सर्वतः पार्श्ववीक्षणम् ११ ।
ऊर्द्ध्वाधः कंपनं मूर्ध्नः खलीनार्त्तहरेरिव १२ ॥ ९२ ॥
स्कंधारूढगजस्येव कृतग्रीवानतोन्नती १३ ।
सकपित्थकरस्येव मुष्टिवंधनकारिणः १४ ॥ ९३ ॥
कुर्वतः शिरसः कंपं १५ मूकसंज्ञाविधायिनः १६ ।
अंगुलीगणनादीनि १७ भ्रूनृत्यादिककल्पनम् १८ ॥ ९४ ॥
मदिराकुलितस्येव घूर्णनं १९ दिगवेक्षणम् २० ।
ग्रीवोर्द्ध्वनयनं भूरि २१ ग्रीवाधोनयनादिकम् २२ ॥ ९५ ॥
निष्ठीवनं २३ वहुस्पर्शः २४ प्रपंचवहुला स्थितिः २५ ।
सूत्रोदितविधेर्नूनं २६ वयोपेक्षा विवर्जनम् २७ ॥ ९६ ॥
कालापेक्षव्यतिक्रांतिः २८ व्याक्षेपासक्तचित्तता २९ ।
लोभाकुलितचित्तत्वं ३० पापकार्योद्यमः परः ३१ ॥९७॥
कृत्याकृत्यविमूढत्वं ३२ द्वात्रिंशदिति सर्वथा ।
कायोत्सर्गविधेर्दोषास्त्याज्या निर्जरणार्थिभिः ॥ ९८ ॥

अर्थ—घोड़ेकी ज्यौं एक पांव उठाय करि खडै रहना सो घोटकदोषहै १ वहुरि पवनकरि हली जो लता ताकी ज्यौं सर्व तरफ चलना सो लतादोषहै २ वहुरि थंभ भीत आदिका आसरा लेना सो स्तंभकुड्यदोषहै ३ वहुरि पाट आदिके ऊपर तिष्ट करि कायोत्सर्ग करै सो पट्टिकादोषहै ४ वहुरि सिरके ऊपर माताकौं अवलंवकैं तिष्टना सो मालादोषहै ५ वहुरि वेड़ीकरि वंधे पुरुषकी ज्यौ टेढे चरण धारि तिष्टना

सो निगडदोषहै ६ बहुरि भीलकी स्त्रीकी ज्यौ हाथनकरि जंघान कौ ढांपना सो किरातयुवति दोषहै ७ बहुरि शिरकौ नमाय करि तिष्ठना सो शिरोनमन दोषहै ८ बहुरि ऊंचा शिर करकै तिष्ठना सो उन्नमन दोषहै ९ बहुरि बालककौ धायके स्तनकी ज्यौ छातीकौ ऊंची करकै तिष्ठना सो धात्री दोषहै १० बहुरि कागलाकी ज्यो चंचल नेत्रका सर्वतरफ पसवाडेनका देखना सो वायसदोषहै ११ बहुरि लगामकरि पीडित घोडेकी ज्यों ऊपर नीचै मस्तकका नवावना सो खलीन दोषहैं १२ बहुरि कंधापर आरूढहै पुरुष जाकै ऐसे गजकी ज्यौं ग्रीवाका नवावना ऊंचाकरना सो गजदोषहै वा याहीका नाम युगदोषहै १३ बहुरि कैथसहित हस्तकी ज्यो मूठी बंधन करनेवालेके सो कपित्थदोष है १४ बहुरि सिरका कंपावना सो शिरः प्रकंपित दोषहै १५ बहुरि गूंगेकी ज्यौ नासिकादि अंगनिकी सैनानी करनेवालेकै मूकदोषहै १६ बहुरि कायोत्सर्गमै अंगुली गिनना सो अंगुली दोषहै १७ बहुरि कायोत्सर्गमै भृकुटी नचावना आदि करै सो भ्रूदोषहै १८ बहुरि मदिराकरि आकुलित पुरुषकी ज्यो घूमै सो मदिरा पायी दोष है १९ बहुरि कायो-त्सर्गमैं दशौ दिशान प्रति देखना सो दिगवेक्षणदोषहै २० बहुरि ग्रीवाकौं बहुत ऊपर करना सो ग्रीवोर्द्धनयन दोषहै २१ बहुरि ग्रीवाकौ नीची करना इत्यादि ग्रीवाधोनयनादि दोषहै २२ बहुरि खकारना सो निष्ठी-वनदोषहै २३ बहुरि अंगका स्पर्शना सो वपुःस्पर्शन दोषहै २४ बहुरि माया करि बहुत प्रपंचसहित तिष्ठना सो प्रपंचबहुल दोष है २५ बहुरि सूत्रभाषितविधिकी हीनता करनी सो विधिन्यून दोषहै २६ बहुरि वृद्धादि वयकी अपेक्षादिकका त्यागना,

भावार्थ—अपनी अवस्था विना देखे कायोत्सर्ग करना सो वयोपे-क्षादिवर्जन दोषहै २७ बहुरि कालकी अपेक्षाका उल्लंघन करना

कायोत्सर्गके काल कायोत्सर्ग न करना सो कालापेक्ष व्यतिक्रात दोषहै २८ बहुरि चित्तकी विक्षिप्तताके कारणमै आसक्तचित्तपनां सो आक्षेप सक्तचित्तता दोपहै २९ बहुरि लोभकरि आकुलित चित्तपनां सो लोभाकुलित दोषहै ३० वहुरि कायोत्सर्गविषै पाप कार्यमै परम उद्यम करना सो पापकार्योद्यम दोषहै ३१ वहुरि करने योग्य न करने योग्य-विषै मूढपना सो मूढ दोषहै ३२। या प्रकार कायोत्सर्गकी विधिके बत्तीस दोपहै, ते निर्जराके अर्थी जे पुरुषहैं तिनकरि सर्वथा त्यागना योग्यहै ॥ ८७—९८ ॥

समाहितमनोवृत्तिः कृतद्रव्यादिशोधनः।
विविक्तं स्थानमास्थाय कृतेर्यापथशोधनः ॥ ९९ ॥
गुर्वादिवंदनां कृत्वा पर्यंकासनमास्थितः।
विधाय वंदनामुद्रां सामान्योक्तनमस्कृतिः ॥ १०० ॥
ऊर्द्धः सामायिकस्तोत्रं समुक्तामुक्तमुद्रकः।
पठित्वा वार्त्तितावर्त्तौ विदधाति तनूत्सृतिम् ॥ १०१ ॥
कृत्वाजैनेश्वरीं मुद्रां ध्यात्वा पंचनमस्कृतिम्।
उक्त्वा तीर्थंकरस्तोत्रमुपविश्य यथोचितम् ॥ १०२ ॥
चैत्यभक्तिं समुच्चार्य भूयः कृत्वा तनूत्सृतिम्।
उक्त्वा पंचगुरुस्तोत्रं कृत्वा ध्यानं यथावलम् ॥ १०३ ॥
विधाय वंदनां सूरेः कृतिकर्मपुरः सराम्।
गृहीत्वा नियमं शक्त्या विधत्ते साधुवंदनाम् ॥ १०४ ॥
आवश्यकमिदं प्रोक्त नित्यं व्रतविधायिनाम्।
नैमित्तिकं पुनः कार्यं यथागममतंद्रितैः ॥ १०५ ॥

अर्थ—एकाग्र है मनकी वृत्ति जाकी अर करीहै द्रव्यादिक कौं शोधना जानै सो एकांत स्थानपै तिष्ठकरि करयाहै ईर्यापथका शोधन जानैं ॥ ९९ ॥

गुरु आदिकनिकी वंदना करकै पर्यंकासनपरि तिष्ठया वंदनामुद्राकौ रचिकै सामान्यपनैं कह्याहैं नमस्कार जानै ॥ १०० ॥

ता उपरात सामायिकस्तोत्रकौ भले प्रकार कहिकै छोड़ीहै मुद्रा जानै सो पाठ पढकै जान्याहै आवर्त्त जानै ऐसा पुरुषहै सो कायोत्सर्गकौ करैहै ॥ १०१ ॥

वहुरि जैनश्वरी मुद्राकौ करिकै अर पंच नमस्कार मंत्रका ध्यान करकै अर तीर्थंकरनिका स्तोत्र कहिकै यथायोग्य वैठकरि ॥ १०२ ॥

चैत्य भक्तिका उच्चारन करि फेर कायोत्सर्ग करिकै वहुरि पंच गुरुनिके स्तोत्रकौं कहिकै वहुरि जैसा बल होय तैसा ध्यान करिकै ॥ २०३ ॥

वहुरि कृतिकर्मपूर्वक आचार्यकी वंदनाकौ करिकै फेर शक्ति माफिक नियमकौ ग्रहण करि साधुवंदनाकौ करै ॥ १०४ ॥

यहु आवश्यक व्रत करने वालेनकौं नित्य कहा । वहुरि आलस्य रहित पुरुषनि करि नैमित्तिक कहिए पूर्वआदिका निमित्त पाया सो जैसा आगममै कह्या तैसा करना योग्यहै ॥ १०५ ॥

भावार्थ—एकाग्र चित्त होयकै अर द्रव्यक्षेत्रादिक शोधनकरि एकांतस्थानमै तिष्टकै प्रथम ईर्यापथ दंडक पढै, फेर गुरु आदिकनिकी वंदना करकै पर्यंकासन तिष्टिकै पूर्वोक्त वंदनामुद्रा रचिकैं कायोत्सर्ग करै, फेर पूर्वोक्त जैनेश्वरी मुद्रा करिकै पंचनमस्कारका ध्यान करै फेर तीर्थंकरनिका स्तोत्र पढकै यथायोग्य बैठै, फेर पंचपरमेष्ठीनिका स्तोत्र पढकै शक्तिसारू ध्यान करै फेर नमस्कार शिरोनत्ति आवर्त्तपूर्वक आचा-

र्यवंदना करै फेर शक्तिसारू नियमकौं ग्रहण करि साधुवंदना करै; या प्रकार यहु आवश्यक तौ नित्य ही करै। बहुरि अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्वविषैं तथा औरभी निमित्त पाय जैसैं आगममैं कह्या तैसैं आवश्यक करना योग्यहै ॥ ९९—१०५ ॥

येन केन च संपन्नं कालुष्यं दैवयोगतः।
क्षमयित्वैव तं त्रेधा कर्त्तव्याऽऽवश्यकक्रिया ॥ १०६ ॥

अर्थ—कर्मयोगतै जिसकिसी पुरुष करि परिणामनिमैं मलिनपना कलुषपना उपज्या होय ता पुरुषसौं मन वचन कायकरि क्षमा कराय आवश्यकक्रिया करणी योग्यहै ॥ १०६ ॥

क्रियां पक्षभवां मूढश्चतुर्मासभवां च यः।
विधत्तेऽक्षमयित्वासौ न तस्याः फलमश्नुते ॥ १०७ ॥

अर्थ—जो मूढ विना क्षमा कराये पक्षजनितक्रियाकौं बहुरि चतुर्मासजनितक्रियाकौ करैहै सो यहु ता क्रिया के फलकौ न पावैहै।

भावार्थ—पंद्रहदिनमैं प्रतिक्रमणादि करिए सो पक्षकी क्रिया कहिए, चार महिनामैं करिए सो चातुर्मासिक क्रिया कहिए सो इन क्रियानकौं जासैं कलुषता भई होय तासैं क्षमा कराये विन करै तो परिणामनिकी शल्यतैं क्रियाके फलकौं न पावै ॥ १०७ ॥

देवनराद्यैः कृतमुपसर्गं
वंदनकारी सहति समस्तम्।
कंपनमुक्तो गिरिरिव धीरो
दुष्कृतकर्मक्षपणमवेक्ष्य ॥ १०८ ॥

अर्थ—वंदना करनेवाला मनुष्य है सो पापकर्मकी निर्जराकौं विचारिकै देव मनुष्यादिकनि करि करया समस्त उपसर्गकौं सहैहै, कैसोहै? पर्वतकी ज्यौं कंपरहित है धीर है ॥ १०८ ॥

आगैं अधिकारकौ संकोचै है,—

इत्थमदोषं सततमनूनं
निर्मलचित्तो रचयति नूनम् ।
यः कृतिकर्मामितगतिदृष्टं
याति स नित्यं पदमनदृष्टम् ॥ १०९ ॥

अर्थ—जो निर्मलचित्त पुरुष या प्रकार निर्दोष न्यूनता रहित निरंतर कृतिकर्म कहिए आवश्यक क्रिया ताहि करैहै सो नित्य अर देखनेमें न आवै ऐसा जो मोक्षपद ताहि प्राप्त होय है, कैसाहै कृति-कर्म अमितगति कहिए अनंतहै ज्ञान जाका ऐसा जो सर्वज्ञ देवताकरि कह्याहै; ऐसा जानना ॥ १०९ ॥

अडिल्ल ।

रागद्वेष तजि सामायिक भजि कीजे तीर्थंकर गुणगान,
पंच परमगुरु चरण वंदि नित पूर्वदोषको करि अवसान ।
आगामी अघत्यागि देहसौं ममताभाव निवारि सुजान,
षट आवश्यक साधि जीव इम लहै अमिगति पद निरवान ।

इति श्रीमदमितगत्याचार्यकृते श्रावकाचारे
अष्टमः परिच्छेदः ।

ऐसैं श्री अमितगति आचार्यविरचित श्रावकाचारविषैं
आठवां परिच्छेद समाप्त भया ।

अथ नवम परिच्छेद ।
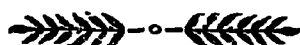
दानं पूजा जिनै शीलमुपवाश्चतुर्विधः ।
श्रावकाणां मतो धर्मः संसारारण्यपावकः ॥ १ ॥

अर्थ—दान १ पूजा २ शील ३ उपवास ४ यहु संसारवनकौं अग्निसमान चार धर्म श्रावकनिका जिनदेवनिनैं कह्याहै ॥

तहां प्रथमही दानका स्वरूप कहैहै;—

दानं वितरता दाता देयं पात्रं विधिर्मतिः
फलैषिणाऽवबोद्धव्यानि धीमता पंच तत्त्वतः ॥ २ ॥

अर्थ—फलका वांछक अर बुद्धिसहित ऐसा जो दान देनेवाला पुरुष ताकरि दाता १ देने योग्य वस्तु २ पात्र ३ विधि ४ मति ५ ये पांच स्वरूपसहित जानना योग्यहै ।

भावार्थ—दान देनेवालेकरि पूर्वोक्त पंच वस्तुका स्वरूप जानना योग्यहै ॥ २ ॥

तहां दाताका स्वरूप कहैहै;—

भाक्तिकं तौष्टिकं श्राद्धं सविज्ञानमलोलुपम् ।
सात्विकं क्षमकं संतो दातारं सप्तधा विदुः ॥ ३ ॥

अर्थ—संतजनहै ते दाताकौ सात प्रकार कहैं है; सात कौन? प्रथम तौ भक्तिसहित १ अर प्रसन्नचित्त २ अर श्रद्धासहित ३ अर विज्ञानसहित ४ अर लोलुपतारहित ५ अर सात्विक कहिये शक्तिमान ६ अर क्षमावान ७ ऐसा जानना ॥ ३ ॥

आगैं भाक्तिक आदिका स्वरूप कहैहैं;—

यो धर्मधारिणां धत्ते स्वयं सेवापरायणः ।
निरालस्योऽशठः शांतो भक्तिकः स मतो बुधैः ॥ ४ ॥

अर्थ—जो पुरुष धर्मके धारनेवालेनकी सेवामैं तत्पर भयासंता स्वयं कहिये अपेक्षा रहित आपही धारैहै सो पंडितनि करि आलस्यरहित बुद्धिमान शांतचित्त ऐसा भाक्तिक कहिये भक्तिसहित कह्याहै ।

भावार्थ—धर्मात्मानकी सेवा करै सो भाक्तिक कहिए ॥ ४ ॥

तुष्टिर्दत्तवतो यस्य ददतश्च प्रवर्त्तते ।
देयासक्तमतेः शुद्धास्तमाहुस्तौष्टिकं जिनाः ॥५॥

अर्थ—जिसकै आगै देता भया ताकै वा वर्तमानमै देतेकै हर्ष प्रवर्त्तै है ताहि कर्ममलरहित जे शुद्ध जिनदेव हैं ते तौष्टिक कहिए हर्षसहित कहैंहै, कैसाहै सो देनेयोग्य वस्तुविषै नाही है लोभरूप बुद्धिजाकी ॥ ५ ॥

साधुभ्यो ददता दानं लभ्यते फलमीक्षितम् ।
यस्यैषा जायते श्रद्धा नित्यं श्राद्धं वदंति तम् ॥ ६ ॥

अर्थ—साधूनके अर्थ दान देता जो पुरुष ताकरि वांछित फल पाइए है यहु जाकै नित्यही श्रद्धा प्रतीतिहै ता पुरुषकौं आचार्य श्रद्धावान कहैहै ॥ ६ ॥

द्रव्यं क्षेत्रं सुधीः कालं भावं सम्यक विविच्य यः ।
साधुभ्यो ददते दानं सविज्ञानमिमं विदुः ॥ ७ ॥

अर्थ—द्रव्य क्षेत्र काल भावकौ भले प्रकार विचारकै साधूनकै अर्थ सुबुद्धी दान देयहै इसकौ आचार्य सविज्ञान कहैहै ॥ ७ ॥

त्रिधापि याचते किंचिद्यो न सांसारिकं फलम् ।
ददानो योगिनां दानं भाषंते तमलोलुपम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जो योगीनकौं दान देता संता मन वचन काय करिभी सांसारिक फलकौ न याचै है ताहि आचार्य अलोलुप कहैं हैं ॥ ८ ॥

स्वल्पवित्तोऽपि यो दत्ते भक्तिभारवशीकृतः ।
स्वाढ्याश्चर्यकरं दानं सात्विकं तं प्रचक्षते ॥ ९ ॥

अर्थ—जो थोडा धनवान भी भक्तिके भारकरि वश किया संता धनवानकौ आश्चर्य करनेवाला दानकौं देयहै ताहि आचार्य सात्विक कहैहैं।

भावार्थ—जो धनरहित भी भक्तिकरि दान देयहै जाकौ देखकै धनवान भी आश्चर्यमानै जो धन्य है यह सो ऐसा दान देयहै ता पुरुषकौ सात्विक कहिएहै ॥ ९ ॥

कालुष्यकारणे जाते दुर्निवारे महीयसि ।
यो न कुप्यति केभ्योऽपि क्षमक कथयंति तम् ॥ १० ॥

अर्थ—क्रोधरूप मलिनपरिणामका दुर्निवार महान कारण उपजे संतैं जो किसीतैं भी क्रोध न करैहै ताहि आचार्य क्षमावान कहै हैं ॥ १० ॥

आगै उत्तम मध्यम जघन्य दातानिका स्वरूप कहैहैं;—

सर्वैरलंकृतो वर्यो जघन्यो वर्जितो गुणैः ।
मध्यमोऽनेकधाऽवाचि दाता दानविचक्षणैः ॥ ११ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त भक्ति तुष्टि आदि गुण वा आगै कहैंगे तिन सर्व गुणनिकरि भूपितहै सो तो उत्कृष्ट दाताहै अर तिन गुणनिकरि रहितहै सो जघन्य दाताहै, बहुरि दानविषै विचक्षण जे पुरुष तिनकरि मध्यम-दाता अनेक प्रकार कह्याहै ॥ ११ ॥

आगैं दाताका विशेष गुण कहैहैं;—

विनीतो धार्मिकः सेव्यस्तत्कालक्रमवेदकः ।
जिनेशसासनाभिज्ञो भोगनिस्पृहमानसः ॥ १२ ॥
दयालुः सर्वजीवानां रागद्वेषादिवार्जितः ।
संसारासारतावेदी समदर्शी महोद्यमः ॥ १३ ॥
परीषहसहो धीरो निर्जिताक्षो विमत्सरः ।
वरात्मसमयाभिज्ञः प्रियवादी निरुत्सुका ॥ १४ ॥
वासितो व्रतिनां पूतैः परासाधारणैर्गुणैः ।
लोकलोकोत्तराचारविचारी संघवत्सलः ॥ १५ ॥
आस्तिको निरहंकारो वैयावृत्यपरायणः ।
सम्यक्त्कालंकृतो दाता जायते भुवनोत्तमः ॥ १६ ॥

अर्थ—विनयवान होय, धर्मात्मा होय, क्रूरतादिकके अभावतैं औरन करि सेवनेयोग्य होय, तत्कालक्रम का जाननेवाला होय ।

भावार्थ—जिस कालमैं जैसी वस्तु आदि चाहिये तैसा जानता होय; अर जिनेद्रके उपदेशका ज्ञाता होय, बहुरि भोगनिविषै वांछारहित चित्त जाका ऐसा होय ॥ १२ ॥ सर्व जीवनि पर दयासहित होय, रागद्वेषादिरहित होय संसारकी असारताका जाननेवाला होय, अर समान देखनेवाला होय,

भावार्थ—कोऊका इष्टानिष्टपने करि हीनाधिक देखने वाला न होय, अर उद्यमी होय ॥ १३ ॥ परीषहनिका सहन करनेवाला होय, धीर होय, अर जीतीहै इंद्रिया जानैं ऐसा होय, बहुरि मत्सरताराहित होय अर श्रेष्ट अध्यात्मशास्त्रका जाननेवाला होय, प्रियवचन बोलनेवाला होय, विषयनि की वांछारहित होय ॥ १४ ॥ बहुरि व्रतीनके औरनिविषै न पाइए ऐसे असाधारण पवित्र गुणनिकरि वासित होय ।

भावार्थ—व्रतीनके गुणनिमैं अनुरागी होय, बहुरि लौकिक आचार वा लोकोत्तर कहिए परमार्थ आचार ताका विचारसहित होय, अर च्यार प्रकार संघविषैं वच्छासे गौकी ज्यों प्रीतिसहित होय॥ १५॥ बहुरि अस्तिक कहिए परलोकादिकहैं ऐसी अस्तिबुद्धिसहित होय।

भावार्थ—परलोक नाहीं पुण्य नाहीं पाप नाहीं इत्यादिक जो नास्तिकबुद्धि ता करि रहित होय, अहंकाररहित होय, धर्मात्मानकी टहल चाकरीमैं तत्पर होय अर सम्यक्त करि भूषित होय ऐसा दाता लोकविषैं उत्तम होयहै,

भावार्थ—पूर्वोक्त गुणनिसहित होय सो उत्तमदाता जानना॥१६॥

आगै और भी कहैहैं;—

आत्मीयं मन्यते द्रव्यं यो दत्तं व्रतवर्त्तिनाम्।
शेषं पुत्रकलत्राद्यैस्तस्करैरिव लुंठितम्॥ १७॥

अर्थ—जो दाता व्रतीनकूं दिया जो द्रव्य ताहि अपना मानैहै बहुरि बाकी रह्या जो द्रव्य ताहि पुत्र स्त्री चौरनकरि मानौ लूटलिया तैसा मानैहै।

भावार्थ—पात्रनिकूं दानमैं जो धन लग्या सो तो पुण्यबंधके कारण तैं इस भवमैं वा पर भवमैं आपकौं सुखदायी है तातैं अपना है अर पुत्र स्त्री आदिकनिनैं सो पापबंधके कारणतै दोऊ भवमै दुखदायीहै तातै अपना नाही चौरनकरि लूट लिए समानहै, ऐसा जानना॥१७॥

ये लोकद्वितये सौख्यं कुर्वते मम साधवः।
बांधवा दारुणं दुःखमिति पश्यति चेतसा॥ १८॥

अर्थ—ये साधुजनहैं ते मेर इस भवविषैं वा परभविषैं सुखकौ करैहैं अर बांधवहैं ते भयानक दुःखकौं करैहैं, ऐसा दाता मनविषैं विचारैहै॥ १८॥

योऽत्रैव स्थावरं वेत्ति गृहकार्ये नियोजितम् ।
सहगामि परं वित्तं धर्मकार्ये यथोचितम् ॥१९॥

अर्थ—जो पुरुष घरके कार्यमै लगाया जो द्रव्य ताहि इहांही रहनेवाला मानैहै अर केवल धर्मकार्यमै लगाया योग्य द्रव्य ताहि संग जानेवाला मानैहै ।

भावार्थ— विवाहादि कार्यमै द्रव्य लगाया सो तो इस लोकमैं रह्या बाकी धर्मकार्यमै लगाया सो द्रव्य पुण्यबंधके कारण तैं आपके साथ जायहै ऐसा जानना ॥ १९ ॥

शरदभ्रसमाकारं जीवितं यौवनं धनम् ।
यो जानाति विचारज्ञो दत्ते दानं स सर्वदा ॥ २० ॥

अर्थ—जो पुरुष शरदकालके बादले समान अथिर जीवनकौ अर जोवनकौ अर धनकौ जानैहै सो विचारका जाननेवाला सदाकाल दानकौ देयहै ॥ २० ॥

यो न दत्ते तपस्विभ्यः प्रासुकं दानमंजसा ।
न तस्याऽऽत्मंभरेः कोऽपि विशेषो विद्यते पशोः ॥२१॥

अर्थ—जो पुरुष तपस्वीनके अर्थि प्रासुकदानकौ भले प्रकार न देयहै तिस आपापोपीकै अर पशूकै किछू विशेष नाहीं है ।

भावार्थ—दान न देयहै सो पशुसमानहै जातै अपना उदर तो पशुभी भर लेयहै मनुष्यपनेकी विशेपता तो दानहीतै है ॥ २१ ॥

गृहं तदुच्यते तुंगं तर्प्यते यत्र योगिनः ।
निगद्यते परं प्राज्ञैः शारदं घनमंडलम् ॥ २२ ॥

अर्थ—जिसविषै योगीश्वर तृप्त कीजिएहैं योगीश्वरनिकौ दान दीजिए है सो ऊंचा घर कहिए है अर दानरहित केवल घर है सो पंडितानिकरि सरदकालके वादलानिका मंडल कहिए है ॥ २२ ॥

धौतपादांभसा सिक्तं साधूनां सौधमुच्यते।
अपरं कर्दमालिप्तं मर्त्यचारकबंधनम् ॥ २३ ॥

अर्थ—साधूनके धोये जे चरण तिनके जलकरि सींच्या जो घर ताहि सौध कहिए है, अर सिवाय दूजा घर है सो कीचकरि लिप्या मनुष्यरूप चरनेवालेका बंधन है ॥ २३ ॥

स गेही मन्यते भव्यो यो दत्ते दानमंजसा।
न परो गेहयुक्तोऽपि पतत्रीव कदाचन ॥ २४ ॥

अर्थ—जो भले प्रकार दान देयहै सो भव्य पंडितनि करि गृही मानियेहै अर दानरहित गृहसहित भी पक्षीकी ज्यो गृही न मानिएहै।

भावार्थ—दान देयसो गृहस्थ है अर दानरहित केवल घर तौ पक्षीकै भी होयहै, तातै दानविना गृहहीतैं गृहस्थ न कहिये ऐंसा जानना ॥ २४ ॥

किं द्रव्येण कुवेरस्य किं समुद्रस्य वारिणा।
किमंधसा गृहस्थस्य भुक्तिर्यत्र न योगिनाम् ॥ २५ ॥

अर्थ—जहां योगीश्वरनिका भोजन नाहीं तिस कुवेरके द्रव्य करि कहा अर समुद्रके जलकरि कहा अर गृहस्थके भोजन करि कहा।

भावार्थ—जहां दान नाहीं तिन बहुत द्रव्यादिकनि करि कहा साध्य है किछू साध्य नाहीं, ऐसा जानना ॥ २५ ॥

ध्यानेन शोभते योगी संयमेन तपोधनः।
सत्येन वचसा राजा गृही दानेन चारुणा ॥ २६ ॥

अर्थ—योगी तो ध्यानकरि सोहहै अर तपोधन जो तपस्वी है सो संयमकरि सोहैहै अर सत्यवचन करि राजा सोहैहै अर गृहस्थ सुंदर-दानकरि सोहैहै ॥ २६ ॥

तपोधनं गृहायातं यो न गृह्णाति भक्तितः ।
चिंतामणि करप्राप्तं स कुधीस्त्यजति स्फुटम् ॥ २७ ॥

अर्थ—घर प्रति आया जो तपोधन साधु ताहि जो भक्तितै न पडगाहैहै सो कुबुद्धी हस्तविषै आया जो चिंतामणी ताहि प्रकटपनैं तजैहै ॥ २७ ॥

विद्यमानं धनं धिष्ण्ये साधुभ्यो यो न यच्छति ।
स वंचयति मूढात्मा स्वयमात्मानमात्मना ॥ २८ ॥

अर्थ—घरविषै विद्यमान जो धन ताहि जो साधुनके अर्थ न देयहै सो मूढात्मा आपही आपकरि आपकौ ठगै है । घरमै धन होतैं मुनीनकौ आहारादि दान न देयहै सो आपकौं ठगैहै ॥ २९ ॥

स भण्यते गृहस्वामी यो भोजयति योगिनः ।
कुर्वाणो गृहकर्माणि परं कर्मकरं विदुः ॥ २९ ॥

अर्थ—जो योगीनकौ भोजन करावैहै सो घरका स्वामी कहियेहै अर दानविना केवल घरके कार्यकौ करैहै ताहि पंडित है ते गुलाम कहैहैं, ऐसा जानना ॥ २८ ॥

यः सर्वदा क्षुधां धृत्वा साधुवेलां प्रतीक्षते ।
सः साधूनामलाभेऽपि दानपुण्येन युज्यते ॥ ३० ॥

अर्थ—जो सदा क्षुधा धारणकरि साधूनिके आहारकी वेलाकी प्रतीक्षा करैहै अर आहारवेलाटलें पीछै भोजन करैहै सो पुरुष साधूनका अलाभ होतै भी दानके पुण्यकरि युक्त होयहै ॥ ३० ॥

भवने नगरे ग्रामे कानने दिवसे निशि ।
यो धत्ते योगिनश्चित्ते दत्तं तेभ्योऽमुना ध्रुवम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—जो पुरुष घरविषै नगरविषै ग्रामविषै वनविषै दिवसविषैं रात्रिविषै योगीश्वरनिकौं चित्तविषै धारैहै, सो इस पुरुष करि निश्चयतैं मुनिनके अर्थ दान दिया।

भावार्थ—जो सदा मुनीश्वरनिकी भक्तिका परिणाम राखैहै ताकै मुनिनका मिलना न होतै भी भावनाकी शुद्धितातै दानका पुण्य होयहै ॥ ३१ ॥

यः सामान्येन साधूनां दानं दातुं प्रवर्त्तते।
त्रिकालगोचरास्तेन योगिनो भोजिताः स्तुताः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो सामान्य पनेकरि साधूनके दान देनेकौ प्रवर्त्तै है ता पुरुषकरि भूत भविष्यत वर्त्तमानकालके सर्व योगीश्वर जिमाए अर स्तुतिगोचर किये।

भावार्थ—जाके मुनिमात्रके दानमैं हर्षहै प्रकृतिहै ताकै सर्वही मुनीनिकी भक्ति होनेतै सर्वकौ दान दिया अर सर्वहीकी स्तुति करी, ऐसा जानना ॥ ३२ ॥

दत्ते दूरेऽपि यो गत्वा विमृश्य व्रतशालिनः।
सः स्वयं गृहमायाते कथं दत्ते न योगिनि ॥ ३३ ॥

अर्थ—जो दूर जायकरि भी व्रतीनकौ हेर करि दान देयहै सो आपही योगीश्वरनिकौ घर आये संते दान कैसैं न देयहै ? देयहीहै ॥ ३३ ॥

सद्रव्याद्रव्ययोर्मध्ये यः पात्रं प्राप्य भक्तितः।
ददानः कथ्यते दाता न दाता भक्तिवर्जितः ॥ ३४ ॥

अर्थ—एक तो द्रव्यसहित पुरुष अर एक द्रव्यरहित पुरुष इन दोउनिके मध्य जो पात्रकौ पायकै भक्तितै दान देयहै सो दाता कहियेहै अर भक्तिरहितहै सो दाता न कहिएहै, ऐसा जानना ॥ ३४ ॥

पात्रे ददाति योऽकाले तस्य दानं निरर्थकम् ।
क्षेत्रेऽप्युप्तं विना कालं कुत्र वीजं प्ररोहति ॥ ३५ ॥

अर्थ—वहुरि जो अकालमै पात्रिविषै दान देयहै ताका दान निष्प्रयोजनहै जैसै विना काल क्षेत्रविषै वोया भी वीज कहूं ऊगैहै ? नाहीं ऊगैहै, ऐसा जानना ॥ ३५ ॥

काले ददाति योऽपात्रे वितीर्णं तस्य नश्यति ।
निक्षिप्तमूषरे वीजं किं कदाचिदवाप्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—वहुरि जो दानके कालमैं भी अपात्रविषै दान देयहै ताका दान नाशकौ प्राप्त होयहै जैसै ऊपर भूमिविषैं बोया वीज कहा कहीं पाइएहै अपि तु नाहीं पाइएहै ॥ ३६ ॥

अक्रमेण विना वंध्यं वितीर्णं पात्रकालयोः ।
फलाय किमसंस्कारं निक्षिप्तं क्षेत्रकालयोः ॥ ३७ ॥

अर्थ—वहुरि पात्र अर काल इन दोऊनविषै दिया दान भी दानकी विधि विना निष्फलहै जैसै सुंदर क्षेत्र अर योग्यकाल विषै भी धरतीका जोतना आदि संस्काररहित बोया वीजहै सो कहा फलके अर्थ होयहै ? अपि तु नाही होयहै ॥ ३७ ॥

कालं पात्रं विधिं ज्ञात्वा दत्तं स्वल्पमपि स्फुटम् ।
उप्तं वीजमिव प्राज्ञैर्विधत्ते विपुलं फलम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—कालकौ पात्रकौ अर विधिकौ जानिकै थोडा भी दिया जो दानहै सो वोये वीजकी ज्यो प्रकटपणे विस्तीर्ण फलकौं धारन करैहै, ऐसा जानना ॥ ३८ ॥

देयं स्तोकादपि स्तोकं व्यपेक्षो न महोदयः ।
इच्छानुसारिणी शक्तिः कदा कस्य प्रजायते ॥ ३९ ॥

अर्थ—थोडेतैं भी थोडा देना योग्यहै अर महा उदयकी अपेक्षा करनी योग्य नाही जातै इच्छानुसारिणी शक्ति कहीं कोईकै होयहै ? अपि तु नाहीं होयहै ।

भावार्थ—आपकै थोडा भी धन होयहै थोडेमैसे थोडा धन दानमैं लगावना ऐसी न विचारना जो हमारे बहुत धन होयगा जब दान करैगे, जातैं जितनी इच्छाहै तितना धनतौ कहीं कोईकै होय नाहीं; ऐसा जानना ॥ ३९ ॥

श्रुत्वा दानमतिर्वर्यो भण्यते वीक्ष्य मध्यमः ।
श्रुत्वा दृष्ट्वा च यो दत्ते न दानं स जघन्यकः ॥ ४० ॥

अर्थ—दान देतेकौं सुनकरि दान देनेमै जाकी बुद्धि होय सो उत्कृष्ट पुरुषहै अर दान देतेकूं देखकरि जाकी दान देनेकी बुद्धि होय सो मध्यम पुरुषहै अर सुनकरि देखकरि भी जो दान न देयहै सो जघन्य पुरुष कहिए अधमहै ॥ ४० ॥

ताडनं पीडनं स्तेयं रोषणं दूषणं भयम् ।
यः कृत्वा ददते दानं स दाता न मतो जिनैः ॥ ४१ ॥

अर्थ—जो और जीवनिकी ताडना करिकै वा पीडना करिकै वा चौरी करिकैं वा रोष करिकै वा तृष्णादि दूषण करिकै वा भय करिकै जो दानकौ देयहै सो जिन देवनि नै दाता नाही कह्योहै ॥ ४१ ॥

यहीयसा सदा दानं प्रदेयं प्रियवादिना ।
प्रियेण रहितं दत्तं परमं वैरकारणम् ॥ ४२ ॥

अर्थ—प्रियवचनसहित बुद्धिमान पुरुष करि सदा दान देना योग्यहै जातैं प्रियवचनविना दिया बहुत दानहै सो वैरका कारण है ।

भावार्थ—दान देना सो मीठेवचन सहित देना अर मीठे वचन-विना दान भी वैरका कारणहै, जातै कटुकवचन सबकौ बुरा लागैहै ॥ ४२ ॥

यः शमायाकृतं वित्तं विश्राणयति दुर्मतिः ।
कलिं गृह्णाति मूल्येन दुर्निवारमसौ ध्रुवम् ॥ ४३ ॥

अर्थ—जो दुर्बुद्धि पुरुष समभावरहित धनकौ देयहै सो यह्न निश्चयतै मोलकरि दुर्निवार कहिये दुःखसै निवारण करिने योग्य पापकौ ग्रहण करैहै ।

भावार्थ—क्रोधसहित दान देनेमै उलटा पापबंध होयहै तातै समतासहित दान देना योग्यहै ॥ ४३ ॥

आगै दान न देने योग्य वस्तुकौ सामान्यपनै कहैहै;

जीवा येन निहन्यंते येन पात्रं विनश्यते ।
रागो विवर्द्धते येन यस्मात् संपद्यते भयम् ॥ ४४ ॥
आरंभा येन जन्यंते दुखितं यच्च जायते ।
धर्मकामैर्न तद्देयं कदाचन निगद्यते ॥ ४५ ॥

अर्थ—जाकरि जीव हनिये अर जाकरि पात्रजनका नाश कीजिए अर जाकरि राग वढाईए अर जातै भय उपजै ॥ ४४ ॥ अर जाकरि आरंभ उपजै अर जातै दुखी होय सो वस्तु धर्मके वाछक पुरुषनिकरि देने योग्य कदाच नाहीं कहियेहै ॥ ४५ ॥

आगै तिन न देने योग्य वस्तुनिके विषेश कहैहै;

हलैर्विदार्यमाणायां गर्भिण्यामिव योषिति ।
म्रियंते प्राणिनो यस्यां सा भूः किं ददते फलम् ॥४६॥

अर्थ—हलनिकरि विदारी भई गर्भिणी स्त्रीविषै जैसै जाविषै प्राणी मरैहै सो पृथ्वी कहा फल देय अपि तु नाहीं देयहै ।

भावार्थ—जैसै गर्भिणी स्त्रीके गर्भमै बालकहै तैसै पृथ्वीके गर्भमैं अनेक जीव बसैहै ता पृथ्वीकौं हलनिकरि अनेक जीवनिकी हिंसा होय तातैं भूमिदानमै पुण्य नाहीं, पापहीहै; ऐसा जानना॥ ४६॥

सर्वत्र भ्रमता येन कृतांतेनेव देहिनः।
विपाद्यंते न तल्लोहं दत्तं कस्यापि शांतये॥ ४७॥

अर्थ—जाकरि सर्व जायगा भ्रमण करने करि यमकी ज्यों जीव विनाशियेहै सो लोह दिया भया कोईके भी शांतिकै अर्थ नाहीं।

भावार्थ—लोह जहांही जाय तहांही हिंसा होय तातैं लोहदान पुण्यके अर्थ नाहीं पापहीके अर्थ है॥ ४७॥

यदर्थं हिंस्यते पात्रं यत्सदा भयकारणम्।
संयमा येन हीयंते दुष्कालेनेव मानवाः॥ ४८॥
रागद्वेषमदक्रोध लोभमोहमनोभवाः।
जन्यंते तापका येन काष्ठेनेव हुताशनाः॥ ४९॥
तद्येनाष्टापदं यस्य दीयते हितकाम्यया।
स तस्याष्टापदं मन्ये दत्ते जीवितशांतये॥ ५०॥

अर्थ—जिसके अर्थ पात्रकी हिंसा कीजिए अर जो सदा भयका कारण अर दुर्भिक्ष करि मनुष्य जैसै हीन होय तैसैं जाकरि संयम हीन होय॥ ४८॥ अर जैसै काष्ठ करि अग्नि उपजैहै तैसैं संतापकारी रागद्वेष मद क्रोध लोभ मोह काम जाकरि उपजैहै॥४८॥ सो अष्टापद कहिये सुवर्ण जाकरि जिसकौं हितकी वांछा करि दीजिए सो तिसकी जीवनेकी शांतिके अर्थ अष्टापदनामा क्रूर हिंसक जीव तानैं दिया ऐसा मै मानूंहूं।

भावार्थ—जैसैं कोऊ जीवनेके अर्थ काहूकौ अष्टापद नाम हिंसक जीवकौं देय ता ताका मरनही होय है तैसैं धर्मके अर्थ मिथ्यादृष्टीनकौं

दिया जो सुवर्ण तातैं हिंसादिक होनेतै परके वा आपके पापही होय, ऐसा जानना ॥ ५० ॥

संसजंत्यंगिनो येषु भूरिशस्त्रसकायिकाः ।
फलं विश्राणने तेषां तिलानां कल्मषं परम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—जिनविषै घने त्रसकायिक जीव उपजैहै तिन तिलनके देनेविषै फल केवल पापहै ।

भावार्थ—तिल देनेमैं त्रसकायिक जीवनिकी हिसातै केवल पापही है पुण्य नाहीं ॥ ५१ ॥

प्रारंभा यत्र जायंते चित्राः संसारहेतवः ।
तत्सद्म ददतो घोरं केवलं कलिलं फलम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जिसविषै संसारके कारण नाना प्रकार आरंभ होय है तिस घरके देनेवालेकै फल केवल घोर पाप होय है ॥ ५२ ॥

पीडा संपद्यते यस्या वियोगे गोनिकायतः ।
पया जीवा निहन्यंते पुच्छशृंगखुरादिभिः ॥ ५३ ॥
यस्यां च दुह्यमानायां तर्णकः पीड्यतेतराम् ।
तां गां वितरता श्रेयो लभ्यते न मनागपि ॥ ५४ ॥

अर्थ—जिसकौ गौनके समूहतै वियोग होनेकी पीडा उपजैहै अर जाकरि पूंछ सींग खुर आदिकनि करि जीव हनिएहै अर जाका दुहे संतै वच्छा अतिशय करि पीडिएहै तिस गौके देनेवाले पुरुषकरि किछू भी पुण्य न पाइएहै ।

भावार्थ—गौ देनेमै पुण्यका अंश भी नाही, पापही होय है ॥ ५३-५४

या सर्वतीर्थदेवानां निवासीभूतविग्रहा ।
दीयते गृह्यते सा गौः कथं दुर्गतिगामिभिः ॥ ५५ ॥

अर्थ—जो गौ सर्व तीर्थ अर देवनिके वसनेका स्थानहै शरीर जाका सो गौ दुर्गतिके जानेवालेन करि कैसै दीजिए है और कैसै ग्रहण करियहै ।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी गौ के शरीरमै सर्व तीर्थ अर देव वसते मानैहै, ऐसी गौ कौ पापी कैसै देयहै अर कैसै लेयहै; ऐसी तर्क करीहै ॥ ५५ ॥

तिलधेनुं घृतधेनुं कांचनधेनुं च रुक्मधेनुं च ।
परिकल्प्य भक्षयंत श्चांडालेभ्यस्तरां पापाः ॥ ५६ ॥

अर्थ—तिलनिकी गौ घृतकी गौ सुवर्णकी गौ रूपेकी गौ बनाय बनाय करि जे भखैहै ते चांडालतै भी अधिक पापीहै ।

भावार्थ—चांडाल गौ तो न खायहै अर इन मिथ्यादृष्टीननै तिलादिककी बनाय करी गौ भी खाय लीनी तातै ते चांडालतै भी सिवाय पापीहै, ऐसा जानना ॥ ५६ ॥

या धर्मवनकुठारी पातकवसतिस्तपोदया चौरी ।
वैरायासासूया विषादशोकश्रमक्षोणी ॥ ५७ ॥
यस्यां सक्ता जीवा दुःखतमान्नोत्तरंति भवजलधेः ।
कः कन्यायां तस्यां दत्तायां विद्यते धर्मः ५८ ॥

अर्थ—जो कन्या धर्मवनके काटनेकौ कुल्हारीसमान अर पापकी वसती अर तपश्चरण दया की चौरनेवाली अर वैर प्रयास ईर्षा शोक खेद इनकी भूमिकाहै ॥ ५७ ॥ अर जा विपै आसक्त जीवहै ते अतिशयकरि दुःखस्वरूप जो संसारसमुद्र तातै न उतरैहै तिस कन्याकौ दिये संतै कहा धर्म होयहै ? पापही होयहै ।

भावार्थ—कन्यादानतै पूर्वोक्त पापनिका संतान बढैहै तातै पापहीहै धर्म नाहीं, ऐसा जानना ॥ ५८ ॥

सर्वारंभकरं ये वीवाहं कारयंति धर्माय ।
ते तरुखंडविवृद्धचै क्षिपंति वह्निं ज्वलज्ज्वालम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—जो पुरुष सर्व हिंसादिक आरंभका करनेवाला जो विवाह ताहि धर्मके अर्थ करावैहै ते वृक्षनके वनकौ वढावनेके अर्थि जाज्वल्य मानहै ज्वाला जाकी ऐसी अग्निकौ खेपैहै ।

भावार्थ—जैसैं अग्नितै वन वढै नाही उलटा जल जाय तैसैं विवाह कराये धर्म नाहीं धर्मका नाशहीहै ॥ ५९ ॥

यः संक्रांतौ ग्रहणे वारे वित्तं ददाति मूढमतिः ।
सम्यक्त्कवनं छित्त्वा मिथ्यात्ववनं वपत्येषः ॥ ६० ॥

अर्थ—जो मूढवुद्धी पुरुष सक्रातिविषै ग्रहणविषै आदित्यवारादि वारविषै धनकौं देयहै सो सम्यक्त वनकौ छेदिकै मिथ्यात्व बनकौ वोवैहै ॥ ६० ॥

ये ददते मृततृप्तयै वहुधा दानानि नूनमस्तधियः ।
पल्लवयितुं तरुं ते भस्मीभूतं निषिंचंति ॥ ६१ ॥

अर्थ—जे निर्वुद्धि पुरुष मरे जीवकी तृप्तिके अर्थ वहुत प्रकार दान देयहैं ते निश्चयकरि अग्निकरि भस्मरूप भए वृक्षकौ पत्रसहित करने कौं सीचै है ।

भावार्थ—जैसै भस्म भए वृक्षकौ सीचे फेर हरा न होय सीचना निष्फल है तैसै मरे पितरनकी तृप्तिके अर्थ दान देना वृथाहै, मिथ्यात्व पुष्ट होनेतै पापही है ॥ ६१ ॥

विप्रगणे सति भुक्ते तृप्तिः संपद्यते यदपि नृणाम् ।
नान्येन घृते पीते भवति तदान्यः कथं पुष्टः ॥ ६२ ॥

अर्थ—व्राम्हणके समूहकौ भोजन कराये सते जो पितरके तृप्तिता होय तो और करि घी पिये सतै और पुष्ट कैसै न होय ॥ ६२ ॥

दाने दत्ते पुत्रैर्मुच्यंते पापतोऽत्र यदि पितरः।
विहिते तदा चरित्रे परेण मुक्तिं परो याति ॥ ६३ ॥

अर्थ—पुत्रनि करि दान दिये संतै जो पितर पापतै छूटैहै तो और करि चारित्र करे संतै और मुक्तिकौ प्राप्त होय ॥ ६३ ॥

गंगागतेऽस्थिजाले भवति सुखी यदि मृतोऽत्र चिरकालं।
भस्मीकृतस्तदांभः सिक्तः पल्लवयते वृक्षः ॥ ६४ ॥

अर्थ—हाड़नके समूहकौ गंगानदीविषैं गये संतै जो यहु प्राणी वहुत सुखी होयहै तो भस्म करया वृक्ष सींच्या भया हरया होयहै ॥ ६४ ॥

उपयाचंते देवान्नष्टधियो ये धनानि ददमानाः।
ते सर्वस्वं दत्त्वा नूनं क्रीणंति दुःखानि ॥ ६५ ॥

अर्थ—जे नष्टबुद्धी दान देते संते देवनि प्रति धननिकौ याचैहैं ते निश्चयकरि सर्व अपना धन देकरि दुःखनिकौ खरीदै है ॥ ६५ ॥

पूर्णेकाले देवैर्न रक्ष्यते कोऽपि नूनमुपयातैः।
चित्रमिदं प्रतिविंवैरचेतनै रक्ष्यते तेषाम् ॥ ६६ ॥

अर्थ—कालकौ पूर्ण भये संते निश्चयकारि कोई भी पुरुष निकट आये जे देव तिन करि नाहीं रक्षिए है, बहुरि तिन देवनिके अचेतन प्रतिबिंबनि करि रक्षा मानिये सो यहु बडा आश्चर्य है।

भावार्थ—कोई मिथ्यादृष्टी कुदेवनिकी प्रतिमा बनाय तिनकै आगै अपना जीवना वांछै है तहां आचार्य कहैहै कि आयु पूर्ण भये साक्षात् देवभी रक्षा न करिसकैहै तो तिनके अचेतन प्रतिबिबनितै जीवितव्य वांछना यहु बडे आश्चर्यकी बात है ॥ ६६ ॥

मांसं यच्छंति ये मूढा ये च गृह्णंति लोलुपाः।
द्वये वसंति ते श्वभ्रे हिंसामार्गप्रवर्त्तिनः ॥ ६७ ॥

अर्थ—जे मूढ मांसकौ देयहै अर जे लोलुपी मांसका ग्रहण करैहै ते दोऊ हिंसामार्गके प्रवर्त्तावनहारे नरकविपै वास करैहै ॥ ६७ ॥

धर्मार्थं ददते मासं ये नूनं मूढवुद्धयः ।
जिजीविषंति ते दीर्घं कालकूठविपाशने ॥ ६८ ॥

अर्थ—जे मूढवुद्धी धर्मके अर्थ मांसकौ देयहै ते निश्चयकरि काल-कूट विपकौ खाय करि जिये चाहैहै ॥ ६८ ॥

तादृशं यच्छतां नास्ति पापं दोपमजानताम् ।
यादृशं गृह्णतां मांसं जानतां दोपमूर्जितम् ॥ ६९ ॥

अर्थ—दोपके स्वरूपकौ न जानते ऐसे दानके देनेवाले तिनकौ तैसा पाप नांही जैसा महापाप दोपकौ जानते जे मांसकौ ग्रहण करने-वाले तिनकौ है ।

भावार्थ—कुदानका देनेवाला अज्ञानतै धर्म जानि दान देयहै सो पापी तो हैही परंतु जो जानकरि दोपसहित दान ग्रहण करैहै सो ताहू तै महापापीहै तातैं भोले जीवतै जानिकै प्रपंच करै ताकै कपाय अधिकहै, ऐसा जानना ॥ ६९ ॥

दाता दोपमजानानो दत्ते धर्मधियाऽखिलम् ।
यः स्वीकरोति तद्दानं पात्रं त्वेप न सर्वथा ॥ ७० ॥

अर्थ—दाता है सो तो दोपकौ न जानता संता धर्मबुद्धिकरि सर्व दान देयहै अर जो ता कुदानकौ अंगीकार करैहै सो सर्वथा पात्र नाही ॥ ७० ॥

वहूनि तानि दानानि विधेयैषा न शेमुपी ।
विपद्यतेतरां प्राणी भूरिभिर्भक्षितैर्विषैः ॥ ७१ ॥

अर्थ—पूर्वैं कहे ते बहुत प्रकार दानहै ऐसी यह वाणी कहना योग्य नाहीं, जातैं बहुत खाये भये जे विष तिनकरि जीवहै सो अतिशयकरि नाश कीजिएहै ।

भावार्थ—पहले कहे जे बहुत कुदान ते दानहै ऐसे कहना भी योग्य नाहीं बहुत कुदान किये पापहीहै जैसै बहुत विप खाये प्राणीका विशेपतैं मरणहीहै तैसै ॥ ७१ ॥

अल्पं जिनमतं दानं वदंतीमं न कोविदाः ।
पीयूषेणोपभुक्तेन किं नाल्पेनापि जीव्यते ॥ ७२ ॥

अर्थ—यह जिनमतका कहा दानहै सो अल्पहै ऐसैं पंडितजन न कहैहै, जातै खाया भया थोडा भी अमृत करि कहा न जिवाइएहै जिवाइएहीहै ।

भावार्थ—कोई कहै कि जैनमतका दान तो थोडाहै जातै कहा भला होय ताकौ आचार्यनै कह्याहै जो सुदान थोडा भी महापुण्य उपजावैहै, जैसै अमृत थोडाहै सो भी जिवावैहै तैसै जिनभाषित दान थोडा न जानना ॥ ७२ ॥

ग्रहीतुः कुरुते सौख्यं दानैस्तैरखिलैर्यतः ।
पुण्यभागी ततो दाता नेदं वचनमंचितम् ॥ ७३ ॥
आपाते लभ्यते सौख्यं विपाके दुःखमुल्वणम् ।
अपथ्यैरिव तैर्दानैर्दुर्जरैर्जननिंदितैः ॥ ७४ ॥
आपाते सुखदैः पुण्यमंते दुःखवितारिभिः ।
भूमिदानादिभिर्दत्तैर्न किं पाकफलैरिव ॥ ७५ ॥

अर्थ—जातै पहले कहे जे समस्त दान तिनकरि दान ग्रहण करनेवालेकै सुख करिएहै तातै दाता पुण्यका भजनेवाला होयहै ऐसा वचन योग्य नाहीं ॥ ७३ ॥ जातै वर्त्तमानमैतो तिन कुदाननि करि कुपथ्यकी

न्यो सुख पाइएहै अर तिनके विपाकविषै अत्यंत दुःख होयहै कैसेहै कुपथ्य दुःख करैहै पचना जिनका अर लोककरि निंदितहै तैसैही कुदानहै, ऐसा जानना ॥ ७४ ॥ वर्त्तमानमै सुखदायक अर अंतमै दुःखके वढावनेवाले ऐसे किंपाकफलसमान जे दिये भये वहुत कुदानादि तिनकरि पुण्य नाहीं होयहै।

भावार्थ—कोऊ कहै कि पृथ्वीदानादि लेनेवाला सुखी होयहै तातैं दाताकौ पुण्य होयहै ताकौ कह्याहै कि जैसे कुपथ्य वर्त्तमानमै तो मीठा लागै परंतु प्राणही हरैहै अर किंपाकका फल खाते तो मीठा लागै पाछै प्राण हरैहै तैसैं पृथ्वी आदि दाननिविषै वर्त्तमानमैं सुखसा भासै परंतु आगामी हिंसादिकके योगतै नरकादिकमै लेनेवालेकौ तीव्र दुःख उप-जावैहै, तातै देनेवालेकै पुण्य नाही पापही है॥ ७५ ॥

प्रचुरोऽपात्रसंघाते मर्दयित्वाऽपि पोषिते।
पात्रे संपद्यते धर्मो नैषा भाषा प्रशस्यते॥ ७६ ॥

अर्थ—जीवनके समूहकौ नाशकै भी पात्रकौ पोखे संते प्रचुर धर्म होयहै ऐसी वाणी सराहने योग्य नाहीं॥ ७६ ॥

ताका दृष्टांतः—

निहत्य भेकसंदर्भं यः प्रीणाति भुजंगमम्।
सोऽश्नुते यादृशं पुण्यं नूनमन्योऽपि तादृशम्॥ ७७ ॥

अर्थ—मींडकानिके समूहकौ हनिकै जो सर्पकौ पोखैहै सो पुरुष जैसा पुण्यकौ ग्रहण करैहै तैसाही पुण्य निश्चयकरि औरभी ग्रहण करैहै।

भावार्थ—जैसै अनेक मीडंकानिकौ हानिकै कोई सर्पकौ पोखै ताकै पाप होय तैसै और जीवनकौ मारकै ब्राम्हणादिकनिके पोषनेतै पाप होय है, पुण्य नाहीं; ऐसा जानना॥ ७७ ॥

आत्मीकरोति यो दानं जीवमर्द्दन संभवम् ।
आकांक्षन्नात्मनः सौख्यं पात्रता तस्य कीदृशी ॥ ७८ ॥

अर्थ—जो आपकै सुख वांछता संता जीवनिके घाततै उपज्या जो दान ताहि ग्रहण करैहै, ताकै पात्रता कैसी।

भावार्थ—अयोग्य दान लेय सो पात्र काहेका, वह तो अपात्रही है ॥ ७८ ॥

न सुवर्णादिकं देयं न दाता तस्य दायकः ।
न च पात्रं ग्रहीताऽस्य जिनानामिति शासनम् ॥ ७९ ॥

अर्थ—सुवर्णादिक तौ देने योग्य वस्तु नाहीं अर तिस सुवर्णादिकका देनेवाला दाता नाहीं अर इस दानका ग्रहण करनेवाला पात्र नाहीं, या प्रकार जिनदेवनिका शासन कहिए आज्ञाहै ॥ ७९ ॥

पात्रं विनाशितं तेन तेनाधर्मः प्रवर्त्तितः ।
येन स्वर्णादिकं दत्तं सर्वानर्थविधायकम् ॥ ८० ॥

अर्थ—तिसनै पात्रका तौ विनाश किया अर तिसनैं अधर्म प्रवर्त्ताया जाकरि सर्व अनर्थनिका करनेवाला सुवर्णादिक दियातानैं।

भावार्थ—सुवर्णादिकतै हिंसादिक पाप उपजैहै तातै लेनेवालेका तो नाशकिया अर अधर्म प्रवर्त्ताया, तातै कुदान देना योग्य नाहीं ॥ ८० ॥

आगै देनेयोग्य वस्तुका वर्णन करैहै;—

रागो निषूद्यते येन येन धर्मो विवर्द्ध्यते ।
संयमः पोष्यते येन विवेको येन जन्यते ॥ ८१ ॥
आत्मोपशम्यते येन येनोपक्रियते परः ।
न येन नाश्यते पात्रं तद्दातव्यं प्रशस्यते ॥ ८२ ॥

अर्थ—जा करि राग नाशकौ प्राप्त होय अर जाकरि धर्म वृद्धिकौ प्राप्त होय अर जाकरि संयम पुष्ट होय अर जाकरि विवेक उपजै ॥ ८१ ॥

अर जा करि आत्मा उपशांत होय अर जाकरि परका उपकार होय अर जाकरि पात्रका विगाड़ न होय सो देने योग्य वस्तु सराहिएहै ॥ ८२ ॥

आगै देने योग्य वस्तुके विशेष कहैहै;—

अभयान्नौषधज्ञानभेदतस्तच्चतुर्विधम् ।
दानं निगद्यते सद्भिः प्राणिनामुपकारकम् ॥ ८३ ॥

अर्थ—अभयदान १ अन्नदान २ औषधदान ३ ज्ञानदान ४ इन भेदनितैं प्राणीनिका उपकार करनेवाला दान संतन करि च्यार प्रकार कहिएहै ॥ ८३ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां जीवितव्ये यतः स्थितिः ।
तद्दानतस्ततो दत्तास्ते सर्वे संति देहिनाम् ॥ ८४ ॥

अर्थ—जा कारणतैं धर्म अर्थ काम मोक्ष इनकी स्थिति जीवितव्य होतसंतैं होयहै तातैं जीवनकौं जीवितव्यके दानतैं धर्म अर्थ काम मोक्ष सर्व दिये ।

भावार्थ—जानैं जीवनकौं अभयदानादि दिया तानैं धर्म अर्थ काम मोक्ष सर्व दिये तातैं धर्मादिकका आधार जीवनाहीहै तातैं ॥ ८४ ॥

देवैरुक्तो वृणीष्वैकं त्रैलोक्यप्राणितव्ययोः ।
त्रैलोक्यं वृणुते कोऽपि न परित्यज्य जीवितम् ॥ ८५ ॥

अर्थ—तीन लोक अर जीवितव्य इन दोऊनिमैंसैं एक ग्रहण कर ऐसैं देवनिकरि कह्या कोऊ पुरुष जीवितव्यकौं छोडकरि कहा तीनलोककौं ग्रहण करैहै, अपि तु नाहीं करैहै ।

भावार्थ—जीवितव्यकै आगै तीन लोककी संपदा कछू नाहीं जातैं जीवितव्यकौं छोडकरि कोऊ भी तीन लोककौं न चाहैहै ॥ ८५ ॥

त्रैलोक्यं न यतो मूल्यं जीवितव्यस्य जायते ।
तद्रक्षता ततो दत्तं प्राणिनां किं न कांक्षितम् ॥ ८६ ॥

अर्थ—जातै जीवितव्यका माल तीन लोक न होयहै तातै जीवितव्यकी रक्षा करता जो पुरुष ताकरि प्राणीनिकौं कहा वांछित वस्तु न दिया, अपि तु सर्वही दिया ॥ ८६ ॥

नाभीतिदानतो दानं समस्ताधारकारणम् ।
महीयो निर्मलं नित्यं गगनादिव विद्यते ॥ ८७ ॥

अर्थ—आकाशकी ज्यौं समस्त आधारका कारण अर वड़ा अर निर्मल अर नित्य ऐसा अभयदानकै सिवाय और कोऊ दान नाहीं है॥ ८७ ॥

आगैं आहारदानका वर्णन करैंहैः—

आहारेण विना पुंसां जीवितव्यं न तिष्ठति ।
आहारं यच्छता दत्तं ततो भवति जीवितम् ॥ ८८ ॥

अर्थ—आहारविना पुरुषनिका जीवितव्य न तिष्ठैहै, तातै आहारकौं देता जो पुरुष ताकरि जीवितव्य दिया ही हायह ॥ ८८ ॥

नेत्रानंदकरं सेव्यं सर्वचेष्टाप्रवर्त्तिनम् ।
अंधसा धार्यते देहं जीवितेनेव जन्मिनाम् ॥ ८९ ॥

अर्थ—जैसै नेत्रनिकौ आनंदकारी सेवनेयोग्य चेष्टाका प्रवर्त्तन करनेवाला आयुकरि जीवनिकै देह धारियेहै तैसै भोजनकरि देह धारिएहै ॥ ८९ ॥

कांतिः कीर्त्तिर्मतिः क्षांतिः शांति र्नीतिर्गती रतिः ।
उक्तिः शक्तिर्द्युतिः प्रीतिः प्रतीतिः श्रीर्व्यवस्थितिः॥९०॥
आहारवर्जितं देहं सर्वे मुंचंति तत्वतः ।
द्रविणापाकृतं मर्त्यं वेश्या इव मनोरमाः ॥ ९१ ॥

अर्थ—कांति, कीर्त्ति, बुद्धि, क्षमा, शांति, नीति, गति, रति, वाणी, शक्ति, दीप्ति, प्रीति, प्रतीति, लक्ष्मी, स्थिरता, ये सर्व आहाररहित

देहकौं निश्चयतैं छोडैहै. जैसै मनकौं प्यारी जे वेश्या ते द्रव्यरहित पुरुषकौ छोडै है ॥ ९०—९१ ॥

शमो दमो दया धर्मः संयमो विनयो नयः ।
तपो यशो वचोदाक्ष्यं दीयतेऽन्नप्रदायिना ॥ ९२ ॥

अर्थ—कषायनकी मंदतारूप शम अर इंद्रियनिका दमन अर दया अर धर्म संयम अर विनय अर नय अर तप अर वचनका चतुरपना ये सर्व अन्न देनेवाले पुरुषकरि दीजिएहै ॥ ९२ ॥

क्षुद्रोगेण समो व्याधिराहारेण समौषधिः ।
नासीन्नास्ति न चाभावि सर्वव्यापारकारिणी ॥ ९३ ॥

अर्थ—क्षुधारोग समान तो रोग अर भोजन समान औषधि सर्व व्यापारकी करावनेवाली न तौ आगै भई अर न है अर न होयगी ॥ ९३ ॥

दुर्गंधिकुथितं शीर्णं विवर्णं नष्टचेष्टितम् ।
भोजनेन विना गात्रं जायते मृतकोपमम् ॥ ९४ ॥

अर्थ—दुर्गंधरूप विगडा सडा औरवर्णकौ प्राप्त भया अर नष्ट भई है चेष्टा जाकी ऐसा शरीरहै सो भोजनविना मृतकसमान होयहै ।९४।

न पश्यति न जानाति न शृणोति न जिघ्रति ।
न स्पृशति न वा वक्ति भोजनेन विना जनः ॥ ९५ ॥

अर्थ—भोजन विना मनुष्यहै सो न देखैहै न जानैहै न सुनै है न सूंघैहै न स्पर्शैहै अर न वोलैहै सर्व चेष्टा नष्ट होयहै ॥ ९५ ॥

प्रविक्रीयान्न कृच्छ्रेषु कांताकन्यातनूभुवः ।
आहारं गृह्णते लोका वल्लभानपि निश्चितम् ॥ ९६ ॥

अर्थ—अन्नके कष्ट होने करि लोकहै ते स्त्री कन्या पुत्र इन प्यारे-नकूं भी वेचकरि आहारकौ निश्चयतै ग्रहण करैहै ॥ ९६ ॥

यया खादंत्यभक्ष्याणि क्षुधया क्षपिता जनाः ।
सा हन्यतेऽशनेनैव राक्षसीव भयंकरा ॥ ९७ ॥

अर्थ—जिस क्षुधाकरि पीडित जनहै ते अभक्षकौ खायहै सो क्षुधा राक्षसीकी ज्यो भयंकर भोजन करिही नाश कीजिए है ॥९७॥

यथैवाहारमात्रेण शरीरं रक्ष्यते नृणाम् ।
चामीकरस्य कोटी भिर्बह्वीभिरपि नो तथा ॥ ९८ ॥

अर्थ—जैसी आहारमात्रकरि मनुष्यानिके शरीरकी रक्षा करिएहै तैसी बहुत कोटि सुवर्ण करिभी रक्षा न करिएहै ॥ ९८ ॥

क्षिप्रं प्रकाश्यते सर्व माहारेण कलेवरम् ।
नभो दिवाकरेणैव तमोजालावगुंठितम् ॥ ९९ ॥

अर्थ—जैसै अंधकार करि व्याप्त जो आकाश सो सूर्यकरि प्रकाशिये है तैसे सर्व शरीर आहारकरि शीघ्र प्रकाशिएहै ॥ ९९ ॥

न शक्नोति तपः कर्तुं सरोगः संयतो यतः ।
ततो रोगापहारार्थं देयं प्रासुकमौषधम् ॥ १०० ॥

अर्थ—जातै रोगसहित संयमीहै सो तप करनेकौ समर्थ न होयहै तातै रोगके दूर करनेके अर्थ प्रासुक औषधि देना योग्य है ॥ १०० ॥

न देहेन विना धर्मो न धर्मेण विना सुखम् ।
यतोऽतो देहरक्षार्थं भैषज्यं दीयते यतेः ॥ १०१ ॥

अर्थ—जातै देहविना धर्म नाहीं अर धर्म विना सुख नाहीं जातै देहकी रक्षाके अर्थ साधुकौ औषध देना योग्य है ॥ १०१ ॥

शरीरं संयमाधारं रक्षणीयं तपस्विनाम् ।
प्रासुकैरौषधैः पुंसा यत्नतो मुक्तिकांक्षिणा ॥ १०२ ॥

अर्थ—संयमका आधार जो तपस्वीनका शरीर सो मुक्तिका वाछक जो पुरुप ताकरि यत्नतैं प्रासुक औपधनि करि रक्षा करणी योग्य है ॥ १०२ ॥

आगै शास्त्रदानका वर्णन करेहै ।

विवेको जन्यते येन संयमो येन पाल्यते ।
धर्मः प्रकाश्यते येन मोहो येन विहन्यते ॥ १०३ ॥
मनो नियम्यते येन रागो येन निकृत्यते ।
तद्देयं भव्यजीवानां शास्त्रं निर्धूतकल्मपम् ॥ १०४ ॥

अर्थ—जाकरि विवेक उपजाइए अर जाकरि सयम पालिए अर जाकरि धर्म प्रकाशिए अर जाकरि मोह हनिए ॥ १०३ ॥ अर जाकरि मन निश्चल कीजिए अर जाकरि राग छेदिए तो नाश कियाहै पाप जानै ऐसा शास्त्र भव्यजीवनिकों देना योग्य है ॥ १०४ ॥

विवेको न विना शास्त्रं तमृते न तपो यतः ।
ततस्तपोविधानार्थं देयं शास्त्रमनिंदितम् ॥ १०५ ॥

अर्थ—जातैं शास्त्रविना विवेक नाही अर विवेकविना तप नाहीं तातैं तप करनेकैं अर्थि अनिंदित शास्त्र देना योग्यहै ॥ १०५ ॥

आगै और भी दान देने योग्य वस्तुनिको कहैहै ।

वस्त्रापात्राश्रयादीनि पराण्यपि यथोचितम् ।
दातव्यानि विधानेन रत्नत्रितयवृद्धये ॥ १०६ ॥
वर्यमध्यजघन्यानां पात्राणामुपकारकम् ।
दानं यथायथं देयं वैयावृत्यविधायिना ॥ १०७ ॥

अर्थ—वस्त्र पात्र अर वसतिका इत्यादिकभी रत्नत्रयकी वृद्धिके अर्थ विधानसहित यथायोग्य देना योग्यहै ॥ १०६ ॥ वैयावृत्यका

करनेवाला जो पुरुष ताकरि उत्तम मध्यम जघन्य पात्रनिका उपकार करनेवाला दान यथायोग्य देना योग्य है ॥ १०७ ॥

भावार्थ—पंच महाव्रतके धारक साधु तो उत्तम पात्र है, अर देशव्रती श्रावक मध्यम पात्रहै, अर अविरत सम्यग्दृष्टी जघन्य पात्रहै सो इनकौ यथायोग्य दान कहिए साधून कौ साधूनके योग्य आहारादिक देना, श्रावकनकौ तथा अविरत सम्यग्दृष्टीनकौ योग्य वस्त्रपात्रादिक देना। ऐसै जा पदमै जो वस्तु देना योग्य होय सो देना, ऐसा जानना ॥ १०८ ॥

आगै अधिकारकौ संकोचैहै;

पोष्यंते येन चित्राः सकलसुखफलस्तोमरोपप्रवीणाः
सम्यक्त्वज्ञानचर्यायमनियमतपोवृक्षजातिप्रवंधाः।
भव्यक्षोणीषु तद्यः क्षतनिखिलमलं मुंचते दानतोयं
तुल्यस्तस्योपकारी मधुरप्रकृतो भव्यमेघस्य नान्यः १०८

अर्थ—समस्त सुखरूप फलनिके समूहके धारणेमै प्रवीण जे नानाप्रकार ऐसा सम्यक्त ज्ञान चारित्र यम नियम तप रूप वृक्षनिकी जातिनके प्रवंध ते जाकरि पुष्ट कीजिएहै, ऐसा जो दानरूप जल ताहि जो भव्यजीवरूप पृथ्वीनिविषै त्यागैहै वरसैहै कैसाहै जल नाशकियेहै समस्त मल जानै ऐसा, सो उपकारी पुरुष मधुर शब्द करनेवाला जो मेघ ताके समानहै अन्य ताके समान नाहीं।

भावार्थ—दान देनेवाला पुरुष मेघ के समानहै पूर्वोक्त मेघके विशेषण दाताके संभवैहै अन्य कृपणके न संभवैहै, ऐसाजानना ॥ १०८ ॥

वात्सल्यासक्तचित्तो नयविनयपरो दर्शनालंकृतात्मा
देयादेये विदित्वा वितरति विधिना यो यतिभ्योऽत्र दानं।

कीर्त्तिं कुंदावदातामभितगतिमतां पूरयंती त्रिलोकं
लब्ध्वा क्षिप्रं प्रयाति क्षपितभवभयं मोक्षमक्षीणसौख्यं १०९

अर्थ—वात्सल्य कहिए प्रीतिभाव तामै है आसक्त चित्र जाका बहुरि नीति अर विनय विषैं परायण अर सम्यग्दर्शन करि भूषितहै आत्मा जाका ऐसा जो पुरुष देने योग्य न देने योग्य वस्तुकौ जानकरि विधिसहित यतीनके अर्थ दान देयहै सो इस भवविषे तीनलोक कौ पूरती ऐसी अनंतज्ञानीनि करि कही जो कुंदके फूलसमान निर्मल कीर्त्ति ताहि पाय करि शीघ्र मोक्षकौं प्राप्त होयहै, कैसाहै मोक्ष दूर कियाहै संसारका भय जानैं अर अक्षीणहै सुख जा विषै ।

भावार्थ—दानी पुरुष इस भवमै तौ निर्मल कीर्ति पावैहै अर परंपराय मोक्षकौ प्राप्त होयहै यह दानका फल है, ऐसा जानना ॥ १०९ ॥

छप्पय ।

धर्म मांहि अतिप्रीति विनयजुत रीतिनीतिमति
सम्यग्दर्शनविमलरत्नभूषित पुनीत अति ।
जोग अजोग विचार देत जो दानसहितविधि,
साधु जननिके अर्थि देखि गुणमणिअपारनिधि ॥
सो तीनलोकमैं विमलजस पाय अमितगति जिनकथित ।
पुनि लहै मोक्षपद अखयसुख ज्ञानमयी भवभयरहित ॥

इत्युपासकाचारे नवमः परिच्छेदः ।

ऐसैं श्री अमितगति आचार्यविरचित श्रावकाचारविषैं
नवमा परिच्छेद समाप्त भया ।

अथ दशमः परिच्छेद ।
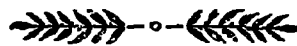
आगै पात्र कुपात्र अपात्रकौ कहै है;—

पात्रकुपात्रापात्राण्यवबुद्ध्य फलार्थिना सदा देयम् ।
क्षेत्रमनवबुद्ध्योप्तं वीजं न हि फलति फलमिष्टम् ॥१॥

अर्थ—फलका अर्थी जो पुरुष ताकरि पात्र कुपात्र अपात्र इनकौ जानकरि सदा दान देना योग्य है, जातै क्षेत्रकौं विनाजाने बोया जो वीज सो वांछित फलकौ नाही फलैहै ॥ १ ॥

तहां पात्रनिका स्वरूपकहै है;

पात्रं तत्वपटिष्ठैरुत्तममध्यमजघन्यभेदेन ।
त्रेधा क्षेत्रमिवोक्तं त्रिविधफलनिमित्ततो ज्ञात्वा ॥२॥

अर्थ—तत्वज्ञानीनतै तीन प्रकार फलके कारणतै जानकरि उत्तम मध्यम जघन्य भेदकरि क्षेत्रकी ज्यो पात्र तीन प्रकार कह्याहै ॥ २ ॥

उत्तममुत्तमगुणतो मध्यमगुणतोऽथ मध्यमं पात्रम् ।
विज्ञेयं बुद्धिमता जघन्यगुणतो जघन्यं च ॥ ३ ॥

अर्थ—बुद्धिमान पुरुषकरि उत्तम गुणतै उत्तमपात्र जानना योग्य है, वहुरि मध्यमगुणतै मध्यम पात्र जानना योग्यहै, अर जघन्य गुणतै जघन्य पात्र जानना योग्यहै ॥ ३ ॥

तत्रोत्तमं तपस्वी विरताविरतश्च मध्यमं ज्ञेयम् ।
सम्यग्दर्शनभूषः प्राणी पात्रं जघन्यं च ॥ ४ ॥

अर्थ—तहा तपस्वी साधु तो उत्तम पात्र जानना योग्यहै अर विरताविरत श्रावक मध्यम पात्र जानना योग्य है, अर सम्यग्दर्शन युक्त प्राणी है सो जघन्य पात्र जानना ॥ ४ ॥

आगै उत्तमपात्रका स्वरूप कहै हैं;

जीवगुणमार्गणविधिं विधानतो यो विबुद्धय निःशेषम्।
रक्षति जीवनिकायं सवितेव परोपकारपरः ॥ ५ ॥
पथ्यं तथ्यं श्रव्यं वचनं हृदयंगमं गुणगरिष्ठम्।
यो ब्रूते हितकारी परमानसतापतो भीतः ॥ ६ ॥
निर्माल्पकमिव मत्वा परवित्तं यस्त्रिधापि नाऽऽदत्ते।
दंतांतरशोधनमपि पतितं दृष्ट्वाप्यदत्तमतिः ॥ ७॥
तिर्यङ्मानवदेवाचेतनभेदां चतुर्विधां योषाम्।
परिहरति यः स्थिरात्मा मारीमिव सर्वथा घोराम् ॥८॥
त्रिविधं चेतनजातं संगं चेतनमचेतनं त्यक्त्वा।
यो नाऽऽदत्ते भूयो वांतमिवान्न त्रिधा धीरः ॥९॥
त्रिविधालंवनशुद्धिः प्रासुकमार्गेण यो दयाधारः।
युगमात्रांतरदृष्टिः परिहरमाणोऽगिनो याति ॥ १० ॥
हृदयं विभूषयंतीं वाणीं तापापहारिणीममलाम्।
मुक्तानामिव मालां यो ब्रूते सूत्रसंवद्धाम् ॥ ११ ॥
पञ्चत्वारिं शद्दोषापोढां यो विशुद्धनवकोटीम्।
मृष्टामृष्टसमानोभुक्तिं विदधाति विजिताक्षः ॥ १२ ॥
द्रव्यं विकृतिपुरःसरमंगिग्रामप्रपालनासक्तः।
गृह्णाति यो विमुंचति यत्नेन दयांगमाश्लिष्टः ॥ १३ ॥
निर्जंतुकेऽविरोधे दूरे गूढे विसंकटे क्षिपति।
उच्चारप्रश्रवणश्लेष्माद्यं यः शरीरमलम् ॥ १४ ॥

जिनवचनपंजरस्थं विधाय बहुदुःखकारणं क्षिप्रम्।
विदधाति यः स्ववश्यं मर्कटमिव चंचलं चित्तम् ॥१५॥

यो वचनौषधमनधं जरामरणरोगहरणपरम्।
बहुशो मौनविधायी ददाति भव्यांगिनां महितम्॥१६॥

कायोत्सर्गविधायी कर्मक्षयकारणाय भवभीतः।
कृत्याकृत्यपरो यः कार्यं वितनोति सूत्रमतम् ॥ १७ ॥

यस्येत्थं स्थेयस्य सम्यग्व्रतसमितिगुप्तयः संति।
प्रोक्तः स पात्रमुत्तममुत्तमगुणभाजनं जैनैः ॥ १८ ॥

अर्थ—जो जीवस्थान गुणस्थान मार्गणास्थानके भेदनकौ विधानतैं जानकरि जीवनके समूहकी रक्षा करैहै अर सूर्यकी ज्यो पराये उपकारमे तत्परहै।

भावार्थ—जो जैसे सूर्य अपेक्षारहित जीवनिकौ प्रकाश करैहै तैसैं अपेक्षा विना जो परके उपकार मैं तत्पर है ॥ ५ ॥ बहुरि जो हितरूप सत्यार्थ सुननेयोग्य हृदयकौ प्यारा गुणानिकरि गरुवा ऐसे वचनकौ बोलैहै, कैसाहै सो हितका करनेवाला अर परके मनकौं ताप उपजावनेतै भयभीतहै ॥ ६ ॥ बहुरि जो परधनकौ निर्माल्यवत् मानकरि दांतनका अंतर शोधनमात्र तृणादिक भी मन वचन काय करि ग्रहण नाहीं करैहै कैसाहै सो पडे द्रव्यकौ देखकर भी अदत्तकी है बुद्धि जाकै।

भावार्थ—पडी वस्तुकौ भी देखकर अदत्त मानकर ग्रहण न करैहै ॥ ७ ॥ बहुरि थिरहै आत्मा जाका ऐसा जो तिर्यंचणी मनुष्यणी देवांगना अचेतन पुतली आदि भेदरूप ऐसी च्यार प्रकार स्त्रीकौं भयानक मारी रोगकी ज्यो सर्वथा त्यागैहै ॥ ८ ॥ बहुरि जो धीर

नानाप्रकार चेतनतैं उपज्या चेतन परिग्रह स्त्रीपुत्रादिक अर अचेतन परिग्रह धन धान्यादिक ताहि त्याग करि फेरि वमन किये अन्नकी ज्यौं ग्रहण नाहीं करै है ॥ ९ ॥ बहुरि प्रासुक मार्ग करि जीवनिकौं बचावता गमन करै हैं कैसाहै सो तीनप्रकार मन वचन कायके आलंबनतैं है शुद्धि जाकै, बहुरि दया का आधार, युग प्रमाण आतरैं है दृष्टि जाकी ।

भावार्थ—च्यार हाथ ताईं क्षेत्र देखकरि चालैहै ऐसाहै ॥ १० ॥ बहुरि जो हृदयकौं भूषित करती आतापकौं हरनेवाली अर सूत्रकरि भले प्रकार बंधी ऐसी मोतीनकी माला समान जो वानी ताहि बोलैहै ।

भावार्थ—मोतीकी माला हृदयकौं शोभित करैहै सो यह वाणी भी हृदय जो चित्त ताकौ शोभित करैहै अर माला आताप हरैहै अर माला सूत्र कहिये डोरा तासू बंधीहै अर वाणी जिनभाषित सूत्र सू बंधी है ऐसी समान उपमा जाननी ॥ ११ ॥ बहुरि जो छ्यालीस दोष रहित अर नवकोटी शुद्ध जो आहार ताहि ग्रहण करैहै, भले बुरे आहारमे है समान बुद्धि जाकी अर जीतीहै इंद्रिय जानै ॥ १२ ॥ बहुरि जो विकृति कहिये हस्त धोवनादि कार्यके अर्थ भस्म अर आदि शब्द करि पीछी कमडलु साथग इत्यादि वस्तुकौं यत्नसहित ग्रहण करैहै अर धरैहै, जीवनके समूहके पालनेमैं आसक्त है चित्त जाका अर दयाके अंग प्रति लिपट रह्या है ॥ १३ ॥ बहुरि जो जीवरहित अर विरोधरहित बहुरि दूर गुप्त अरसंकटरहित विस्तीर्ण ऐसे क्षेत्रविषै मल मूत्र कफ आदि शरीरके मलकौं क्षेपे है ॥ १४ ॥ बहुरि जो बहुत दुःखका कारण बादरासमान चचल जो चित्त ताहि जिन वचन रूप पींजरेमै बैठाय करि शीघ्र अपने वश करैहै ॥ १५ ॥ बहुरि जो जन्म जरा मरणरूप रोगके हरणेमैं तत्पर ऐसी निर्दोष अर पूजित जो वचन-

रूप औषधि ताहि भव्यजीवनकौ देयहै सो बहुधा मौनका धरने वाला है।

भावार्थ—मुख्यपनैं तौ मौनही धारै है अर कदाच बोलैहै, तौ सबका हितकारी वचन बोलै है। ऐसा जानना ॥ १६ ॥ बहुरि जो कर्मनिके क्षयके अर्थ कायोत्सर्ग करैहै अर संसारतै भयभीतहै अर जो करने योग्य न करने योग्यका ज्ञाता जिनसूत्रभाषित कार्यकौ करैहै ॥ १७ ॥ जा मुनिकै या प्रकार सम्यक्- पंच महाव्रत पंच समिति तीन गुप्तिहै सो उत्तमपात्र उत्तम गुणानिका भाजन जैनीनि करि कह्या है ॥ १८ ॥

इन तरेह श्लोकनिमैं तेरह प्रकार चारित्रका वर्णन किया, जो इनको धारैहै सो उत्तम पात्र जानना, आगैं इस ही उत्तम पात्रका विशेष स्वरूप कहैहै;—

राग द्वेषो मोहो लोभः क्रोधो मदः स्मरो माया।
यं परिहरंति दूरं दिवाकरमिवांधकारचयाः ॥ १९ ॥

अर्थ—जैसैं सूर्यकौ अंधकारके समूह दूर त्यागैहै तैसै जा मुनिकौं राग द्वेष मोह क्रोध लोभ मान काम माया दूर परिहरैहै।

भावार्थ—जाकै रागादिकका अभाव भया है ॥ १९ ॥

दर्शनबोधचरित्रत्रितयं यस्यास्ति निर्मलं हृदये।
आनंदितभव्यजनं विमुक्तिलक्ष्मीवशीकरणम् ॥ २० ॥

अर्थ—जाके हृदयविषै निर्मल दर्शन ज्ञान चारित्रका त्रितयहै, कैसा है दर्शन ज्ञान चारित्रका त्रितय आनंदकौ प्राप्तकियेहै भव्यजीव जानैं अर मुक्तिलक्ष्मीका वश करनेवाला है ॥ २० ॥

यस्यानवद्यवृत्तेर्जंगममिव मंदिरं तपोलक्ष्म्याः।
कायक्लेशैरुग्रैर्वशीकृतं राजते गात्रम् ॥ २१ ॥

अर्थ—बहुरि जिस मुनिका शरीर उग्र कायक्लेशनि करि कृश किया चालता तप लक्ष्मीका मंदिरसमान सोहैहै, कैसा है सो मुनि पापरहित है प्रवृति जाकी॥ २१ ॥

यैर्विजिता जगदीशा विविधा विपदः सदा प्रपद्यंते।
तानींद्रियाणि सद्यो महीयसा येन जीयंते॥ २२॥

अर्थ—जिन इंद्रियनि करि जीते जे इंद्रादिक ते नाना प्रकार विपदानकौ सदा प्राप्त होय है ते इंद्रिय जिस महात्मा करि तत्काल जीतिएहैं।

भावार्थ—वे साधु इंद्रियनिके वसकरनेवाले है॥ २२ ॥

पूजायामपमाने सौख्ये दुःखे समागमे विगमे।
क्षुभ्यति यस्य न चेतो पात्रमसावुत्तमः साधुः॥ २३॥

अर्थ—पूजाविषै तथा अपमानविषै, सुखविषै अर दुःखविषै, लाभविषै अलाभविषै, जाका चित्त रागद्वेषकौ न प्राप्त होयहै सो यह साधु उत्तम पात्र है॥ २३ ॥

यस्य स्वपरविभागो न विद्यते निर्ममत्वचित्तस्य।
निर्बाधबोधदीपप्रकाशिताशेषतत्वस्य॥ २४॥

अर्थ—जिस मुनिकै स्वपरका विभाग नाहीं है कैसाहै सो मुनि परवस्तुमै ममतारहित है चित्त जाका अर बाधारहित ज्ञानदीपक करि प्रकाशे है समस्त पदार्थ जानै।

भावार्थ—जिस मुनिकै मोहके अभावसै परद्रव्यमै यह मेराहै यह परायाहै ऐसा भेद नाहीं सबनिकौं ज्ञेयमात्र करि जानै है॥ २४ ॥

संसारवनकुठारं दातुं कल्पद्रुम फलमभीप्सम्।
यो धत्ते निरवद्यं क्षमादिगुणसाधनं धर्मम्॥ २५॥

अर्थ—जो मुनि निर्दोष क्षमादि गुणहै साधन जाके ऐसे धर्मकौं धारैहै, कैसाहै धर्म संसारवनके छेदनकौ कुठारसमानहै, अर वाछित फल देनेकौ कल्पवृक्षसमानहै ॥ २५ ॥

लोकाचारनिवृत्तः कर्ममहाशत्रुमर्दनोद्युक्तः।
यो जातरूपधारी संयतपात्रं मतं वर्यम् ॥ २६ ॥

अर्थ—जो मुनि लौकिक आचारतै निवृत्तहै अर कर्मरूप महाशत्रुके नाश करनेमैं उद्यमीहै अर जातरूप कहिए माताके गर्भतै जैसा उपज्या तैसा नग्नरूपका धारी मुनि उत्तम पात्र कह्याहै ॥ २६ ॥

ऐसै उत्तम पात्रका स्वरूप कह्या, आगै मध्यमपात्रका स्वरूप कहैहै;—

राकाशशांकोज्ज्वलदृष्टिभूषः
प्रवर्द्धमानव्रतशीललक्ष्मीः।
सामायिकारोपितचित्तवृत्ति
र्निरंतरोपोषितशोषितांगः ॥ २७ ॥

सचेतनाहारनिवृत्तचित्तो
वैरंगिको मुक्तदिनव्यवायः।
निरस्तशश्वद्वनितोपभोगो
निराकृतासंयमकारि कर्मा ॥ २८ ॥

निवारिताशेषपरिग्रहेच्छः
सावद्यकर्मानुमतेरकर्त्ता।
औद्देशिकाहारनिवृत्तबुद्धि
र्दुरंतसंसारनिपातभीतः ॥ २९ ॥

उपासकाचारविधिप्रवीणो
मंदीकृताशेषकषायवृत्तिः।

उत्तिष्ठते यो जननव्यपाये
तं मध्यमं पात्रमुदाहरंति ॥ ३० ॥

अर्थ—पूर्णमासीके चंद्रमासमान निर्मल जो सम्यग्दर्शन सोही है आभूषण जाकै, वहुरि वर्द्धमानहै पंच अणुव्रत अर सात शील इनकी लक्ष्मी जाकै, वहुरि सामायिकविषै आरोपित करी है चित्तकी वृत्ति ताने अर सदा प्रोपधोपवासकरि सोख्याहै अंग जानै ॥ २७ ॥ वहुरि सचित्त आहारतै निवृत्तहै चित्त जाका अर त्रिमुक्तरूपहै, तथा छोड्याहै दिनविषै मैथुन जानै, अर दूर कियाहै निरंतर स्त्रीका उपभोग जानै अर दूर कियेहै असंयमके करनेवाले कार्य जानै ॥ २८ ॥ वहुरि विनाशीहै समस्त परिग्रहकी इच्छा जानै, वहुरि पापसहित कार्यमै अनुमोदनाकौ नाहीं करैहै वहुरि आपके उद्देशकरि किया जो आहार ता विषै निवृत्तहै बुद्धि जाकी ऐसा अर दूर है अंत जाका ऐसा जो संसार ताके पडने तै भयभीतहै ॥ २९ उपासकाचारकी विधिमै प्रवीण अर मंद करीहै समस्त कपायनिकी प्रवृत्ति जानै ऐसा जो पुरुप संसारके नाशविषै उद्यमीहै ताहि मध्यम पात्र कहैहै ॥ ३० ॥

भावार्थ—इनि दर्शनादि उद्दिष्टाहारविरतिपर्यंत ग्यारह प्रतिमानकूं जो धारैहै सो श्रावक मध्यम पात्र जाननां । इहां इतना और जानना—पहली दर्शनप्रतिमा तो अवश्य चाहिए ताके होतै वाकी दोय प्रतिमा आदि ग्यारह प्रतिमा पर्यंत श्रावकहोहै ॥ २७—३० ॥

ऐसै मध्यमपात्रका स्वरूप कह्या, आगै जघन्यपात्रका स्वरूप कहैहै;—

कुमुदबांधवदीधितिदर्शनो
भवजरामरणार्तिविभीलुकः ।
कृतचतुर्विध संघहिते हितो
जननभोगशरीरविरक्तधीः ॥ ३१ ॥

भवति यो जिन शासनभासकः
सततनिंदनगर्हणचंचुरः।
स्वपरतत्वविचारण कोविदो
व्रतविधाननिरुत्सुकमानसः ॥ ३२ ॥

जिनपतीरिततत्वविचक्षणो
विपुलधर्मफलेक्षणतोषितः।
सकलजंतुदयार्द्रितचेतन
स्तमिह पात्रमुशंति जघन्यकम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—चंद्रमाकी किरण समान निर्मल है सम्यग्दर्शन जाका बहुरि जन्म जरा मरण की पीडातै भय है अर करया है च्यार प्रकार संघके हितविषै हित कहिये प्रीतिरूप भाव जानै अर संसारके भोग शरीरविषैं विरक्त है बुद्धि जाकी ॥ ३१ ॥ बहुरि जो जिन शासनका प्रकाशक है, अर निरंतर अपणी निंदा गर्हा विषै प्रवीण है, बहुरि आत्मतत्व अर परतत्व इनके विचारमै पंडित है, बहुरि व्रतनिके आचरणविषै निरुत्सुक है मन जाका। भावार्थ व्रत न धार सकै है ॥३२॥ बहुरि जिनभाषित तत्वविषै विचक्षण है, अर वडा जो धर्मका फल ताके देखने तै संतुष्ट है।

भावार्थ—धर्मका मुख्य फल जो मोक्ष ता सिवाय अन्य फल न चाहै है, अर समस्त प्राणीनिकी दया करि भीज रह्या है चित्त जाका ऐसा जो अविरत सम्यग्दृष्टी ताहि इहां जघन्यपात्र कहै हैं ॥ ३३ ॥

आगै कुपात्रका स्वरूप कहै हैः—

चरति यश्चरणं परदुश्चरं
विकटघोरकुदर्शनवासितः।

सकलसत्वहितोद्यतचेतनो
वितथकर्कशवाक्यपराङ्मुखः ॥ ३४ ॥
धनकलत्रपरिग्रहनिस्पृहो
नियमसंयमशीलविभूपितः।
कृतकपायहृपीकविनिर्जयः
प्रणिगदंति कुपात्रमिमं बुधाः ॥ ३५ ॥

अर्थ—जो परकौ कठिन है आचरण जाका ऐसे आचरणकौ आचैरहै, अर त्रिकट अर भयानक ऐसे मिथ्यादर्शन करि वासित है, वहुरि सर्व जीवनिके हितमै उद्यमी है मन जाका, अर झूठ अर कठोर ऐसे वचनतैं पराङ्मुख है ॥ ३४ ॥ वहुरि धन स्त्री परिग्रहतै निस्पृही है, अर नियम संयम शील इन करि भूपित है, वहुरि करया है कपाय अर इंद्रियनिका पराजय जानै ऐसा है, इस पुरुपकौ पडित जनहै ते कुपात्र कहैहै ॥ ३५ ॥

भावार्थ—जो कायक्लेशादि करै है अर व्रत धारै अर कपाय इंद्रियनिकौ भी जीतै है अर सम्यक्त रहित है सो कुपात्र है ऐसा जानना ॥ ३४-३५ ॥

आगै अपात्रका स्वरूप कहैहै;—

गतकृपः प्रणिहंति शरीरिणो
वदति यो वितथं परुपं वचः।
हरति वित्तमदत्तमनेकधा
मदनवाणहतो भजतेऽगनाम् ॥ ३६ ॥
विविधदोपविधायिपरिग्रहः
पिवति मद्यमयंत्रितमानसः

कृमिकुलाकुलितै ग्रसते पलं
कलिलकर्मविधानविशारदः ॥ ३७ ॥
दृढकुटुंबपरिग्रहपंजरः
प्रशमशीलगुणव्रतवर्जितः ।
गुरुकषायभुजंगमसेवितं
विषयलोलमपात्रमुशंति तम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—जो दयारहित जीवनकौं हनैहै बहुरि झूंठ अर कठोर वचनकौ बोलैहै, अर विना दिये धनकौ अनेक प्रकार हरैहै, अर कामवाणकरि पीडित भया संता स्त्रीकौ सेवैहै ॥ ३६ ॥ अर नाना दोषनिका करनेवाला जो परिग्रह ता सहितहै, अर नाहींहै वशीभूत मन जाका ऐसा भया संता मदिराकौ पीवैहै, अर कीडाके समूहकरि व्याप्त जो मांस ताहि खायहै अर पाप कर्म करणेविषै प्रवीणहै ॥ ३७ ॥ अर दृढ कुटुंब परिग्रहके पींजरासहितहै, बहुरि समता शील गुणव्रत इनकरि वर्जितहै तिस विषयलोलुपीकौ आचार्य अपात्र कहैहैं, कैसाहै सो तीव्रकषायरूप सर्पकरि सेवितह ॥ ३८ ॥

भावार्थ—सम्यक्त्व अर व्रतादिक इन दोऊनि करि रहित है सो अपात्रहै ॥

विवुद्ध्य पात्रं वहुधेति पंडितै
र्विशुद्धवुद्ध्या गुणदोषभाजनम् ।
विहाय गर्ह्यं परिगृह्य पावनं
शिवाय दानं निधिना वितीर्यते ॥ ३९ ॥

अर्थ—या प्रकार पंडितनिकरि निर्मलबुद्धिकरि गुण अर दोषनिका भाजन जो बहुतप्रकार पात्र ताहि जानकै अर निदनीककौ त्यागिकै अर पवित्रकौ ग्रहण करकै मोक्षके अर्थ विधिसहित दान दीजिएहै ।

भावार्थ—या प्रकार गुण दोषनतै पात्र अर अपात्रकौ जानिकै मोक्षकै अर्थ अपात्रनिकौ त्यागकै पात्रनिकौं दान देना योग्यहै ॥ ३९ ॥

आगै उत्तम पात्रनिकौ आहार देनेकी विधि कहैहैं;—

कृतोत्तरासंगपवित्रविग्रहो
निजालयद्वारगतो निराकुलः ।
ससंभ्रमं स्वीकुरुते तपोधनं
नमोऽस्तु तिष्ठेति कृतध्वनिस्ततः ॥ ४० ॥

सुसंस्कृते पूज्यतमे गृहांतरे
तपस्विनं स्थापयते विधानतः ।
मनीषितानेकफलप्रदायकं
सुदुर्लभं रत्नमिवास्तदूषणम् ॥ ४१ ॥

अनेकजन्मार्जितकर्मकर्त्तिन
स्तपोनिधेस्तत्र पवित्रवारिणा ।
स सादरः क्षालयते पदद्वयं
विमुक्तये मुक्तिसुखाभिलाषिणः ॥ ४२ ॥

प्रसूनगंधाक्षतदीपकादिभिः
प्रपूज्य मर्त्यामरवर्गपूजितम् ।
मुदा मुमुक्षोः पदपंकजद्वयं
स वंदते मस्तकपाणिकुड्मलः ॥ ४३ ॥

मनोवचः कायविशुद्धिमंजसा
विधाय विध्वस्तमनोभवद्विपः ।
चतुर्विधाहारमहार्यनिश्चयो
ददाति सः प्रासुकमात्मकल्पितम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—करयाहै उज्ज्वल धोवती दुपट्टा सहित पवित्र शरीर जानैं, बहुरि अपने घरके द्वारमैं प्राप्त भया आकुलता रहित ऐसा भया संता मुनिराजकौ अंगीकार करैहै, कैसाहै सो नमस्कार होउ, हे मुनीन्द्र इहां तिष्ठौ ऐसै करयाहै शब्द जानैं ॥ ४० ॥ बहुरि ता पीछै भले प्रकार कियाहै संस्कार जाका,

भावार्थ—दयासहित लगाहै चौका आदि जहां ऐसे अतिशय करि प्रशंसा योग्य घरके भीतर तपस्वीकौ विधानतैं स्थापित करै, कैसाहै तपस्वी वांछित अनेक फलका देनेवालाहै, अर दूषण रहित रत्नकी ज्यों भले प्रकार दुर्लभहै ॥ ४१ ॥ अनेक जन्मकरि उपार्जे जे कर्म तिनका काटनेवाला ऐसा जो तपोधन मुनि ताके तहां पवित्र जल करि सो आदरसहित चरण युगलकौ मुक्तिके अर्थ प्रक्षालन करैहै, कैसेहै मुनि मुक्तिके सुखकीहै अभिलाषा जाकै ॥ ४२ ॥ बहुरि मनुष्य अर देवनके समूहकरि पूजित जो मोक्षाभिलाषी मुनिका चरणयुगल ताहि पुष्प गंध अक्षत दीपक इत्यादि द्रव्यानि करि हर्षसहित वंदैहै, अर मस्तकसे लगाएहै हस्तकमल जानै ॥ ४३ ॥ बहुरि नाश कियाहै कामरूप वैरी जानै ऐसे मुनिकौं मन वचन कायकी विशुद्धिता भले प्रकार करकै आपके अर्थ किया जो चार प्रकार प्रासुक आहार ताहि देयहै, कैसाहै सो पुरुष नाहीं हरणे योग्यहै निश्चय जाका,

भावार्थ—दृढ है श्रद्धान जाका ऐसाहै ॥ ४४ ॥

अनेन दत्तं विधिना तपस्विनां
महाफलं स्तोकमपि प्रजायते ।
वसुंधरायां वटपादपस्य किं
न वीजमुप्तं परमेति विस्तरम् ॥ ४५ ॥

अर्थ—इस विधिसहित तपस्वीनकौ थोडा दिया जो दान सो महाफल उपजावै है जैसै पृथ्वीविषै बोया जो वटवृक्षका बीज सो कहा उत्कृष्ट विस्तारकौ प्राप्त न होय है, होयही है ॥ ४५ ॥

निवेशितं बीजमिलातलेऽनघे
विना विधानं न फलावहं यथा ।
तथा न पात्राय वितीर्णमंजसा
ददाति दानं विधिना विना फलम् ॥ ४६ ॥

अर्थ—जैसैं निर्दोष पृथ्वीतल विषै बोया भया बीज है सो विधान जो जतन आदि क्रिया ता विना फलदाता न होय है तैसै पात्रके अर्थ भले प्रकार दिया भया दान है सो विधि जो पडगाहन आदि ता विना फलकौ न देय है ॥ ४६ ॥

सदाऽतिथिभ्यो विनयं वितन्वता
निजं प्रदेयं प्रियजल्पिना धनम् ।
प्रजायते कर्कशभाषिणः स्फुटं
धनं वितीर्ण गुरुवैरकारणम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—विनयको विस्तारता अर मिष्ट वचन बोलता जो पुरुष ताकरि पात्रनिके अर्थ अपना धन कहिये यथायोग्य आहारादि वस्तु देना योग्य है जातै कठोर वचन बोलनेवालेकै दिया भया वस्तु है सो प्रकटपने महावैरका कारण होयहै ॥ ४७ ॥

निगद्य यः कर्कशमस्तचेतनो
निजं च दत्ते द्रविणं शठत्वतः ।
सुखाय दुःखोदयकारणं परं
मूल्येन गृह्णाति स दुर्मनाः कलिम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—जो निर्बुद्धी कठोर वचनकौ बोलकै अर मूर्खपनातैं अपना द्रव्य देय है सो दुष्टचित्त सुखके अर्थ केवल दुःखके उदयका कारण जो पाप कलह ताहि मूल्य तैं ग्रहण करैहै ।

भावार्थ—जो खोटा वचन बोलकै दान देयहै सो उलटा पापबंध करै है ॥ ४८ ॥

सम्यग्भक्तिं कुर्वतः संयतेभ्यो
द्रव्यं भावं कालमालोक्य दत्तम् ।
दातुर्दानं भूरि पुण्यं विधत्ते ।
सामग्रीतः सर्वकार्यप्रसिद्धिः ॥ ४९ ॥

अर्थ—भले प्रकार भक्तिकौं करता जो दाता ताके द्रव्य भाव काल इनकौ विचारकै दिया भया दानहै सो घनै पुण्यकौं उपजावैहै, जातैं सर्व कार्यकी प्रसिद्धि है सो सामग्रीतैं होय है ।

भावार्थ—भक्तिसहित द्रव्यादिक पूर्व कहे प्रमाण विचारकै पात्रनिकै अर्थ थोडा भी दिया दान है सो बहुत पुण्यबंधकौ करै है, इहां द्रव्य भाव काल तो कहे अर क्षेत्र पात्रनिकौं जान लेना ॥

वलाहकादेकरसं विनिर्गतं
यथा पयो भूरिरसं निसर्गतः
विचित्रमाधारमवाप्य जायते
तथा स्फुटं दानमपि प्रदातृतः ॥५०॥

अर्थ—जैसैं मेघतै निकस्या जो एक रसरूप जल सो स्वभावहीतैं नाना प्रकार आधारकौं पाय करि अनेक रसरूप होय है तैसै दातातै निकस्या दान भी प्रकटपने नाना प्रकार पात्रनिकौ पाय अनेक प्रकार-रूप परिणमै है ।

भावार्थ—जैसै पात्रकौ दान दीजिए तैसाही कर्मबंध स्वयमेव होय है, ऐसा जानना ॥ ५० ॥

घटे यथाऽऽमे सलिलं निवेशितं
पलायते क्षिप्रमसौ च भिद्यते।
तथा वितीर्ण विगुणाय निष्फलं
प्रजायते दानमसौ च नश्यति ॥ ५१ ॥

अर्थ—जैसै काचे घट विषै धरया जो जल है सो शीघ्र निकल जाय है अर घट भी फूट जाय है तैसै गुणरहित पुरुषके अर्थ दिया भया दान है सो निष्फल होय है अर वो लेनेवाला भी नाशकौ प्राप्त होय है पापबंध करै है, ऐसा जानना ॥ ५१ ॥

विना विवेकेन यथा तपस्विता
यथा पटुत्वेन विना सरस्वती।
तथा विधानेन विना वदान्यता
न जायते शर्मकरी कदाचन ॥ ५२ ॥

अर्थ—जैसै विना विवेक तपस्वीपना अर चातुर्यपना विना सरस्वती कदाचित् सुखकारी न होय है तैसै पूर्वोक्त विधान विना दान देना कदाच सुखकारी नाहीं ॥ ५२ ॥

यथा वितीर्ण भुजगाय पावनं
प्रजायते प्राणहरं विषं पयः।
भवत्यपात्राय धनं गुणोज्ज्वलं
तथा प्रदत्तं बहुदोपकारणम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—जैसै सर्पकै अर्थ दिया भया जो पवित्र दूध सो प्राणनका हरनेवाला विष होय है तैसै अपात्रके अर्थ गुणनि करि उज्ज्वल जो धन सो दिया भया बहुत दोषका कारण होय है ॥ ५३ ॥

वितीर्य यो दानमसंयतात्मने
जनः फलं कांक्षति पुण्यलक्षणम् ।
वितीर्य वीजं ज्वलिते स पावके
समीहते सस्यमपास्तदूषणम् ॥ ५४ ॥

जो मनुष्य असंयत मनुष्यके अर्थ दान देकरि पुण्य है लक्षण जाका ऐसे फलकौं चाहै है सो जलती अग्निविषैं वीजकौं वोय करि दूषणरहित धान्यकौं वांछै है।

भावार्थ—विषय कषायनि सहित मदोन्मत्त मिथ्यादृष्टीनकौं दान देकै पुण्य चाहै है सो नाहीं होय है। बहुरि इहां असंयमीकौं दान निषेध्या सो दुःखित जीवनिकौं करुणा दान नाहीं निषेध्या है, ऐसा जानना ॥ ५४ ॥

विमुच्य यः पात्रमवद्यविच्छिदे
कुधीरपात्राय ददाति भोजनम् ।
स कर्षितं क्षेत्रमपोह्य सुन्दरं
फलाय वीजं क्षिपते वतोपले ॥ ५५ ॥

अर्थ—जो पुरुष पापके नाशके अर्थ पात्रकौं छोडकै अपात्रकौं भोजन देय है तहां आचार्य कहैहैं वडे खेदकी वात है जो सुंदर जोते भये खेतकौं छोडकरि पत्थर विषै वीजकौं खेपै है ॥ ५५ ॥

यथा रजोधारिणि पुष्टिकारणं
विनश्यति क्षीरमलावुनि स्थितम् ।
प्ररूढमिथ्यात्वमलाय देहिने
तथा प्रदत्तं द्रविणं विनश्यति ॥ ५६ ॥

अर्थ—जैसै पुष्टिकारी जो दूध सो धूरकी धारने वाली जो तूंवडी ताविषैं धरया भया नाशकौं प्राप्त होय है तैसैं फैल रह्या है मिथ्यात्व-रूप मल जाकै ऐसे प्राणीकौं दिया भया द्रव्य है सो नाशकौं प्राप्त होय है।

भावार्थ—जैसैं धूल भरी कटुक तूंबडी विषै भरया दूध नाशकौ प्राप्त होय अर कटुक परिणमै तैसैं मिथ्यादृष्टीकौ दिया धन नाशकौ प्राप्त होय है अर पापबंध करै है, ऐसा जानना ॥ ५६ ॥

नो दातारं मन्मथाक्रांतचित्तः
संसारार्तेः पाति पापावलीढः।
अंभोराशेर्दुस्तरा लोहमय्या
नावा लोहं तार्यमाणं न दृष्टम् ॥ ५७ ॥

अर्थ—कामकरि व्याप्त है चित्त जाका ऐसा पापरूप पुरुषहै सो दाताकौं संसारकी पीडातै न बचावैहै, जातै दुस्तर समुद्रतै लोहमयी नावकरि लोह तिराया न देख्या ॥ ५७ ॥

ग्रंथारंभक्रोधलोभादि पुष्टो
ग्रंथारंभक्रोधलोभादिपुष्टम्।
जन्माराते रक्षितुं तुल्यदोषो
नूनं शक्तो नो गृहस्थो गृहस्थम् ॥५८॥

अर्थ—आचार्य तर्क करि कहै हैं, अहो! जो परिग्रह आरंभ क्रोध लोभ इत्यादिकनि करि पुष्टहै परिग्रहधारी गुरुहै सो परिग्रह आरंभ क्रोध लोभ आदि करि पुष्ट जो गृहस्थ ताहि संसार वैरीतै रक्षा करनेकौ समर्थ नाहीं, कैसाहै सो गुरु गृहस्थसमानहै दोष जा विषै।

भावार्थ—परिग्रहादि दोषनि करि तैसा दाता तैसाही पात्र सो दोषसहित पात्रका कैसै भला करै ऐसी आचार्यनै तर्क करीहै, ऐसा जानना ॥ ५८ ॥

लोभमोहमदमत्सरहीनो
लोभमोहमदमत्सरगेहम्।

पाति जन्मजलधेरपरागो
रागवंतमपहस्तितपापः ॥ ५९ ॥

अर्थ—दूर किया है पाप जानै ऐसा वीतराग लोभ मोह मद भावकरि रहित पात्र है सो लोभ मोह मद मत्सर भावानिका घर जो रागी पुरुष ताहि संसार समुद्रतै रक्षा करैहै।

भावार्थ—रागी जीवनकौं तारनेकौं वीतरागही समर्थ है अन्य नाहीं, ऐसा जानना ॥ ५९ ॥

सर्वदोषनिचिताय फलार्थी
यो ददाति धनमस्तविचारः।
तद्दधाति स मलिम्लुचहस्ते
कानने पुनरपि ग्रहणाय ॥ ६० ॥

अर्थ—जो विचाररहित पुरुष फलका अर्थी दोषनि करि व्याप्त पुरुषके अर्थ धनकौं देयहै सो वनविषै चौरनके हाथमैं फेर पाछा लेनेकै अर्थ धन सौंपैहै ॥ ६० ॥

दानं यतिभ्यो ददता विधानतो
मतिर्विधेया भवदुःखशांतये।
दुरंतसंसारपयोधिपातिनी
न भोगबुद्धिर्मनसाऽपि धीमता ॥ ६१ ॥

अर्थ—विधानसहित यतीनके अर्थि दान देता जो पुरुष ता करि संसार दुःखकी शांतिके अर्थि बुद्धि करणी योग्यहै, अर दूरहै अंत जाका ऐसा जो संसारसमुद्र ताविषै पटकने वाली जो भोगनिकी बुद्धि सो बुद्धिवानकरि मनकरि भी करणी योग्य नाहीं।

भावार्थ—दान देकरि परमार्थहीकी बुद्धि करणी भोगनिकी अभिलाषा न करणी ॥ ६१ ॥

प्रदाय दानं व्रतिनां महात्मनां
यो याचते भोगमनर्थकारणम्।
मनीषितानेकसुखप्रदं मणिं
प्रदाय गृह्णाति स दुर्जरं विषम् ॥ ६२ ॥

अर्थ—जो पुरुष महात्मा व्रतीनकौं दान देकरि अनर्थ का कारण जो भोग ताहि वांछैहै सो वांछित अनेक सुखका देनेवाला जो रत्न ताहि देकरि दुर्जर विषकौं ग्रहण करैहै ॥ ६२ ॥

पन्नागानामिव प्राणिवित्रासिना
मर्जने रक्षणे पोषणे सेवने।
याति घोराणि दुःखानि येषां जनः
संति भोगाः कथं ते मतः धीमताम् ॥ ६३ ॥

अर्थ—प्राणीनकौं दुःख देनेवाले सर्पनके समान जो भोग तिनके उपजावने विषै रक्षण विषै पोषणे विषै सेवने विषै भयानक दुःखनिकौं जीव प्राप्त होयहै ते भोग बुद्धिवाननि के मने भए कैसै होय।

भावार्थ—भोगनिकौं बुद्धिमान सुखकारी कैसै मानै, अपि तु नाहीं मानै ॥ ६३ ॥

श्रद्धीयमाणा अपि वंचयंते
निषेव्यमाणा अपि मारयंते।
ये पोष्यमाणा अपि पीडयंते
ते संति भोगाः कथमर्थनीयाः ॥ ६४ ॥

अर्थ—जे भोग प्रीति करे भएभीठिगैहै अर सेये भयेभी मारैहै अर पोषे भएभी पीडा उपजावै है ते भोग कैसे वांछने योग्य होय है, अपि तु नाहीं होय है ॥ ६४ ॥

उत्पद्यमाना निलयं स्वकीयं
ये हव्यवाहा इव धार्यमाणाः।
प्रप्लोषयंते हृदयं ज्वलंत
स्ते याचनीयाः कथमिंद्रियार्थाः ॥ ६५ ॥

अर्थ—जैसैं जाज्वल्यमान उपजी भई अग्नि हैं ते अपने स्थानकौं जलावैं तैसै वे भोग इच्छाकरि धरेभए मनविषै जलते संते हृदयकौ जलावै है ते इंद्रियनिके भोग कैसै वांछने योग्य होय ॥ ६५ ॥

दत्तप्रलापभ्रमशोकमूर्च्छाः
संतापयंतः सकलं शरीरम्।
ये दुर्निवारां जनयंति तृष्णां
ज्वरा इवैते न सुखाय संति ॥ ६६ ॥

अर्थ—दियाहै प्रलाप कहिए वृथा वकवाद अर भ्रमकहिये औरका और जानना अर शोक अर अचेतनपना जिननैं बहुरि समस्त शरीरकौ संताप उपजावते अर दुर्निवार तृष्णाकौं उपजावैहै ऐसे ज्वरनिके समान जे भोग ते सुखके अर्थ नाहीं है ॥ ६६ ॥

विश्राण्य दानं कुधियो यतिभ्यो
ये प्रार्थयंते विषयोपभोगम्।
ते लांगलैर्गा खलु कांचनीयै
र्विलिख्य किंपाकवनं वपंति ॥ ६७ ॥

अर्थ—जे कुबुद्धि यतीनके अर्थ दान देकरि विषयभोग कौ चाहैं है ते पुरुष सुवर्णमयी हलनि करि पृथ्वीकौ जोत करि किपाकनिके वनकौ बोवैंहै।

भावार्थ—किंपाकका फल खानेमै तौ प्रिय लागैहै अर पाछै प्राण हरैहै तैसै विषय भी भोगते तौ नीके लागैहै अर परिपाकमै महादुःख देयहै, तातै यह दृष्टांत दियाहै ॥ ६७ ॥

भिंदंति सूत्राय मणिं महर्घं
काष्ठाय ते कल्पतरुं लुनंति ।
नावं च लोहाय विपाटयंते
भोगाय दानं ननु ये ददंते ॥ ६८ ॥

अर्थ—आचार्य तर्क करैहै जो जे पुरुष भोगनके अर्थ दान देयहै ते डोराके अर्थ महामोल रत्नकौं फोडैहैं, अर काष्ठके अर्थ कल्पवृक्षकौ काटैहै अर लोहके अर्थ जहाजकौ तोडैहै ॥ ६८ ॥

परैरशक्यं दमितेंद्रियाश्वा
श्रयंति धर्मं विषयार्थिनो ये ।
पाषाणमाधाय गले महांतं
विशंति ते तीरमलभ्यपारम् ॥ ६९ ॥

अर्थ—दमेहै इंद्रियरूप घोडे जिननैं ऐसे जे पुरुष औरनि करि अशक्य जो धर्म ताहि विषयार्थी भए संते आचरैहै ते बडे बडे पाषा-णकौं गले विषै धारकै नाही लेनेयोग्यहै पार जाका ऐसा जो जल ता प्रति प्रवेश करैहै ॥ ६९ ॥

दिने दिने ये परिचर्यमाणा
विवर्द्धमानाः परिपीडयंते ।
ते कस्य रोगा इव संति भोगा
विनिंदनीया विदुषोऽर्थनीयाः ॥७०॥

अर्थ—जे भोग दिन दिन विषै परिचार किये भए वर्द्धमान भए संते जैसै रोग पीडा उपजावै तैसै पीडा उपजावैहै ते निंदनेयोग्य भोग कौन पंडित जनकौ वांछने योग्य होयहै, अपि तु नाहीं होयहै ॥ ७० ॥

प्रयच्छंति सौख्यं सुराधीश्वरेभ्यो
न ये जातु भोगाः कथं ते परेभ्यः ।
निशुंभंति ये मत्तमत्र द्विपेंद्रं
न कंठीरवास्ते कुरंगं त्यजंति ॥७१॥

अर्थ—जे भोग सुरनिके नायक जो इंद्र तिनके अर्थ ही कदाचित् सुख न देयहै ते औरनके अर्थि सुख कैसै देय, इहां दृष्टांत कहैहै—जे सिंह इहां लोकमै मतवारे गजेंद्रकौ मारैहै ते हिरणकौ नाहीं छोडैहैं ॥ ७१ ॥

न याचनीयाविदुषेति दोषं
विज्ञाय रोगा इव जातु भोगाः ।
किं प्राणहारित्वमवेक्षमाणो
जिजीविषुः खादति कालकूटम् ॥ ७२ ॥

अर्थ—या प्रकार दोषकौं जानिकै पंडितजन करि रोग समान जे भोग ते कदाचित् वांछने योग्य नाहीं, इहां दृष्टांत कहैहैं—प्राणहारीपणेकौं देखता जीवनेका वांछक जो पुरुष है सो कहा कालकूटकौ खाय है, अपि तु नाहीं खाय है ॥ ७२ ॥

भोगाः संपद्यमानाः सुरमनुजभवाश्चिंतितप्राप्तसौख्या
याच्यंते लब्धुकामैः कथमपविपदं धर्मतो मुक्तिकांताम् ।

सस्यं स्वीकर्त्तुकामाः क्षुदुरुतरतमस्कांडविच्छेददक्षं
स्वीकर्त्तु किं पलालं फलममलधियः कुर्वते कर्षणं हि ॥

अर्थ—धर्मतै मुक्तिस्त्रीकौ प्राप्त होनेकी है इच्छा जिनके ऐसे पुरुपनि करि वांछित प्राप्त किये है सुख जिननै ऐसे प्राप्त भए जे देव मनुष्य जनित भोग ते विपदारूप कोई प्रकार याचिए है, अपि तु नाहीं याचिए है; जातै धान्यकौ अंगीकार करनेके वांछक जे निर्मलबुद्धि पुरुप है ते कहा प्यार फलकौ अंगीकार करनेकौ खेती करै है, अपि तु नाहीं करै है, कैसा है धान्य पीडारूप जो वडा अंधकारका समूह ताके छेदने विषै प्रवीण है ।

भावार्थ—जैसै खेतीमैं मुख्य फल तौ धान्य है अर पियार आदि स्वयमेव उपजै है तैसै धर्मका फल तौ मोक्ष है इंद्रादिक पद तौ विना चाहे शुभोपयोग तै स्वयमेव उपजै है, तातै इंद्रादिक पदके योग्य धर्मका वांछना योग्य नाहीं ॥ ७३ ॥

त्यक्त्वा भोगाभिलाषं भवमरणजरारण्यनिर्म्मूलनार्थं
दत्ते दानं मुदायो नयविनयपरः संयतेभ्यो यतिभ्यः ।
भुक्त्वा भोगानरोगानमरवरवधूलोचनांभोजभानु
र्नित्यां निर्वाणलक्ष्मीममितगतियतिप्रार्थनीयां स याति

अर्थ—नीति अर विनयविषै तत्पर भया जो पुरुप जन्म जरा मरणरूप वनके नाशके अर्थ भोगनिकी वाछाकौ त्यागिकै हर्षसहित संयमी मुनीश्वरनिके अर्थ दान देय है सो देवागनाके नयनकमलकौ सूर्यसमाम देव होय रोगरहित भोगनिकौ भोगि मोक्ष लक्ष्मीकौं प्राप्त होय है, कैसी है मोक्षलक्ष्मी अविनाशी है अर अप्रमाण है ज्ञान जिनका ऐसे यतीन करि वांछने योग्य है ॥ ७४ ॥

दोहा ।

भोग चाह तजि साधुकौं देत दान जो जीव ।
सुरसुख सब लहि अमितगति होय मोक्षतिय पीव ॥

इत्युपासकाचारे दशमः परिच्छेदः

इस प्रकार अमितगति आचार्यविरचित श्रावकाचारविषैं
दशवां परिच्छेद पूर्ण भया ।

अथ एकादश परिच्छेद ।
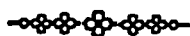
फलं नाभयदानस्य वक्तुं केनाऽपि पार्यते ।
यस्याऽऽकल्पं मुखे जिह्वा व्याप्रियंते सहस्रशः ॥ १ ॥

अर्थ—अभयदानके फलकौ कहनेकौ कोऊ करि भी समर्थ हूजिए है, अपि तु नाहीं हूजिए है; जिसके कहनेकौ कल्पकाल पर्यंत हजारौ जीभ मुखविषैं व्यापार कीजिए है तौ भी अभयदानके फल कहनेकौं कोऊ करि भी समर्थ न हूजिए है ॥ १ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां जीवितं मूलमिष्यते ।
तद्रक्षता न किं दत्तं हरता तन्न किं हृतम् ॥ २ ॥

अर्थ—धर्म अर्थ काम मोक्ष इन च्यारौंही पुरुषार्थनिका मूल जीवना कहिएहै तातैं तिस जीवनेकौ रक्षा करता जो पुरुष ताकरि कहा न दिया अर ता जीवनेकौ रक्षा हरता जो पुरुष ताकरि कहा न नाश किया, सर्वही नाश किया ॥ २ ॥

गोबालब्राह्मणस्त्रीतः पुण्यभागी यदीष्यते ।
सर्वप्राणिगणत्रायी नितरां न तदा कथम् ॥ ३ ॥

अर्थ—जो गौ बालक ब्राम्हण स्त्री इनकी रक्षातैं पुन्यवान जीव मानिए है तो समस्त प्राणीनिके समूहका रक्षा करनेवाला पुरुष है सो अधिक पुन्यवान कैसैं नाहीं ॥ ३ ॥

यद्येकमेकदा जीवं त्रायमाणाः प्रपूज्यते ।
न तदा सर्वदा सर्वं त्रायमाणः कथं बुधैः ॥ ४ ॥

अर्थ—जो एककाल एकजीवकौ रक्षा करता संता पुरुषहै सो पूजिएहै तौ सदा काल सर्व जीवकौ रक्षा करता संता पुरुषहै सो पंडितनि करि कैसै नाहीं पूजिए है, पूजिए ही है॥ ४ ॥

चामीकरमयीमुर्वीं ददानः पर्वतैः सह।
एकजीवाभयं नूनं ददानस्य समः कुतः ॥ ५ ॥

अर्थ—आचार्य तर्क करैहै;—पर्वतनि सहित सुवर्णमयी पृथ्वीकौं देता पुरुष है सो एकजीवकी रक्षा करता जो पुरुष ताके समान कहांतै होय, अपि तु नाहीं होय ॥ ५ ॥

गुणानां दुरवापानामर्चितानां महात्मभिः।
दयालुर्जायते स्थानं मणीनामिव सागरः॥ ६ ॥

अर्थ—बडे पुरुषनि करि पूजित ऐसे जे दुर्लभ गुण तिनका दयालु स्थानक होयहै, जैसै रत्ननिका स्थान समुद्र होयहै तैसै ॥ ६ ॥

संयमा नियमाः सर्वे दयालोः संति देहिनः ।
जायमाना न दृश्यंते भूरुहा धरणीमृते ॥ ७ ॥

अर्थ—दयावान जीव कै संयम नियम सर्व होय है, जातै पृथ्वी विना वृक्षहै ते उपजे न देखे ॥ ७ ॥

कारणं सर्ववैराणां प्राणिनां विनिपातनम्।
तत्सदा त्यजतस्त्रेधा कुतो वैरं प्रवर्त्तते ॥ ८ ॥

अर्थ—प्राणीनिकौं घातहै सो सर्व वैर भावनिका कारण है, तातैं प्राणीके घातकौ मन वचन काय करि त्यागता जो पुरुष ताकै वैरभाव कहां प्रवर्त्तै ॥ ८ ॥

मनोभूरिव कांतांग सुवर्णाद्रिरिव स्थिरः।
सरस्वानिव गंभीरो विवस्वानिव भास्वरः ॥ ९ ॥

आदेयः सुभगः सौम्यस्त्यागी भोगी यशोनिधिः ।
भवत्यभयदानेन चिरजीवी निरामयः ॥ १० ॥

अर्थ—अभयदान करि कामदेवसमान सुंदर शरीर होयहै, अर मेरुसमान स्थिर होयहै, अर समुद्रसमान गंभीर होयहै, अर सूर्यसमान प्रभावान होय है ॥ ९ ॥ सबनिकै प्यारा होयहै, सुंदर होयहै, सौम्य होयहै, त्यागी होयहै, भोगी होयहै, यशनिका भंडार होयहै, बहुत काल जीवैहै, रोगरहित होयहै; ये सर्व अभयदानके फल कहे ॥ १० ॥

तीर्थकृच्चक्रिदेवानां संपदो बुधवंदिताः ।
क्षणेनाभयदानेन दीयंते दलितापदः ॥ ११ ॥

अर्थ—अभयदान करि तीर्थंकर चक्रवर्त्ती देव इनिकी संपदा क्षणमात्रकरि दीजिएहै, कैसीहै संपदा पंडितनि करि वंदितहै अर नाश करीहै आपदा जिननैं ऐसी है ॥ ११ ॥

तदस्ति न सुखं लोके न भूतं न भविष्यति ।
यन्न संपद्यते सद्यो जंतोरभयदानतः ॥ १२ ॥

अर्थ—लोक विषै सो सुख वर्त्तमानमै नांहींहै अर न भया अर न होयगा सो सुख जीवको शीघ्र अभयदानतै नाही प्राप्त होयहै, सर्वही सुख प्राप्त होयहै ॥ १२ ॥

शरीरं ध्रियते येन शममेव महाव्रतम् ।
कस्तस्याभयदानस्य फलं शक्नोति भाषितुम् ॥ १३ ॥

अर्थ—जिस अभयदान करि जीवनिका शरीर पोषिएहै जैसै समभाव करि महाव्रत पोषिए तैसै सो, तिस अभयदानके फल कहनेकौ कौन समर्थ होयहै ॥ १३ ॥

ऐसै अभयदानका वर्णन किया ॥

आगै आहार दानका वर्णन करैहै;—

आहारेण विना कायो न तिष्ठति कथंचन।
भास्करेण विना कुत्र वासरो व्यवतिष्ठते ॥ १४ ॥

अर्थ—जैसे सूर्य विना दिन कहांतै तिष्ठै दिन न होय तैसै आहारविना शरीर कोई प्रकार न तिष्ठै है ॥ १४ ॥

शमस्तपो दया धर्मः संयमो नियमो दमः।
सर्वे तेन वितीर्यंते येनाऽऽहारो वितीर्यते ॥ १५ ॥

अर्थ—जा पुरुष करि आहार दीजिए है ताकरि शमभाव तप दया धर्म संयम नियम इंद्रियनिका दमन ये सर्व दीजिए है ॥ १५ ॥

चिंतितं पूजितं भोज्यं क्षीयते तस्य नालये।
आहारो भक्तितो येन दीयते व्रतवर्त्तिनाम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जा पुरुष करि भक्तितैं व्रतीनकौं आहारदान दीजिए है ताके घरविषैं वांछित अर प्रशंसा योग्य जोभोजन सो क्षीण नाहीं होय है ॥ १६ ॥

कल्याणानामशेषाणां भाजनं स प्रजायते।
सलिलानामिवांभोधिर्येनाहारो वितीर्यते ॥ १७ ॥

अर्थ—जा पुरुष करि आहारदान दीजिए है सो पुरुष जैसैं जलनिका भाजन समुद्र होय तैसै समस्त कल्याणनिका भाजन होय है ॥ १७ ॥

स्वयमेव श्रियोऽन्विष्य धन्यं दातारमंधसः।
आयांति तरसा श्रेष्ठाः सुभगं वनिता इव ॥ १८ ॥

अर्थ—आहारदान देनेवाले पुरुषकौ वेगि करि लक्ष्मी है ते स्वयमेव श्रेष्ठ आय प्राप्त होय है जैसैं श्रेष्ठ स्त्री है ते सुंदर पुरुषकौ आय प्राप्त होय तैसैं ॥ १८ ॥

संपदस्तीर्थकर्तॄणां चक्रिणामर्द्धचक्रिणाम्।
भजंत्यशनदं सर्वाः पयोधिमिवनिम्नगाः ॥ १९ ॥

अर्थ—तीर्थंकरनिकी चक्रवर्त्तीनिकी अर्द्धचक्रवर्त्तीनिकी सर्व संपदा हैं ते आहार देनेवाले पुरुषकौ सेवै है जैसै नदी समुद्रकौ सेवै तैसै॥ १९॥

प्रक्षीयंते न तस्यर्था ददानस्यापि भूरिशः।
ददाना जनतानंदं चंद्रस्येव मरीचयः॥ २०॥

अर्थ—जैसै लोचनकौ आनंद देती जे चंद्रमाकी किरण ते क्षीण न होयहै तैसैं बहुतदान देतेकी भी संपदा क्षीण न होयहै॥ २०॥

यत्फलं ददतः पृथ्वीं प्रासुकं यच्च भोजनम्।
अनयोरंतरं मन्ये तृणाब्धिजलयोरिव॥ २१॥

अर्थ—पृथ्वीकौं देता जो पुरुष ताका जो फल है बहुरि प्रासुक भोजनकौ देते पुरुष ताका जो फलहै, इनि दोऊनिका अंतर तृणकी अणीका जल अर समुद्रका जल इनि दोऊनिका अंतर है तैसैं मानूं हूं।

भावार्थ—पृथ्वी दानका तौ लोकमै प्रशंसामात्र फल है अर पाप वडाहै, अर भोजनदान का दोऊ भवनिमै सुखकारी फल है; तातै इनिका वड़ा अंतर कह्याहै, ऐसा जानना॥ २१॥

अन्नदानप्रसादेन यत्र यत्र प्रजायते।
तत्रोज्झ्यते भोगैर्नभास्वानिव रश्मिभिः॥ २२॥

अर्थ—जैसैं सूर्य जहां जहा जाय तहा तहां किरणनिकरि न छोडिए है तैसैं अन्नदानके प्रसाद करि जहा जहा जीव जाय तहां तहां भोगनि करि नाहीं छोडिए है॥ २२॥

ददानोऽशनमात्रं यत्फलं प्राप्नोति मानवः।
दानात्सुवर्णकोटीनां न कदाचन तद्भ्रुवम्॥ २३॥

अर्थ—भोजनमात्र देता जो पुरुष सो जिसफल कौं पावैहै सो फल कोड सुवर्णकौं देता जो पुरुषसो निश्चयतै कदाच न पावैहै॥ २३॥

विना भोगोपभोगेभ्यश्चिरं जीवति मानवः ।
न विनाऽऽहारमात्रेण तुष्टिपुष्टि प्रदायिना ॥ २४ ॥

अर्थ—भोग उपभोग विना तौ मनुष्य बहुत काल जीवै है बहुरि संतोष अर पुष्टपनाकौ देनेवाला जो भोजन ताविना न जीवैहै ॥२४॥

केवलज्ञानतो ज्ञानं निर्वाणसुखतः सुखम् ।
आहारदानतो दानं नोत्तमं विद्यते परम् ॥ २५ ॥

अर्थ—केवलज्ञानतै और दूजा उत्तम ज्ञान नाही, अर मोक्ष सुखतै और दूजा सुख नाहीं, अर आहारदानतै और दूजा उत्तम दान नाहीं ॥ २५ ॥

अंधसा क्रियते यावानुपकारः शरीरिणः ।
न तावान् रत्नकोटीभिः पुंजिताभिरपि स्फुटम् ॥ २६ ॥

अर्थ—प्राणीका जितना उपकार भोजन करि करिये है तितना उपकार एकठे किये कोडयां रत्ननि करि भी प्रगटपने नहीं करिये है ॥ २६ ॥

हीयंते निखिलाश्चेष्टा विना भोजनमात्रया ।
गुप्तयो व्यवतिष्ठंते विना कुत्र तितिक्षया ॥ २७ ॥

अर्थ—भोजनरूप मात्रा विना समस्त चेष्टा नाशकौ प्राप्त होय है जैसैं क्षमा विना मन वचन कायकी गुप्ति है ते कहां तिष्ठै है, कहूं भी न तिष्ठै है ॥ २७ ॥

सीर्यंते तरसा गात्रं जंतोर्वर्जितमंधसा ।
विना नीरं क सस्यस्य कोमलस्य व्यवस्थितिः ॥ २८ ॥

अर्थ—प्राणीका शरीर है सो भोजन विना जलदी क्षीण होय है जैसैं जल विना कोमल धानकी स्थिरता कहां होय, अपि तु कहूं भी न होय है, ऐसा जानना ॥ २८ ॥

यथाऽऽहारः प्रियः पुंसां न तथा किंचनापरम् ।
विक्रीयंते प्रियाः पुत्रास्तदर्थे कथमन्यथा ॥ २९ ॥

अर्थ—पुरुषनिकौ जैसा भोजन प्रिय है तैसा और किछू प्रिय नाहीं, जो ऐसै न होय तौ प्यारे पुत्र तिस आहारके अर्थि कैसै बेचिये है, तातैं आहार सर्व तै प्यारा है ॥ २९ ॥

यत्किंचित्सुंदरं वस्तु दृश्यते भुवनत्रये ।
तदन्नदायिना क्षिप्रं लभ्यते लीलयाऽखिलम् ॥ ३० ॥

अर्थ—जो किछू वस्तु तीन लोकविषै सुंदर देखिये है सो सर्व वस्तु अन्न दान करता जो पुरुष ता करि लीलामात्र करि शीघ्र पाइये है ।३०।

वहुनाऽत्र किमुक्तेन विना सकलवेदिना ।
फलं नाऽऽहारदानस्य परः शक्नोति भाषितुम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—इहां वहुत कहने करि कहा है, आहारदानका फल सर्वज्ञविना और दूजा कहनेकौं समर्थ नाहीं ॥ ३१ ॥

ऐसै आहारदानका फल वर्णन किया, आगै औषधिदानका वर्णन करैं हैं:—

रक्ष्यते व्रतिनां येन शरीरं धर्मसाधनम् ।
पार्यते न फलं वक्तुं तस्य भैषज्यदायिनः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जिस औषधदान करनेवाले करि धर्मका साधन जो व्रतीनका शरीर ताकी रक्षा कीजियेहै तिस औषधदानीके फल कहनेकौं समर्थ न हूजियेहै ॥ ३२ ॥

येनौषधप्रदस्येह वचनैः कथ्यते फलम् ।
चुलुकैर्मीयते तेन पयो नूनं पयोनिधेः ॥ ३३ ॥

अर्थ—आचार्य कहैहै मै ऐसा मानूंहूं कि जिस करि इस लोकमै औषध देनेवालेका फल वचन करि कहियेहै, ताकरि समुद्रका जल चल्लूनि करि मापियेहै ॥ ३३ ॥

वातपित्तकफोत्थानै रोगैरेष न पीड्यते ।
दावैरिव जलस्थायी भेषजं येन दीयते ॥ ३४ ॥

अर्थ—जा पुरुष करि औषध दीजिएहै सो पुरुष जैसै दावानल करि जल विषैं तिष्ठया पुरुष न पीडिए तैसै वात पित्त कफ करि उठे रोगनि करि न पीडिए है ॥ ३४ ॥

रोगैर्निपीडितो योगी न शक्तो व्रतरक्षणे ।
नास्वस्थैः शक्यते कर्तुं स्वस्थकर्म कदाचन ॥ ३५ ॥

अर्थ—रोगनि करि पीडित जो साधु सो व्रतनिकी रक्षा विषै समर्थ न होयहै बहुरि आकुलतासहित जीवनि करि निराकुल कार्य कदाच करनेको समर्थ न हूजियेहै ॥ ३५ ॥

न जायते सरोगत्वं जंतोरौषधदायिनः ।
पावकं सेवमानस्य तुषारं हि पलायते ॥ ३६ ॥

अर्थ—औषध देनेवाले पुरुषकै सरोगपना न होयहै, जातैं अग्निकौ सेवते पुरुषका शीत दूर भागैहै ॥ ३६ ॥

आजन्म जायते यस्य न व्याधिस्तनुतापकः ।
किं सुखं कथ्यते तस्य सिद्धस्येव महात्मनः ॥ ३७ ॥

अर्थ—जाकै जन्मतैं लगाय शरीरकौ ताप उपजावने वाला रोग न होयहै तिस सिद्धसमान महात्माका सुख कहा कहिए । इहां सिद्ध-समान कह्या सो जैसै सिद्धनिकौं रोग नाहीं तैसै याकै भी रोग नाहीं, ऐसी समानता देखि उपमा दीनीहै सर्व प्रकार सिद्ध न जानलेना ॥ ३७ ॥

निधानमेष कांतीनां कीर्त्तीनां कुलमंदिरम्।
लावण्यानां नदीनाथो भैषज्यं येन दीयते ॥ ३८ ॥

अर्थ—जा पुरुष करि औषध दीजिए है सो यहु पुरुष कांति कहिये दीप्तिनिका तौ भंडार होय है, अर कीर्त्तिनिका कुलमंदिर होय है जामै यश कीर्त्ति सदा वसै है, बहुरि सुंदरतानिका समुद्र होय है ऐसा जानना ॥ ३८ ॥

ध्वांतं दिवाकरस्येव शीतं चित्ररुचेरिव।
भैषज्यदायिनो देहाद्रोगित्वं प्रपलायते ॥ ३९ ॥

अर्थ—जैसै सूर्यके शरीरतै अंधकार दूरि भागै है अर अग्निके शरीरतै शीत दूरि भागै है तैसै औषध देनेवाले पुरुषके देहतै रोगीपना दूरि भागै है ॥ ३९ ॥

आरोग्यं क्रियते येन योगिनां योगमुक्तये।
तदीयस्य न धर्मस्य समर्थः कोऽपि वर्णने ॥ ४० ॥

अर्थ—जा करि योगीश्वरनके मन वचन कायकी मुक्तिके अर्थि रोगरहितपना कीजिए है ताके धर्मके वर्णनविषै कोई भी समर्थ नाहीं ॥ ४० ॥

चारित्रं दर्शनं ज्ञानं स्वाध्यायो विनयो नयः।
सर्वेऽपि विहितास्तेन दत्तं येनौषधं सताम् ॥ ४१ ॥

अर्थ—जानै साधूनिकौ औषधदान दिया तानै चारित्र दर्शन ज्ञान विनय नीति ये सर्वही किये।

भावार्थ—औषधतै शरीर नीरोग होय तब सर्व धर्मका साधन बनै है, ऐसा जानना ॥ ४१ ॥

ऐसै औषधदानका वर्णन किया; आगैं शास्त्रदानकौ कहैहै;—

संसृतिश्छिद्यते येन निर्वृतिर्येन दीयते।
मोहो विधूयते येन विवेको येन जन्यते ॥ ४२ ॥

कषायोर्मद्यते येन मानसं येन शम्यते ।
अकृत्यं त्याज्यते येन कृत्ये येन प्रवर्त्त्यते ॥ ४३ ॥

तत्वं प्रकाश्यते येन येनातत्वं निषिध्यते ।
संयमः क्रियते येन सम्यक्तं येन पोष्यते ॥ ४४ ॥
देहिभ्यो दीयते येन तच्छास्त्रं सिद्धिलब्धये ।
कस्तेन सदृशो धन्यो विद्यते भुवनत्रये ॥ ४५ ॥

अर्थ—जाकरि संसार छेदिएहै, अर जाकरि मोक्ष दीजिएहै, अर जाकरि मोह छुडाइएहै, अर जाकरि विवेक उपजाइए है ॥ ४२ ॥ अर जाकरि क्रोधादिक कषाय नाश कीजिएहै, अर जाकरि मन शांत कीजिएहै, अर जाकरि अकार्य छुडाइए है, अर जाकरि कृत्यमें प्रवर्ताइए है ॥ ४३ ॥ अर जाकरि पदार्थनि का सांचा स्वरूप निषेधियेहै, अर जाकरि पदार्थनिका अन्यथा स्वरूप निषेधियेहै, अर जाकरि संयमभाव करिएहै, अर जाकरि सम्यक्त पोषिएहै ॥ ४४ ॥ ऐसा जो शास्त्र प्राणनिकौ जाकरि मुक्तिके अर्थि दीजिएहै तासमान तीनलोकविषै धन्य पुरुष कौन है, अपि तु कोई नाही ॥ ४५ ॥

मुक्तिः प्रदीयते येन शास्त्रदानेन पावनी ।
लक्ष्मीं सांसारिकीं तस्य प्रददानस्य कः श्रमः ॥ ४६ ॥

अर्थ—जिस शास्त्रदान करि पवित्र मुक्ति दीजिएहै ताके संसारकी लक्ष्मी देतेके कहा श्रम है ।

भावार्थ—जाकरि मुक्ति पाइए ताकरि इंद्रादिकपद दुर्लभ नाहीं ॥ ४६ ॥

लभ्यते केवलज्ञानं यतो विश्वावभासकम् ।
अपरज्ञानलाभेषु कीदृशी तस्य वर्णना ॥ ४७ ॥

अर्थ—जा शास्त्रज्ञानते विश्वका प्रकाशक केवल ज्ञान पाइएहै तो और मतिज्ञान आदिके पावने विषै ताकी कथनी कैसी, और ज्ञान पावना तौ सहजहीहै ॥ ४७ ॥

मर्त्यामरश्रियं भुक्त्वा भुवनोत्तमपूजिताम् ।
ज्ञानदानप्रसादेन जीवो गच्छति निर्वृतिम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—ज्ञानदानके प्रसादकरि जीवहै सो लोकविषै उत्तम अर पूजित ऐसी मनुष्यनिकी अर देवनिकी लक्ष्मीकौ भोगकै मुक्तिकौ प्राप्त होयहै ॥ ४८ ॥

चतुरंगं फलं येन दीयते शास्त्रदायिना ।
चतुरंगं फलं तेन लभ्यते न कथं स्वयम् ॥ ४९ ॥

अर्थ—जिस शास्त्रके देनेवाले पुरुष करि चतुरंग कहिए धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ये च्यार पुरुषार्थरूप फलदीजिएहै ताकरि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, रूप फल स्वयमेव कैसै न पाइए है ॥ ४९ ॥

शास्त्रदायी सतां पूज्यः सेवनीयो मनीषिणाम् ।
वादी वाग्मी कविर्मान्यः ख्यातशिक्षः प्रजायते ॥ ५० ॥

अर्थ—शास्त्रकौ देनेवाला पुरुष संतनिके पूजनीक होय है अर पंडितनिके सेवनीक होय है, अर वादीनिकौ जीतनेवाले है वचन जाके ऐसा वादी होय है, बहुरि वाग्मी कहिये सभाकौ रंजायमान करनेवाला वक्ता होय है, अर कवि कहिये नवीनग्रंथ रचनावाला होय है, अर मानने योग्य होय है, अर विख्यात है शिक्षा जाकी ऐसा होय है ॥५०॥

ऐसै शास्त्रदानका वर्णन किया, आगै वसतिकादानकौ कहैहै;—

विचित्ररत्ननिर्माणः प्रोत्तुंगो बहुभूमिकः ।
लभ्यते वासदानेन वासश्चंद्रकरोज्ज्वलः ॥ ५१ ॥

अर्थ—वसतिकादान करि चंद्रमाकी किरण समान उज्ज्वल विचित्ररत्न करि रच्या महाऊंचा बहुत खणनिका महल पाइये है ॥ ५१ ॥

आगैं वस्त्रदानकौ कहैहै;—

कोमलानि महार्घ्याणि विशालानि घनानि च ।
वासोदानेन वासांसि संपद्यंते सहस्रशः ॥ ५२ ॥

अर्थ—वस्त्रदानकरि कोमल अर महामोल अर सघन ऐसे हजारां वस्त्र पाइए है ।

भावार्थ—आर्जिका श्रावक श्राविका इत्यादिकनिकौ वस्त्रदान करै ताका फल इहां कहा है ॥ ५२ ॥

ददती जनतानंदं चंद्रकांतिरिवामला ।
जायते पानदानेन वाणी तापपनोदिनी ॥ ५३ ॥

अर्थ—पान कहिये पीवने योग्य वस्तु ताके दान करि चंद्रकांति मणिसमान निर्मल लोकानिकौ आनंद देनेवाली तापकी नाश करनेवाली ऐसी वाणी होय है ॥ ५३ ॥

ददानः प्रासुकं द्रव्यं रत्नत्रितयबृंहकम् ।
कांक्षितं सकलं द्रव्यं लभते परदुर्लभम् ॥ ५४ ॥

अर्थ—रत्नत्रयका वढावनेवाला ऐसा जो प्रासुक द्रव्य है ताहि देता पुरुप औरनिकौ दुर्लभ ऐसा वांछित सकल पदार्थ पावै है ॥ ५४ ॥

विश्राणयति यो दानं सेवमानस्तपस्विनः ।
सेव्यते भुवनाधीशैः स सदा सुखकांक्षिभिः ॥ ५५ ॥

अर्थ—जो पुरुष तपस्वीनकौ सेवता संता दान देयहै सो पुरुष सुखके वांछक जे इंद्रादिक तिनकरि सदा सेइए है ॥ ५५ ॥

यः प्रशंसापरो नत्वा दानं यच्छति योगिनाम् ।
प्रशस्यः स सदा सद्भिर्जिनेन्द्र इव नम्यते ॥ ५६ ॥

अर्थ—जो पुरुष मुनीनकौ प्रशंसामैं तत्पर भया दान देय है सो पुरुष सदा प्रशंसा योग्य होयहै, अर सत्पुरुष जैसै तीर्थंकरदेवकौ नमै तैसै ताहि नमै है ॥ ५६ ॥

दत्ते शुश्रूषयित्वा यो दानं संयमशालिनाम् ।
शुश्रूष्यते बुधैरेष भक्त्या गुरुरिवानिशम् ॥ ५७ ॥

अर्थ—जो शुश्रूषा करिकै संयमी मुनीनकौ दान देयहै सो यहु पंडितनिकरि निरंतर जैसैं गुरूनिकी शुश्रूषाकीजिए तैसै ताकी शुश्रूषा कीजिएहै ॥ ५७ ॥

आदृत्य दीयते दानं साधुभ्यो येन सर्वदा ।
आदरेणैष लोकेन निधानमिव गृह्यते ॥ ५८ ॥

अर्थ—जा पुरुष करि आदरसहित साधुनके अर्थ सदा दान दीजियेहै सो यहु पुरुष लोककरि निधान की ज्यौ आदरसहित ग्रहण कीजिए है ॥ ५८ ॥

पूजापरायणः स्तुत्वा यो यच्छति महात्मनाम् ।
त्रिदशैस्तीर्थकारीव स्तावं स्तावं स पूज्यते ॥ ५९ ॥

अर्थ—जो पुरुष पूजाविषै तत्पर स्तुति करिकै साधुपुरुषनिकौ दान देयहै सो पुरुष देवनि करि जैसै तीर्थंकर देवकौ पूजिए तैसै स्तुति करि करिकै पूजिए है ॥ ५९ ॥

यद्यद्दानं सतामिष्टं तपः संमयपोषकम् ।
तत्तद्वितरता भक्त्या प्राप्यते फलमीक्षितम् ॥ ६० ॥

अर्थ—जो जो दान तप सयंमका पुष्ट करनेवाला सत्पुरुषनिनै मान्याहै सो सो दान भक्तिसहित देता जो पुरुष ताकरि वांछित फल पाइए हैं ॥ ६० ॥

दानानीमानि यच्छंति स्तोकान्यपि महाफलम् ।
वीजानीव वटादीनां निहितानि विधानतः ॥ ६१ ॥

अर्थ—पूर्वैं कहे ते दान विधानसहित थोडे भी महाफलकौ देय हैं, जैसै वड आदि वृक्षनिके वीज है ते विधानतैं वोए भए वडे फलकौं देय है ॥ ६१ ॥

पात्रेभ्यो यः प्रकृष्टेभ्यो मिथ्यादृष्टिः प्रयच्छति ।
स याति भोगभूमीषु प्रकृष्टासु महोदयः ॥ ६२ ॥

अर्थ—जो मिथ्यादृष्टी उत्कृष्ट पात्रनिके अर्थ दान देय है सो महान् है उदय जाका ऐसा उत्कृष्ट भोग भूमीकौ जाय है ॥ ६२ ॥

क्रोशत्रय वपुस्तत्र त्रिपल्योपमजीवितः ।
चिंताकल्पितसान्निध्यं स भोगसुखमश्नुते ॥ ६३ ॥

अर्थ—तहां उत्कृष्ट भोगभूमीविषैं तीन कोशको शरीर अर तीन पल्यकी आयु जाकी सो चिंताकरि कल्याही निकट प्राप्त भया ऐसा भोगनिका सुख भोगै है ॥ ६३ ॥

सदा मनोनुकूलाभिः सेव्यमाना दिवाऽनिशम् ।
नारीभिर्न गतं कालं जानंते भोगभूभुवः ॥ ६४ ॥

अर्थ—मनके अनुकूल जे स्त्री तिनकरि सदा सेये भये ते भोगभूमिया गये कालकौं न जानै है ॥ ६४ ॥

मध्यमानां स पात्राणां दानतो याति मध्यमाम् ।
कारणस्यानुरूपं हि कार्यं जगति जायते ॥ ६५ ॥

अर्थ—सो दाता मध्यम पात्रनिके दानतैं मध्यम भोगभूमिकौं प्राप्त होय है, जातैं लोकविषैं जैसा कारण होय तैसाही कार्य निपजै है ॥६५॥

द्विक्रोशोच्छ्रयदेहोऽसौ द्विपल्यायुर्निरामयः ।
स तत्रास्ते महाग्रासः कांताक्षांभोजषट्पदः ॥ ६६ ॥

अर्थ—सो यहु मध्यम भोगभूमिया दोय कोश ऊंचा है दह जाका, अर दोय पल्य आयु, रोगरहित, बडा है आवास कहिये स्थान जाका, अर स्त्रीके नेत्रकमलनिकौ भ्रमरसमान सो तहां तिष्ठै है ॥ ६६ ॥

जघन्येभ्यः स पात्रेभ्यो जघन्यां याति दानतः।
एकक्रोशोच्छ्रयं भूमिमेकपल्योपमस्थिति ॥ ६७ ॥

अर्थ—वहुरि सो दाता जघन्य पात्रनके अर्थ दिया जो दान तातैं जघन्य भोगभूमिकौं प्राप्त होय है, एक कोश ऊंचा अर एक पल्यकी है स्थिति जाकी ॥ ६७ ॥

वरदामलकविभीतकमात्रं त्रिद्व्येकवासरैः क्रमतः।
आहारं कल्याणं दिव्यरसं भुंजते धन्याः ॥ ६८ ॥

अर्थ—ते पुण्यवान भोगभूमिया बेर आमला बहेडा इन प्रमाण क्रमतै कल्याणरूप दिव्यहै स्वाद जाका ऐसा आहारकौ तीन दोय एक दिन करि खायहै।

भावार्थ—उत्तम भोगभूमिया तीन दिनमै वेर प्रमाण आहार करैहै, मध्यम भोगभूमिया दोयदिनमै आंवले प्रमाण आहार करैहै, जघन्यभोगभूमिया एक दिनमै बहेडे प्रमाण आहार करैहै ऐसा जानना ॥ ६८॥

विश्राणयन् यतीनामुत्तममध्यमजघन्यपरिणामैः।
दानं यच्छति भूमीरुत्तममध्यमजघन्या वा ॥ ६९ ॥

अर्थ—पहले तौ तीन प्रकार पात्रनके अर्थ दानतै तीन प्रकारही भोगभूमि मिलैहै ऐसा कह्या; अब कहै है कि दूजा प्रकार यहभीहै कि यतीनकौ उत्तम मध्यम जघन्य परिणामनि करि दान देता जो पुरुष सो उत्तम मध्यम जघन्य भोगभूमिकौ पावैहै ॥ ६९ ॥

सर्वे द्वंद्वपरित्यक्ताः सर्वे क्लेश विवर्जिताः।
सर्वे यौवन संपन्नाः सर्वे संति प्रियंवदा ॥ ७० ॥

अर्थ—ते सर्व भोगभूमिया आजीविकाके द्वंद्वकरि रहित हैं, अर सर्वही क्लेशवर्जित हैं अर सर्वही यौवनसहित हैं, अर सर्वही प्रियवचन बोलनेवाले हैं ॥ ७० ॥

मददैन्यश्रमायासक्रोधलोभमदक्लमाः ।
मुक्तानामिव नो तेषां नाप्यन्यत्र गमागमः ॥ ७१ ॥

अर्थ—मद दीनता श्रम प्रयास क्रोध लोभ मद क्लेश ये सर्व मुक्त आत्मानकी ज्यौं तिनके नाहीं अर और जायगा तिनका गमनागमन नाहीं इहां मुक्त आत्माका दृष्टांत दिया सो प्रगट पनैं मदादिकके कार्य भोगभूमिमै नाहीं तातै उपचारतैं कह्याहै सर्वथा वीतराग मुक्त आत्माकी ज्यौं न जानलेना ॥ ७१ ॥

अयमेव विशेषोऽस्ति देवेभ्यो भोगभोगिनाम् ।
यत्ते यांति मृता नाकं देवास्तिर्यङ्नरत्वयोः ॥ ७२ ॥

अर्थ—देवनितै भोगभूमियानका यही भेदहै जातै भोगभूमिया मरे भये स्वर्ग कौं प्राप्त होयहै अर देवहैं ते तिर्यंच मनुष्य गतिकौ प्राप्त होयहै ॥ ७२ ॥

यतो मंदकषायास्ते ततो यांति त्रिविष्टपम् ।
उक्तं तीव्रकषायत्वं दुर्गतेः कारणं परम् ॥ ७३ ॥

अर्थ—जा कारणतै ते मंदकषाय है ता कारणतैं ते स्वर्गकौं प्राप्त होय हैं, तीव्रकषायपना है सो केवल दुर्गतिका कारण कह्या है ॥ ७३ ॥

दीयंते चिंतिता भोगा येषां कल्पमहीरुहैः ।
दशांगैः कः सुखं तेषां शक्तो वर्णयितुं गिरा ॥ ७४ ॥

अर्थ—जिन भोगभूमियानकौं दशभेदरूप कल्पवृक्षनि करि वांछित भोग दीजिए है तिन भोगभूमियानके सुखकौ वाणी करि वर्णन करनेकौं कौन समर्थ है ॥ ७४ ॥

न वियोगः प्रियैः सार्द्धं न संयोगोऽप्रियैः सह ।
न व्रतं न तपस्तेषां न वैरं न पराभवः ॥ ७५ ॥

अर्थ—तिन भोगभूमियानके इष्टपदार्थन करि साथ वियोग नाहीं, अर अनिष्ट वस्तुनि सहित संयोगता नाहीं अर तिनके व्रत नाहीं तप नाहीं वैर नाही अनादर नाही ॥ ७५ ॥

यतः स्वस्वामिसंवंधस्तेषां नास्ति कदाचन ।
परछंदानुवर्त्तित्वं ततस्तेषां कुतस्तनम् ॥ ७६ ॥

अर्थ—जातै तिन भोगभूमियानके स्वस्वामि कहिये सेवक ईश्वरपनेका संवंध कदाचित् नाहीं तातै पराधीन प्रवर्त्तना तिनकै काहेका होय ॥ ७६ ॥

नाऽपूर्णे समये सर्वे ते म्रियंते कदाचन ।
रचयंति न पैशून्यं सुखसागरमध्यगाः ॥ ७७ ॥

अर्थ—ते सर्व भोगभूमियां आयुके अपूर्ण कालविषै कदाच न मरै है, अर सुखसमुद्रके मध्य प्राप्त भये ते ईर्षा भावकौ नाहीं करै है ॥७७॥

आयासेन विना भोगी नीरोगीभूतविग्रहः ।
क्षुतेन पुरुषस्तत्र म्रियते जृंभयांगना ॥ ७८ ॥

अर्थ—खेदविना भोगानि करि सहित अर रोगरहित है शरीर जाका ऐसा भोगभूमिका पुरुष तौ छींक करि मरै है अर जंभाई करि स्त्री मरै है ॥ ७८ ॥

ते जायंते कलालापा मकरध्वजसंनिभाः ।
सर्वे भोगक्षमाः रम्यादिनानां सप्त सप्तकैः ॥ ७९ ॥

अर्थ—ते सर्व भोगभूमिया दिननके सात सप्तक कहिये गुणचास दिनन करि उपजै हैं, कैसे है ते भोगभूमिया, सुंदर है शब्द जिनका

अर कामदेवसमान है रूप जिनका अर भोगनिविषै सामर्थ्यसहित रमणीक ऐसे है ।। ७९ ।।

कोमलालापया कांतः कांतयाऽऽर्यो निगद्यते ।
कांतेनाऽऽर्या पुनः कांत। चित्रचाटुविधायिना ।। ८० ।।

अर्थ—कोमल है शब्द जाका ऐसी स्त्री करि आर्य जो भोगभूमिया अपना पति सो कहिए है,

भावार्थ—स्त्री कोमलवचनसहित पतिसौं बोलै है। अर नानाप्रकार खुसामद करनेवाला जो पति ता करि भोगभूमियाकी स्त्री सो कहिये है,

भावार्थ—पति शूश्रूषाके वचनसहित स्त्रीसौं बोलै है ।। ८० ।।

आदेयाः सुभगाः सौम्याः सुंदरांगा वशंवदाः ।
रमंते सह रामाभिः स्वसमाभिर्मिथो मुदा ।। ८१ ।।

अर्थ—आदर करने योग्य अर सुंदर अर सौम्य अर सुंदर हैं अंग जिनके अर भले वचन बोलनेवाले ऐसे ते भोगभूमिया अपने समान जे स्त्री तिनकरि सहित परस्पर हर्षकरि रमै हैं ।। ८१ ।।

युग्ममुत्पद्यते सार्द्धं युग्मं यत्र विपद्यते ।
शोकाक्रंदादयो दोषास्तत्र संति कुतस्तनाः ।। ८२ ।।

अर्थ—जहां स्त्रीपुरुषका युगल साथ उपजै है अर साथ ही युगल मरै है तातै शोक अर रोवना इत्यादि दोष है ते कहातै होय, नाहीं होय है ।। ८२ ।।

करिकेसरिणौ यत्र तिष्ठंतौ बांधवामिव ।
एकत्र सर्वदा प्रीत्या सख्यं तत्र किमुच्यते ।। ८३ ।।

अर्थ—हाथी अर सिह जहां बांधवनिकी ज्यौ एक जायगां सदा प्रीतिसहित तिष्ठै है तहां वैरभाव कैसे कहिए, अपि तु नाहीं कहिए ऐसा जानना ।। ८३ ।।

कुपात्रदानतो याति कुत्सितां भोगमेदिनीम्।
उप्ते कः कुत्सिते क्षेत्रे सुक्षेत्रफलमश्नुते ॥ ८४ ॥

अर्थ—कुपात्रके दानतै जीव कुभोगभूमिकौ प्राप्त होय है, इहां दृष्टांत कहैहै—खोटा क्षेत्रविषै वीज वोये संते सुक्षेत्रके फलकौ कौन प्राप्त होय है, अपि तु कोई न होय है ॥ ८४ ॥

येंऽतरद्वीपजाः संति ये नरा म्लेच्छखंडजाः।
कुपात्रदानतः सर्वे ते भवंति यथायथम् ॥ ८५ ॥

अर्थ—जे अंतरद्वीप कहिए लवणसमुद्र विषै वा कालोद समुद्रविषै छयानवै कुभोगभूमिके टापू परेहै तिनविषै उपजे मनुष्यहै अर म्लेच्छ-खंडविषै उपजे मनुष्यहै ते सर्व कुपात्रदानतै यथायोग्य होयहै ॥ ८५ ॥

वर्यमध्यजघन्यासु तिर्यंचः संति भूमिषु।
कुपात्रदानवृक्षोत्थं भुंजते तेऽखिलाः फलम् ॥ ८६ ॥

अर्थ—उत्तम मध्यम जघन्य भोगभूमिन विषै जे तिर्यंचहै ते सर्व कुपात्रदानरूप वृक्षतैं उपज्या जो फल ताहि खायहै ॥ ८६ ॥

दासीदासद्विपम्लेच्छसारमेयादयोऽत्र ये।
कुपात्रदानतो भोगस्तेषां भोगवतां स्फुटम् ॥ ८७ ॥

अर्थ—इहां आर्यखंडमै जे दासीदास हाथी म्लेच्छ कुत्ता इत्यादि भोगवंत जीवहै तिनकौ जो भोगै है सो प्रगटपनै कुपात्रदानतै है, ऐसा जानना ॥ ८७ ॥

दृश्यंते नीचजातीनां ये भोगा भोगिनामिह।
सर्वे कुपात्रदानेन ते दीयंते महोदयाः ॥ ८८ ॥

अर्थ—इहां आर्यखंडविषै नीच जातिके भोगीजीवनिके जे भोग महाउदयरूप देखिएहै ते सर्व कुपात्रदानकरि दीजिएहै ॥ ८८ ॥

अपात्राय धनं दत्तं व्यर्थं संपद्यतेऽखिलम् ।
ज्वलिते पावके क्षिप्तं वीजं कुत्रांकुरीयति ॥ ८९ ॥

अर्थ—अपात्रके आर्थी दिया जो धन है सो सर्व वृथा होयहै, इहां दृष्टांत कहैहै—जलती अग्निमै क्षेप्या बीज है सो कहा अंकुरसहित होयहै, अपि तु नाहीं होयहै ॥ ८९ ॥

अपात्रदानतः किंचिन्न फलं पापतः परम् ।
लभ्यते हि फलं खेदो वालुकापुंजपीडने ॥ ९० ॥

अर्थ—अपात्रदानतैं फल पापतै दूसरा किछू नाहीं होय है, जातै वालू रेतके समूहके पेलनेमै केवल खेदही होय, सो ही फलहै ॥ ९० ॥

विश्राणितमपात्राय विधत्तेऽनर्थमूर्जितम् ।
अपथ्यं भोजनं दत्ते व्याधिं किं न दुरुत्तरम् ॥ ९१ ॥

अर्थ—अपात्रके आर्थि दिया दान है सो बडे अनर्थकौं करैहै जेसै अपथ्य भोजन है सो दूर है उतरन जाका ऐसे रोगकौं कहा न देय है, देयही है ॥ ९१ ॥

संस्कृत्य सुंदरं भोज्यं येनापात्राय दीयते ।
उत्पाद्य प्रवलं धान्यं दह्यते तेन दुर्धिया ॥ ९२ ॥

अर्थ—सुंदर भोजन बनायकै जिस पुरुष करि अपात्रके अर्थि दीजिए है ता दुर्बुद्धी करि पुष्टिकारी धान्य उपजायकैं जलाइये है ॥९२॥

शीघ्रं पात्रेण संसारादेकेनापि गरीयसा ।
तार्यंते बहवो लोकाः पोतेनेव पयोनिधेः ॥ ९३ ॥

अर्थ—जैसै जहाजकरि समुद्रतै तारिये तैसै एक ही गरिष्ठ पात्र करि घने लोक संसारतै तारिये है ॥ ९३ ॥

जगदुत्पाद्यते सर्वमेकेनापि विवस्वता ।
नक्षत्रनिवहैः सर्वैरुदितैरपि नो पुनः ॥ ९४ ॥

अर्थ—एक सूर्य करिही समस्त जगत प्रकाशरूप कीजिए है, वहुरि उदय भये भी सर्व नक्षत्रनिके समूह तिनकरि प्रकाशित न कीजिए है ॥ ९४ ॥

एकेनापि सुपात्रेण तार्यते भवनीरधेः ।
सहस्रैरप्यपात्राणां पुंजितैर्न पुनर्जनः ॥ ९५ ॥

अर्थ—उपरि दृष्टांत कह्याथा ताका दार्ष्टांत कहिए है;—तैसैं एक भी सुपात्र करि जीव संसार समुद्रतै तारिये है, वहुरि एकठे किये अपात्रनिके सहस्रनि करि भी संसारसमुद्रतै न तारिये है, ऐसा जानना ॥ ९५ ॥

अपात्रदानदोषेभ्यो बिभ्यता पुण्यशालिना ।
विबुद्ध्य यत्नतः पात्रं देयं दानं विधानतः ॥ ९६ ॥

अर्थ—अपात्रके दोषतै डरता पुण्यवान जो पुरुष ताकरि यत्न तै पात्रकौ जानिकै विधानतैं दान देना योग्य है ॥ ९६ ॥

अपात्राय धनं दत्ते यो हित्वा पात्रमुत्तमम् ।
साधुंविहाय चौराय तदर्पयति सः स्फुटम् ॥ ९७ ॥

अर्थ—जो पुरुष उत्तम पात्रकौ छोडिकै अपात्रके अर्थि धन देयहै सो प्रगट साधुकौ छोडिकै चौरके अर्थि ताधनकौं देयहै, ऐसा जानना ॥ ९७ ॥

अपात्रमिव यः पात्रं निर्बुद्धिरवलोकते ।
चिंतामणिमसौ मन्ये मन्यते लोष्टसन्निभम् ॥ ९८ ॥

अर्थ—जो निर्बुद्धि पात्रकौं अपात्र की ज्यो अवलोकैहै सो यहु चिंतामणीरत्नकौ लाहे समान मानैहै, ऐसा मै मानूं हूं ॥ ९८ ॥

त्यक्त्वा शर्मप्रदं पात्रमपात्रं स्वीकरोति यः ।
स कालकूटमादत्ते मुक्त्वा पीयूषमस्तधीः ॥ ९९ ॥

अर्थ—सुखदायक पात्रकौ छोडिकै जो अपात्र कौ अंगीकार करैहै सो निर्बुद्धी अमृतकौ छोडिकै कालकूटविषकौ ग्रहण करैहै ॥ ९९ ॥

पात्रापात्रविभागेन मिथ्यादृष्टेरिदं फलम् ।
उदितं दानजं प्राज्यं सम्यग्दृष्टेर्वदाम्यतः ॥ १०० ॥

अर्थ—यह दानतै उपज्या फल पात्र अपात्रके भेदकरि मिथ्यादृष्टीकौं कह्या बहुरि इस पीछै सम्यग्दृष्टीके दानतै उपज्या जो महाफल ताहि कहूंहूं ॥ १०० ॥

दानं त्रिविधदात्राय सम्यग्दृष्टिर्यथागमम् ।
ददानो लभते याच्यां कल्याणानां परंपराम् ॥ १०१ ॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव है सो तीन प्रकार पात्रनिके अर्थि शास्त्रोक्त दान देता संता मांगने योग्य कल्याणनिकी परंपराकौ पावैहै ॥ १०१ ॥

पात्राय विधिना दत्त्वा दानं मृत्त्वा समाधिना ।
अच्युतांतेषु कल्पेषु जायंते शुद्धदृष्टयः ॥ १०२ ॥

अर्थ—पात्रके आर्थि दान देकरि समाधिसहित मरकै सम्यग्दृष्टी जीवहै ते अच्युतपर्यंत स्वर्गनिविषैं उपजैहै ॥ १०२ ॥

उत्पद्योत्पादशय्यायां देहोद्योतितपुष्कराः ।
सुप्तोत्थिता इव क्षिप्रमुत्तिष्ठंति दिवौकसः ॥ १०३ ॥

अर्थ—तहां स्वर्गनविषै उत्पादशय्याविषै उपजकै देवहै ते जैसैं सोयकरि उठै तैसै उठैहै, कैसेहै देव देहकरि उद्योतरूप कियाहै आकाश जिननै ऐसे है ॥ १०३ ॥

निषण्णैस्तत्र शय्यायां तैरीक्ष्यंते समंततः ।
निकाया देवदेवीनां रचितांजलिकुड्मलाः ॥ १०४ ॥

अर्थ—तहां शय्याविषै तिष्ठते देवनि करि च्यारों तरफतै रची है हस्तांजलि जिननै ऐसे देवदेवीनके समूह देखिए है ॥ १०४ ॥

स्तुवानामां स्तवैःश्रव्यैर्भव्याभरणभासुराः ।
मूर्त्ताः केऽमी विलोक्यंते पुण्यपुंजा इवाभितः ॥ १०५ ॥

अर्थ—सुनने योग्य स्तोत्रनि करि स्तुति करते अर सुंदर आभूषणनकरि देदीप्यमान मूर्त्तीक पुण्यके समूहसमान ये च्यारो तरफ कौन देखिए है ऐसे नवीन देव विचारै है ॥ १०५ ॥

रम्याः रामा ममेमाः काश्चित्रचाटुपरायणाः ।
लावण्यांबुनिधेर्वेला लोकंते कलनिस्वनाः ॥ १०६ ॥

अर्थ—रमने योग्य अर नानाप्रकार खुशामदमैं तत्पर अर सुंदरताके समुद्रकी वेला सुंदर है शब्द जिनके ऐसी स्त्री मोकौ देखै हैं ॥ १०६ ॥

किमिदं दृश्यते स्थानं रामणीयकमंदिरम् ।
कथमत्राहमायातः किं स्वप्नोऽयमुतान्यथा ॥ १०७ ॥

अर्थ—सुंदरताका मंदिर ये कौन स्थान दीखै है, इहा मैं कैसैं आया अथवा कहा यह स्वप्न है ॥ १०७ ॥

किमकारि मया पुण्यं जातो येनात्र बंधुरे ।
न पुण्यव्यतिरेकेण लभ्यते सुखसंपदा ॥ १०८ ॥

अर्थ—अथवा मैं कहा पुण्य करत भया जाकरि इस सुंदर स्थानविषै उपज्या, पुण्य विना सुखसंपदा न पाइए है ॥ १०८ ॥

इत्थं चिंतयतां तेषां भवकारणकोऽवधिः ।
संपद्यतेतदां दीप्रः पूर्वसंबंधसूचकः ॥ १०९ ॥

अर्थ—या प्रकार विचारते जे देव तिनकै भवही है कारण जाकू ऐसा भवप्रत्यय अवधि अतिशयकरि देदीप्यमान पहले संबंधका सूचक उपजै है ॥ १०९ ॥

ज्ञानेन तेन विज्ञाय दानपुण्यप्रभावतः ।
त्रिदशीभूतमात्मानं ते भजंति सुखासिकाम् ॥ ११० ॥

अर्थ—तिस ज्ञानकरि दानके पुण्यके प्रभावतै आपकौ देव भया जानिकै ते देव सुखरूप समाधानताकौ भजै है॥ ११० ॥

प्रीतेनामरवर्गेण स्वसंबंधेन सादरम्।
क्रियमाणास्ततस्तुष्टा भजंतेजननोत्सवम्॥ १११ ॥

अर्थ—तापीछै आपके संबंधी जो प्रीतियुक्तदेवनिका समूह ताकरि प्रसन्नकरे भये जन्मोत्सबकौ भजैहै॥ १११ ॥

ज्ञात्वा धर्मप्रभावेन तत्र प्रभवमात्मनः।
पूजयंति जिनार्चास्ते भक्त्या धर्मस्य वृद्धये॥ ११२ ॥

अर्थ—धर्मके प्रसादकरि तहां स्वर्गमै आपकौ जानिकै ते देव धर्मकी वृद्धिके आर्थि जिनभगवानकी प्रतिमानकौ भक्ति सहित पूजैहै॥ ११२ ॥

सुखवारिनिमग्नास्ते सेव्यमानाः सुधाशिभिः।
सर्वदा व्यवतिष्ठंते प्रतिविंबैरिवात्मनः॥ ११३ ॥

अर्थ—ते देव सुखजलविषैं डूबे अर अपने प्रतिविंबसमान देवनिकरि सेये भये सदा काल तिष्ठैहै॥ ११३ ॥

ते सर्वक्लेशनिर्मुक्ता द्वाविंशतिमुदन्वताम्।
आसते तत्र भुंजाना दानवृक्षफलं सुराः॥ ११४ ॥

अर्थ—ते देव सर्वक्लेशरहित दानरूप वृक्षके फलकौ भोगते संते तहां बाईस सागर तिष्ठै है॥ ११४ ॥

तेषां सुखप्रमां वक्ति वचोभिर्यो महात्मनाम्।
प्रयाति पदविक्षेपैर्गगनांतमसौ ध्रुवम्॥ ११५ ॥

अर्थ—तिन महात्मा देवनिके सुखके प्रमाणकौ जो पुरुष वचननिकरि कहैहै सो यह निश्चयकरि पावनके उठावने धरनेकरि आकाशके अंतकौ जायहै।

भावार्थ—तिन देवनि का सुख वचनतै न कह्या जायहै, ऐसा जानना ॥ ११५ ॥

नवयौवनसंपन्ना दिव्यभूषणभूषिताः ।
ते वरेण्याद्यसंस्थाना जायंतेऽतर्मुहूर्त्ततः ॥ ११६ ॥

अर्थ—नवयौवनसहित अर दिव्य आभूषणानि करि भूषित अर श्रेष्ठ आदिका समचतुरस्त्र है संस्थान जिनका ऐसे अंतर्मुहूर्त्तमै उपजैहैं ॥ ११६ ॥

तेषां खेदमलस्वेदजरारोगादिवर्जिताः ।
जायंते भास्कराकाराः स्फाठिका इव विग्रहाः ॥ ११७ ॥

अर्थ—तिन देवनिके खेद मल पसेव जरा रोग इत्यादि करि देदीप्यमानहैं आकार जिनके मानौ स्फटिकमणिके है ऐसे शरीर उपजै है ॥ ११७ ॥

राजते हृदये तेषां हारयष्टिर्विनिर्मला ।
निसर्गसंभवा मूर्त्ता सम्यग्दृष्टिरिव स्थिता ॥ ११८ ॥

अर्थ—तिन देवनिके हृदयविषै विशेषनिर्मल हारकी लडी सोहैहै, मानौ स्वभावकरि उपजी मूर्त्तिवंत सम्यग्दृष्टि तिष्ठी है ॥ ११८ ॥

मुकुटो मस्तके तेषामुद्योतित दिगंतरः ।
निषधानामिवादित्यस्तमोध्वंसीव भासते ॥ ११९ ॥

अर्थ—जैसै निषधाचलनके ऊपरि अंधकारका नाश करनेवाला सूर्य सोहैहै तैसै तिन देवानिके मस्तकविषै उद्योतरूप किया है दिशानका अतर जानै ऐसा मुकुट सोहै है ॥ ११९ ॥

निधुवनकुशलाभिः पूर्णचंद्राननाभिः
स्तनभरविनताभिर्मन्मथाध्यासिताभिः ।

पृथुतरजघनाभिर्वंधुराभिर्वधूभिः
समममलवचोभिः सर्वदा ते रमंते ॥ १२० ॥

अर्थ—सुंदर स्त्रीन करि निर्मलवचन सहित ते देव सदा रमै हैं, कैसी है ते स्त्री कामसेवनविषै प्रवीणहै अर पूर्णचंद्रमा समान है मुख जिनका अर स्तननके भारकरि नम्रीभूत है अर कामकरि व्याप्त है अर विस्तीर्ण है जघनस्थान जिनका ऐसी देवीनसहित ते देव रमै हैं ॥१२०॥

दिवोऽवतीर्योर्जितचित्तवृत्तयो
महानुभावा भुवि पुण्यशेषतः ।
भवंति वंशेषु बुधार्चितेषु
विशुद्धसम्यक्त्वधना नरोत्तमाः ॥ १२१ ॥

अर्थ—ते देव स्वर्गतै अवतरिकैं बाकीके पुण्यतै पृथ्वीविषैं पंडितनिकरि पूजित वंशनिविषैं नरनिविषै उत्तम चक्रवर्त्यादिक होय हैं कैसे हैं ते उदारहै चित्तकी परणति जिनकी ऐसे अर महानुभाव अर निर्मल सम्यक्त है धन जिनकै, ऐसे होय है ॥ १२१ ॥

अवाप्यते चक्रधरादिसंपदं
मनोरमामत्र विपुण्यदुर्लभाम् ।
नयंति कालं निखिलं निराकुलाः
न लभ्यते किं खलु पात्रदानतः ॥ १२२ ॥

अर्थ—ते जीव इस लोकविषै पुण्यरहित जीवनकौ दुर्लभ ऐसी सुंदर चक्रवर्ती आदिकनिकी संपदाको प्राप्त होयकै निराकुल भये संते समस्त कालकौं व्यतीत करैहै, जातै पात्रदानतैं कहा न पाइयेहै ? सर्वही पाइएहै, ऐसा जानना ॥ १२२ ॥

निषेव्य लक्ष्मीमिति शर्मकारिणीं
प्रथीयसीं द्वित्रिभवेषु कल्मषम् ।

प्रदह्यते ध्यानकृशानुनाऽखिलं
श्रयंति सिद्धिं विधुतापदं सदा ॥ १२३ ॥

अर्थ—याप्रकार सुखकी करनेवाली महान लक्ष्मीकौं भोगकै दोय तीन भवनिविषै समस्त कर्मनिकौं ध्यान अग्नि करि जरायके ते जीव आपदारहित मोक्ष अवस्थाकौं सदा सेवैहै ॥ १२३ ॥

विधाय सप्ताष्टभवेषु वा स्फुटं
जघन्यतः कल्मषकक्षकर्त्तनम् ।
व्रजंति सिद्धिं मुनिदानवासिता
व्रतं चरंतो जिननाथभाषितम् ॥ १२४ ॥

अर्थ—अथवा मुनिराजनिके दानकी है वासना जिनके ऐसे जीव हैं ते जिनभाषितव्रतकौं आचरते संते जघन्यपनैसतै सात आठ भवविषै कर्मवनकौं काटकै निश्चयकरि मुक्तिकौं प्राप्त होयहै, ऐसा जानना ॥ १२४ ॥

पात्रदानमहनीयपादपः
शुद्धदर्शनजलेन वर्द्धितः ।
यद्ददाति फलमर्चितं सतां
तस्य को भवति वर्णने क्षमः ॥ १२५ ॥

अर्थ—निर्मल सम्यग्दर्शनरूप जलकरि वृद्धीकौ प्राप्त भया ऐसा पात्रदानरूपी पूजनीक वृक्षहै सो सत्पुरुषनिके पूजित ऐसा जो फल देयहै ताके वर्णनविषै कोन समर्थहै, अपितु कोई समर्थ नाहीं ॥ १२५ ॥

गणेशिनाऽमितगतिना यदीरितं
न दानजं फलमिदमीर्यते परैः ।
विभासितं दिनमणिना यदंबरं
न भास्यते कथमपि दीपकैरिदम् ॥ १२६ ॥

अर्थ—अपरिमित हैं ज्ञान जिनके ऐसे गणधर देवनि करि यहु दानजनित फल कह्या सो फल और करि न कहिए है जैसैं जो आकाश सूर्य करि प्रकाशित किया सो यहु दीपकनि करि कोई प्रकार भी नाहीं प्रकाशिये है, ऐसा जानना ॥ १२६ ॥

छप्पय छंद।

पात्र कुपात्र अपात्र भेद भाष्यो इम जिनपति
त्याग कुपात्र अपात्र करहु नितपात्रदानरति।
जा प्रसाद सब भोग भोगि फिर होय महायति
ध्यान धारि अरि टारि लहै शिवरमा अमितगति॥
तिहि काल अनंतानंत निजरूप मांहि अविचल रहै
तसु ध्यानसलिलतैं जीवका तुरत सकल कलिमलवहै॥
इत्युपासकाचारे एकादशमः परिच्छेदः।

ऐसैं श्री अमितगति आचार्यविरचित श्रावकाचारविषैं
ग्यारहवां परिच्छेद समाप्त भया।

अथ द्वादशम परिच्छेद ।

भावद्रव्यस्वभावैर्यैरुन्नताः कर्मपर्वताः ।
विभिन्ना ध्यानवज्रेण दुःखव्यालालिसंकुलाः ॥ १ ॥
कर्मक्षयभवाः प्राप्ता मुक्तिदूतीरघच्छिदः ।
नव केवललब्धीर्ये पंचकल्याणभागिनः ॥ २ ॥
सर्वभाषामयी भाषा बोधयंती जगत्त्रयीम् ।
आश्चर्यकारिणी येषां ताल्वोष्ठस्पंदवर्जिता ॥ ३ ॥
प्रातिहार्याष्टकं कृत्वा येषां लोकातिशायिनीम् ।
सपर्यां चक्रिरे सर्वे सादरा भुवनेश्वराः ॥ ४ ॥
वचांसि तापहारीणि पयांसीव पयोमुचः ।
क्षिपंतो लोकपुण्येन भूतले विहरंति ये ॥ ५ ॥
येषामिंद्राज्ञया यक्षः स्वर्गशोभाभिभाविनीम् ।
करोत्यास्थायिकीं कीर्णां लोकत्रितयजंतुभिः ॥ ६ ॥
आंद्यसंहतिसंस्थाना निःस्वेदा क्षीरशोणिता ।
राजते सुंदरा येषां सुगंधिरमला तनुः ॥ ७ ॥
येषां द्विष्टः क्षयं याति तुष्टो लक्ष्मीं प्रपद्यते ।
न रुष्यंति न तुष्यंति ये तयोः समवृत्तयः ॥ ८ ॥
लक्ष्मीं सातिशयां येषां भुवनत्रयतोषिणीम् ।
अनन्यभावनीं शक्तो वक्तुं कश्चिन्न विद्यते ॥ ९ ॥
रागद्वेषमदक्रोधलोभमोहादयोऽखिलाः ।
येषु दोषा न तिष्ठंति तप्तेषु न कुला इव ॥ १० ॥

शक्तितो भक्तितोऽर्हतो जगतीपतिपूजिताः।
ते द्वेधा पूजया पूज्या द्रव्यभावस्वभावया ॥ ११ ॥

अर्थ—जिन करि भाव द्रव्य स्वभावनि करि सहित ऊंचे जे कर्म-पर्वत ते ध्यानरूप वज्र करि भेदेहैं, कैसेहैं कर्मपर्वत दुःखरूप सर्पनिकी पंक्तिकरि आकुल है।

भावार्थ—जिन भगवाननै भावकर्म रागादिक द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादिक पुद्गलस्कंध ते ध्यानकरि नाशकिये है ॥१॥ बहुरि जे गर्भादि पंच-कल्याणके भोक्ता तीर्थंकर देव कर्मकेक्षयतै उपजी पापके नाश करने-वाली अर मुक्तिकी दूतीसमान ऐसी नव केवललब्धिनकौं प्राप्त भए है ॥ २ ॥ बहुरि जिनकी आश्चर्य उपजावने वाली सर्व भाषामयी ताल वा होठके चलने करिरहित ऐसी दिव्यध्वनि तीन जगतकौ ज्ञान करती संती है ॥ ३ ॥ बहुरि जिनके छत्र चमरादि अष्ट प्रातिहार्य रचिकै सर्व लोकके नायक जो इंद्रादिकहैं ते आदरसहित लोकविषैं अतिशय उपजावनेवाली जो पूजा ताहि करते भए ॥ ४ ॥ बहुरि जैसैं मेघ जल-निकौ बरसावते लोकमैं विचरै तैसैं संताप हरने वाले वचननकौं फैला-वते संते जे भगवान जीवनके पुण्य करि पृथ्वीतलविषैं विहार करैहैं ॥ ५ ॥ बहुरि इंद्रकी आज्ञा करि कुबेर जिनकी समवसरण भूमिकाकौं करैहै, कैसी है समवसरण भूमिका स्वर्गकी शोभाकौं जीतनेवाली अर तीन लोकके जीवनि करि भरी ऐसी है ॥ ६ ॥ बहुरि जिनकी देह सुंदर सुगंधरूप निर्मल सोहै है, कैसी है देह आदिका वज्रवृषभनाराच है संहनन जा विषै अर आदिका समचतुरस्र है संस्थान जाका अर पसेवरहित अर दूधसमान श्वेत है रुधिर जाका ऐसी है ॥ ७ ॥ बहुरि जिनका द्वेष करनेवाला पुरुष क्षयकौ प्राप्त होय है अर भक्ति करनेवा-ला लक्ष्मीकौं प्राप्त होय है, बहुरि ते भगवान न द्वेष करैहैं न राग करै

तिन दोऊन विषै समान परणति है ॥ ८ ॥ जिनकी अतिशयरहित अर तीन भुवनकौं संतोष करनेवाली अर अन्य हरिहरादिविषै न पाइए ऐसी जो लक्ष्मी ताहि कहनेकौ कोऊ समर्थ नाहीं है ॥ ९ ॥ वहुरि राग द्वेष मद क्रोध लोभ मोह इत्यादिक समस्त दोष है ते न तिष्ठैहैं जैसै तप्त भूमिमै नोले नही रहै है ॥ १० ॥ इंद्रादिकनि करि पूजित ते अर्हत भगवान शक्ति माफिक भक्ति तै द्रव्य भाव स्वभावरूप दोय प्रकार पूजा करि पूजने योग्य है ॥ ११ ॥

वचोविग्रहसंकोचो द्रव्यपूजा निगद्यते ।
तत्र मानससंकोचो भावपूजा पुरातनैः ॥ १२ ॥

अर्थ—वचनका अर शरीरका जो संकोच कहिए और क्रियानितै रोकि जिनेंद्रके सन्मुख करना सो द्रव्यपूजा कहिए है, अर मनका संकोच कहिए अन्य तरफतै रोकि जिनभक्तिमै लगावना सो पुराणे पुरुपनिकरि भावपूजा कहिए है ॥ १२ ॥

गंधप्रसूनसान्नाय्यदीपधूपाक्षतादिभिः ।
क्रियमाणाथ सा ज्ञेया द्रव्यपूजा विधानतः ॥ १३ ॥

अर्थ—अथवा गंध पुष्प नैवेद्य दीप धूप अक्षतनि करि विधानतै करी भई द्रव्यपूजा जाननी ॥ १३ ॥

व्यापकानां विशुद्धानां जिनानामनुरागतः ।
गुणानां यदनुध्यानं भावपूजेयमुच्यते ॥ १४ ॥

अर्थ—वहुरि जिनराजके गुणानिका अनुरागतै वारंवार चिंतवन करना सो यह भावपूजा कहिए है, कैसे हैं जिन व्यापक कहिए सर्वके जाननेवाले अर रागादिरहित विशुद्ध है ॥ १४ ॥

द्वेधापि कुर्वतः पूजां जिनानां जितजन्मनाम् ।
न विद्यते द्वये लोके दुर्लभं वस्तु पूजितम् ॥ १५ ॥

अर्थ—जीत्याहै संसार जिननैं ऐसे जिनदेवनिकी द्रव्य भाव करि दोऊही प्रकार पूजाकौं करता जो पुरुष ताकौं इसलोक परलोकविषै उत्तम वस्तु दुर्लभ नाहीं ॥ १५ ॥

यैः कल्मषाष्टकं प्लुष्ट्वा विशुद्धध्यानतेजसा ।
प्राप्तमष्टगुणैश्वर्यमात्मनीनमनव्ययम् ॥ १६ ॥
क्षुधा तृषा श्रम स्वेदनिद्रातोषाद्यभावतः ।
अन्नपानाशनस्नानशयनाभरणादिभिः ॥ १७ ॥
क्षुधादिनोदनैर्येषां नास्ति जातु प्रयोजनम् ।
सिद्धे हि वांछिते कार्ये कारणान्वेषणं वृथा ॥ १८ ॥
कर्मव्यपायतो येषां न पुनर्जन्म जायते ।
विलयं हि गते वीजे कुतः संपद्यतेंऽकुरः ॥ १९ ॥
रागद्वेषादयो दोषा येषां संति न कर्मजाः ।
निमित्तरहितं क्वापि न नैमित्तं विलोक्यते ॥ २० ॥
न निर्वृतिममी मुक्त्वा पुनरायांति संसृतिम् ।
शर्मदं हि पदं हित्वा दुःखदं कः प्रपद्यते ॥ २१ ॥
सुखस्य प्राप्यते येषां न प्रमाणं कदाचन ।
आकाशस्यैव नित्यस्य निर्मलस्य गरीयसः ॥ २२ ॥
पश्यंति ये सुखी भूता लोकाग्रशिखरस्थिताः ।
लोकं कर्मभ्रंकुशेन नाट्यमानमनारतम् ॥ २३ ॥
येषां स्मरणमात्रेण पुंसा पापं पलायते ।
ते पूज्या न कथं सिद्धा मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ २४ ॥

अर्थ—जिननैं निर्मल ध्यान अग्नि करि अष्टकर्मकौं जलायकै आत्माका हित अर अविनाशी ऐसा सम्यक्तादि अष्ट गुणरूप ऐश्वर्य पाया ॥ १६ ॥ बहुरि क्षुधा तृषा भ्रम पसेव निद्रा, हर्ष इत्यादिकके

अभावतै क्षुधादिकके दूर करनेवाले जे अन्न पान आसन स्थान सोवना आभूपण इत्यादिकनि करि जिनसिद्धनिके कदाचित् प्रयोजन नाही, जाते वांछितकार्यकी सिद्धीभये कारणका ढूंढना वृथाहै।

भावार्थ—लोकमैं क्षुधादिककी पीडा होयहै तब अन्नादिक हेरिए है, बहुरि सिद्ध भगवानके क्षुधादिक दोपही रहे नाहीं तब अन्नदिककौ हेरना काहेकौ चहिए, वह तौ सहज ज्ञानानंदविपै मग्नहै ॥ १७-१८॥ बहुरि जिनके कर्मनिके अभावतै फेर जन्म न होयहै, जातै बीजकौ नाश भये सते अंकुर कहितैं होय, अपि तु नाहीं होय।

भावार्थ—जन्म होनेका कारण कर्महै सो तिनकै अष्ट कर्मका अभाव भया अब जन्म कैसै होय ॥ १९ ॥ बहुरि कर्मजनित रागद्वेपादि दोप जिनकै नाहींहै जातै निमित्तरहित कहूं भी न अवलोकिए है।

भावार्थ—मोहादिकर्म निमित्त पाय नैमित्तिक रागादि होयहै अब सिद्धीनिकै मोहादि कर्म निमित्त रह्या नाहीं नैमित्तिक रागादि काहेतै होय अपि तु नाहीं होय ॥ २० ॥ वहुरि ये सिद्धभगवान मोक्ष अवस्थाकौ छोडिकै फेर संसारमै नाहीं आवै है, जातै सुखदायक ठिकानेकौ छोडिके दुःखदायक ठिकानेकौ कौन प्राप्त होय अपि तु कोई भी न होय ॥ २१ ॥ बहुरि जिनका आकाश की ज्यौं नित्य अर निर्मल अर बड़ा जो सुख ताका प्रमाण कदाचित् भी न पाइयेहै ॥ २२ ॥ बहुरि जे सुखरूप लोकके अग्राशिखर परि तिष्टे संते कर्मरूप नटवा करि निरंतर नचाया जो लोक ताहि देखैहै।

भावार्थ—कर्मकरि जीवनिकी नाना अवस्था होयहै तिनकौ अवलोकैहै परंतु रागादिकके अभावतै आप सुखरूप तिष्टै है ॥ २३ ॥ बहुरि जिनके स्मरण मात्र करि पुरुपनिका पाप भागि जाय है ते सिद्ध भग-

वान् मन वचन कायकी क्रिया करि कैसै पूजने योग्य नाहीं, अपि तु पूजने ही योग्यहै ॥ २४ ॥

चारयंत्यनुमन्यंते पंचाचारं चरंति ये ।
जनका इव सर्वेषां जीवानां हितकारणम् ॥ २५ ॥
येषां पादपरामर्शे जीवा मुंचंति पातकम् ।
सलिलं हिम रश्मीनां चंद्रकांतोपला इव ॥ २६ ॥
उपदेशैः स्थिरं येषां चारित्रं क्रियतेतराम् ।
ते पूज्यंते त्रिधाऽऽचार्याः पदं वर्यं यियासुभिः ॥ २७ ॥

अर्थ—जे दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तप आचार वीर्याचार ये जो पंच आचार सर्व जीवनिकौ आचरणकरावै है अर आप आचरण करैहैं जैसै पिता हितका आचरण करावै तैसै ॥ २५ ॥ वहुरि जिनके चरणका स्पर्श होतसंतै जीव पापकौ त्यागैहै जैसै चंद्रमाकी किरणानिका स्पर्श होतसंतै चंद्रकांतपत्थर जलकौ छोडै तैसै ॥ २६ ॥ वहुरि जिनके उपदेशनि करि चारित्र अतिशय करि स्थिर कीजिएहै ते आचार्य श्रेष्ठपद जो मोक्षपद ताहि जानेकी है वांछा जिनकै ऐसे पुरुषनिकरि मन वचन कायतै पूजिए हैं ॥ २७ ॥

उन्नतेभ्यः ससत्वेभ्यो येभ्यो दलितकल्मषाः ।
जायंते पावना विद्याः पर्वतेभ्य इवाऽऽपगाः ॥ २८ ॥

अर्थ—जिनतै, नाशकिया है पाप जिननै ऐसी पवित्र विद्या उपजे है जैसै पर्वतनतै नदी उपजै तैसै, कैसे है ते वडे है अर पराक्रमसहित है ॥ २८ ॥

चरंतः पंचधाचारं भवारण्यदवानलम् ।
द्वादशांगश्रुतस्कंधं पाठयंति पठंति ये ॥ २९ ॥

अर्थ—बहुरि जे संसार वनकौ दावानल समान जो पंचाचार ताहि आचरण करैहै बहुरि जो बारह अंगरूप श्रुतस्कंधकौ पढावै है अर पढै है ॥ २९ ॥

येषां वचोहृदे स्नाता न संति मलिना जनाः ।
तेऽर्च्यंते न कथं दक्षैरुपाध्याया विरेपसः ॥ ३० ॥

अर्थ—जिनके वचनरूप सरोवरविषै न्हाये जन है ते मलिन न होय है ते पापरहित उपाध्याय भगवान चतुर पुरुषनि करि कैसै न पूजिए, पूजिए ही है ॥ ३० ॥

यैरनंगानलस्तीव्रः संतापितजगत्त्रयः ।
विध्यापितः शमांभोभिः पापपंकायसारिभिः ॥ ३१ ॥
दिधक्षवो भवारण्यं ये कुर्वंति तपोऽनघम् ।
निराकृताखिलग्रंथा निस्पृहाः स्वतनावपि ॥ ३२ ॥
निधानमिव रक्षंतियेरत्नत्रयमादृताः ।
ते सद्भिर्चरिवस्यंते साधवो भव्यबांधवाः ॥ ३३ ॥

अर्थ—संतापकौं प्राप्त किये है तीन लोक जानै ऐसी जो कामरूप तीव्र अग्नि सो जिननै पापरूप कीचके दूर करनेवाले जे शांत भावरूप जल तिन करि उडाया है ॥ ३१ ॥ बहुरि जे संसारवनकौ दग्ध करनेके वाछक पापरहित तपकौ करैहैं कैसे है ते साधु निराकरण किया है समस्त अंतरंग बहिरंग परिग्रह जिननै बहुरि अपने शरीरविषै भी वांछा रहित है ॥ ३२ ॥ बहुरि जे आदरसहित भंडारकी ज्यो दर्शन ज्ञान चारित्ररूप रत्नत्रयकौ रक्षा करैहै ते भव्यजीवनके बाधव जे साधु भगवान ते सत्पुरुषनि करि आराधिए है ॥ ३३ ॥

अर्चयद्भर्यास्त्रिधा पुंभ्यः पंचेति परमेष्टिनः ।
नश्यंति तरसा विघ्ना विडलेभ्य इवाऽऽखवः ॥ ३४ ॥

अर्थ—या प्रकार पंच परमेष्ठीनकौं पूजते जे पुरुष तिनतै विघ्न शीघ्र नाशकौ प्राप्त होयहै, जैसै बिलावनतै मूसा नसै तैसै ।

भावार्थ—पंच परमेष्ठीनके पूजनादिकतै शुभपरिणाम बंधैहै तातै अंतरायकर्मका अनुभाग हीन होयहै, तब विघ्न न होयहै, ऐसा जानना ॥ ३४ ॥

पूजयंति न ये दीना भक्तितः परमेष्ठिनः ।
संपद्यते कुतस्तेषां शर्म निंदितकर्मणाम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—जे दीन अज्ञानी पुरुष पंच परमेष्ठीनकौ न पूजैहै तिन नीच कर्मीनके सुख कहां तै होय, अपि तु नाहीं होय, ऐसा जानना ॥ ३५ ॥

इंद्राणां तीर्थकर्त्तॄणां केशवानां रथांगिनाम् ।
संपदः सकलाः सद्यो जायंते जिनपूजया ॥ ३६ ॥

अर्थ—इंद्रनिकी तीर्थंकरनिकी नारायणनिकी चक्रवर्त्तिनकी जे समस्त संपदाहै ते जिनपूजा करि शीघ्र होयहै ॥ ३६ ॥

मानवैर्मानवावासे त्रिदशैस्त्रिदशालये ।
खेचरैः खेचरावासे पूज्यंते जिनपूजकाः ॥ ३७ ॥

अर्थ—जिनदेवकी पूजा करनेवाले पुरुषहै ते मनुष्यलोकविषै तो मनुष्यनिकरि पूजियेहै अर देवलोकविषै देवनिकरि पूजियेहै अर विद्याधरनिके लोकविषै विद्याधरनिकरि पूजियेहै ॥ ३७ ॥

सकामा मन्मथालापा निविडस्तनमंडलाः ।
रमण्यो रमणीयांगा रमयंति जिनार्चिनः ॥ ३८ ॥

अर्थ—जिनदेवकी पूजा करनेवाले पुरुष कौ रमणीक जे स्त्री रमावैहैं ते स्त्री कामसहितहैं अर मधुरहै शब्द जिनके अर कठोरहै कुचमंडल जिनके अर सुंदरहै अंग जिनके ऐसीहै ।

भावार्थ—जिनपूजाविषै पुण्यबंध होयहै ताकरि देवादि पद विषैं अनेक स्त्री मिलैहै ॥ ३८ ॥

पवित्रं यन्निरातंकं सिद्धानां पदमव्ययम् ।
दुष्प्राप्यं विदुषामर्थ्यं प्राप्यते तज्जिनार्चकैः ॥ ३९ ॥

अर्थ—जिनदेवके पूजक जे पुरुष तिनकरि मुक्त जीवनका पद जो मोक्षसुख सो पाइये है कैसा है मुक्त जीवनिका पद रागादिमलरहित है पवित्र है अर संसाररोगरहित है अर अविनाशी है अर दुर्लभ है अर ज्ञानीनिकरि वांछने योग्य है ऐसो पद जिनपूजक पावै है।

भावार्थ—जिनपूजाके परिणामके निमित्त पाय परंपराय रत्नत्रय आराध कै मोक्ष होय है ॥ ३९ ॥

जिनस्तवं जिनस्नानं जिनपूजां जिनोत्सवम् ।
कुर्वाणो भक्तितो लक्ष्मीं लभते याचितां जनः ॥ ४० ॥

अर्थ—जिनदेवका स्तवन जिनदेवका अभिषेक जिनदेवकी पूजा महा उत्सव इनकौ भक्तितै करता संता मनुष्य है सो वांछित लक्ष्मीकौं पावै है ॥ ४० ॥

इहा ताईं पूजाका वर्णन किया। आगै शीलका वर्णन करै हैं;—

संसारारातिभीतस्य व्रतानां गुरुसाक्षिकम् ।
गृहीतानामशेषाणां रक्षणं शीलमुच्यते ॥ ४१ ॥

अर्थ—ससार वैरीतै भयभीत जो पुरुष ताकै गुरुकी साखि ग्रहण करे जे समस्त व्रत तिनकी रक्षा करना सो शील कहिए है ॥ ४१ ॥

साक्षीकृता व्रतादाने कुर्वते परमेष्ठिनः ।
भूपा इव महादुःखं विचारे व्यभिचारिणः ॥ ४२ ॥

अर्थ—व्रतग्रहणविषैं साक्षी किये जे परमेष्ठी है ते विचारविषैं व्यभिचार करता जो पुरुष ताकौ राजानकी ज्यो महान दुःख करै हैं।

भावार्थ—जैसै राजाकै आगै किछू प्रतिज्ञा करै अर तामै भूल जाय तो दंड पावै तैसै अर्हंतादिकनिकै आगै लीनी जो आकडी तामैं भंग होय तौ महादुःख पावै। यद्यपि अर्हंतादिक वीतराग है उनके दुःख देनेका किछू प्रयोजन नाहीं तथापि अपनेही परिणामनिकी मलिनताते पाप बांधि नरकादि दुःख भोगै है, ऐसा जानना॥ ४२॥

एकदा ददते दुःखं नरनाथास्तिरस्कृताः।
गुरवो न्यक्कृता दुःखं वितरंति भवे भवे॥ ४३॥

अर्थ—तिरस्कार किये भए राजाहैं ते तौ एकवारही दुःख देयहैं अर निराकरण भये गुरुहै ते भव भव विषै दुःख देयहै।

भावार्थ—गुरूनके अनादर करि महापापबंध होयहै तातै जीव नरकादिविषैं महादुःख पावैहै॥ ४३॥

भक्षयित्वा विषं घोरं वरं प्राणा विसर्जिताः।
न कदाचिद्व्रतं भग्नं गृहीत्वा सूरिसाक्षिकम्॥ ४४॥

अर्थ—भयानकविषकौं साध करि त्यागे भये प्राण हैं ते श्रेष्ठहैं अर आचार्यकी साखि व्रतकौं ग्रहण करि भंग करना श्रेष्ठ नाहीं।

भावार्थ—मरण होय तो हो परंतु आंकडी भंग करना योग्य नाहीं॥ ४४॥

वसनैर्भूषणैर्हीनः सकलैरपि शोभते।
शीलेन बुधपूज्येन न पुनर्वर्जितो जनः॥ ४५॥

अर्थ—सर्व वस्त्रनकरि आभूषणन करि रहितभी पुरुष सोहैहै बहुरि पंडितनिकरि पूजनीक जो शील ताकरि रहित पुरुष न सोहैहै॥ ४५॥

सहजं भूषणं शीलं शीलं मंडनमुत्तमम्।
पाथेयं पुष्कलं शीलं शीलं रक्षणमूर्जितम्॥ ४६॥

अर्थ—शील है सो स्वभावरूप आभूषणहै अर शील उत्तम मंडन है अर शील है सो घणी वटसारीहै अर शील है सो वड़ा रक्षा करना है शील ही जीवनिकी रक्षा करैहै ॥ ४६ ॥

शीलेन रक्षितो जीवो न केनाऽप्यभिभूयते।
महाह्रदनिमग्नस्य किं करोति दवानलः ॥ ४७ ॥

अर्थ—जो पुरुषकी शील करि रक्षा कीजिएहै सो काहूकरि भी तिरस्कारकौं प्राप्त नहीं होयहै जैसै बडे सरोवरविषै डूब्या पुरुषका दावानल क्या करि सकैहैं तैसै ॥ ४७ ॥

बांधवाः सुहृदः सर्वे निःशीलस्य पराङ्मुखाः।
शत्रवोऽपि दुराराध्याः संमुखाः संति शीलिनः ॥ ४८ ॥

अर्थ—बांधव जनहैं ते तथा मित्र हैं ते सर्व शीलरहित पुरुषके परान्मुख होयहै अर दुःख करि आराधे जाय ऐसे शत्रूभी शीलवान पुरुषके सहायक होयहै ॥ ४८ ॥

शीलतो न परो बंधुः शीलतो न परः सुहृत्।
शीलतो न परा माता शीलतो न परः पिता ॥ ४९ ॥

अर्थ—शीलसिवाय और बंधु नाहीं, शीलतै सिवाय और मित्र नाहीं, शीलतै सिवाय और माता नाहीं, शीलतै सिवाय और पिता नाहीं।

भावार्थ—जीवका हितकारी शीलसिवाय और नाहीं ॥ ४९ ॥

उपकारो न शीलस्य कर्त्तुमन्येन शक्यते।
कल्पद्रुमफलं दत्ते परः कुत्र महीरुहः ॥ ५० ॥

---

१ यह श्लोक मूलप्रतिमें ४७ के नंबर परहै और वचनिकाकी प्रतिमें ४९ के नंबर परहै।

अर्थ—शीलसमान उपकार करनेकौ और समर्थ न हूजिएहै जैसैं कल्पवृक्ष फल देयहै सो और कहा वृक्ष फल कहा देयहै, कहूंभी न देयहै ॥ ५० ॥

तापेऽपि सुखितः शीली शीलमोची पुनर्जनः।
चित्रं जनांगुलिच्छायो स्थितोऽपि पदितप्यते ॥ ५१ ॥

अर्थ—आचार्य कहे हैं बडा आश्चर्य है, देखो—शीलवान जीवहै सो ताप कहिए घामविषै भी सुखीहै बहुरि शीलका त्यागनेवालाहै सो मनुष्यनिकी अंगुलीकी छायाविषै तिष्ठयाभी तप्तायमान होयहै ॥ ५१ ॥

कदाचन न केनापि सुशीलः परिभूयते।
न तिरस्क्रियते यो हि श्लाघ्यते तस्य जीवितम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जो सुशील पुरुष कोऊ करि भी चलायमान न कीजिएहै अर तिरस्कार न कीजिएहै ताका जीवना सराहिएहै ॥ ५२ ॥

भंगस्थानपरित्यागी व्रतं पालयतेऽमलम्।
तस्करैर्लुप्यते कुत्र दूरतोऽपि पलायितः ॥ ५३ ॥

अर्थ—भंगस्थान कहिये जिस स्थानमै शील भंग होय ऐसा स्थानका त्यागनेवाला पुरुष है सो निर्मल व्रतकौ पालैहै, जैसैं दूरहीतै भाग्या जो पुरुष है सो चौरन करि कहा लूटिएहै, अपि तु नाहीं लूटिएहै।

भावार्थ—जैसै चौरनिकौ दूरहीतै त्यागै तौपुरुष लुटै नाहीं तैसैं व्रतभंगके कारण स्थानादिक त्यागे ताका व्रत निर्मल पलैहै ॥ ५३ ॥

आगै शीलभंगके कारण जे द्यूतादिक तिनका निषेध करैहैं, तहां प्रथम द्यूतका निषेध करैहैं,—

नानानर्थकरं द्यूतं मोक्तव्यं शीलशालिना।
शीलं हि नाश्यते तेन गरलेनेव जीवितम् ॥ ५४ ॥

अर्थ—शीलकरि शोभित जो पुरुष है ताकरि अनेक अनेक अनर्थनिका करनेवाला जो जूवा है सो त्यागना योग्य है, जातै निश्चयसेती ताकरि शील नाशिए है जैसै विषभक्षण करि जीवन नाशिए है ॥५४॥

विषादः कलहो राटिः कोपो मानः श्रमो भ्रमः ।
पैशून्यं मत्सरः शोकः सर्वे द्यूतस्य बांधवाः ॥ ५५ ॥

अर्थ—विषाद कलह राड क्रोध मान खेद संशय चुगली मत्सरभाव शोक, ये सर्व जुवाके बंधुजन हैं ।

भावार्थ—जहां जुवा होय है तहां पूर्वोक्त सर्व कुभाव अवश्य होय हैं ॥ ५५ ॥

दुःखानि तेन जन्यंते जलानीवांबुवाहिना ।
व्रतानि तेन धूयंते रजांसीव चरण्युना ॥ ५६ ॥

अर्थ—तिस जूवा करि जैसै बादले करि जल उपजाइये है तैसै दुःख उपजाइए है अर जैसै पवनकरि रज उडाइए है तैसै जूवा करि व्रत उडाइए है ।

भावार्थ—जूवा करि नाना दुःख होय है अर व्रतनिका लेश भी न रहै है ॥ ५६ ॥

न श्रियस्तत्र तिष्ठंते द्यूतं यत्र प्रवर्त्तते ।
न वृक्षजातयस्तत्र विद्यंते यत्र पावकाः ॥ ५७ ॥

अर्थ—जैसै जहा अग्नि होय है तहां वृक्षनकी जाति उत्पन्न न होय है तैसैं जहां जूवा प्रवर्त्तै है तहां लक्ष्मी न तिष्ठै है ॥ ५७ ॥

मातुरप्युत्तरीयं यो हरते जनपूजितम् ।
अकर्त्तव्यं परं तस्य कुर्वतः कीदृशी त्रपा ॥ ५८ ॥

अर्थ—जो जुवां खेलनेवाला पुरुष सो लोकमै मान्य जो माताका लूगडा ताकौं भी हर लेय है तिसकै और अकार्य करतेकै कैसी लज्जा ।

भावार्थ—कोऊ भी अकार्य करनेमैं जुवा वालेकै लज्जा नाहीं, ऐसा जानना ॥ ५८ ॥

संपदं सकलां हित्वा स गृह्णाति महाऽऽपदम् ।
स्वकुलं मलिनीकृत्य वितनोति च दुर्यशः ॥ ५९ ॥

अर्थ—सो जुवा खेलनेवाला पुरुष समस्त संपदाकौं त्याग करि महा आपदाकौं ग्रहण करै है, वहुरि अपने कुलकौं मलिन करकै खोटा यश विस्तारै है ॥ ५९ ॥

नारकैरपरैः क्रुद्धैर्नारकस्येव मस्तके ।
निखन्य कितवैस्तस्य दुज्र्वालो ज्वाल्यतेऽनलः ॥६०॥

अर्थ—जैसै अन्य क्रोधायमान भए जे नारकी तिन करि नारकीके मस्तकविषैं थापि करि दुःखकारी है ज्वाला जाकी ऐसा अग्नि जलाइयेहै तैसैं जुवारीनकरि जुवारीके सिर परि अग्नि जलाइएहै ॥ ६० ॥

कर्कशं दुःश्रवं वाक्यं जल्पंतो वंचिताः परे ।
कुर्वंति द्यूतकारस्य कर्णनासादिकर्त्तनम् ॥ ६१ ॥

अर्थ—जिनका धन ठिगलिया ऐसे जे अन्य द्यूतकारहैं ते कठोर अर कानानिकौ दुःखदाई वचन वोलते संते जुवा खेलनेवाले के कान नासिका आदि अंगनिकौं काटैहै ॥ ६१ ॥

विज्ञायेति महादोषं द्यूतं दीव्यंति नोत्तमाः ।
जानानाः पावकोष्णत्वं प्रविशंमि कथं वुधाः ॥ ६२ ॥

अर्थ—या प्रकार जूवाकौ महादोषरूप जानकरि उत्तम पुरुष नाहीं खेलैहै जैसैं अग्निका उष्णापना जाणते संते पंडित जनहै ते अग्निमैं प्रवेश कैसैं करैं, अपि तु नाहीं करैहै ॥ ६२ ॥

आगै वेश्याका निषेध करै है;—

वितनोति दृशो रागं या वात्येव रजोमयी ।
विध्वंसयति या लोकं शर्वरीव तमोमयी ॥ ६३ ॥
या स्वीकरोति सर्वस्वं चौरीवार्थपरायणा ।
छलेन याति गृह्णाति शाकिनीवामिषप्रिया ॥ ६४ ॥
वह्निज्वालेव या स्पृष्टा संतापयति सर्वतः ।
शुनीव कुरुते चाटु दानतो याऽति कश्मला ॥ ६५ ॥
विमोहयति या चित्तं मदिरेव निषेविता ।
सा हेया दूरतो वेश्या शीलालंकारधारिणा ॥ ६६ ॥

अर्थ—जो वेश्या नेत्रनिविपै जैसें धूलिसहित पवन राग विस्तारै तैसैं राग विस्तारै है वहुरि या लोकका जैसैं अंधकारमयी राग नाश करैहै तैसें नाश करैहै ॥ ६३ ॥ वहुरि जो वेश्या धनमैं तत्पर चौरी करनेवालाकी ज्यौं सर्व धनकौ गृहण करैहै वहुरि जो छलकरि मांस है प्रिय जाकौ ऐसी शाकिनिकी ज्यौं मनुष्यकौ अतिशयकरि अगीकार करैहै ॥ ६४ ॥ वहुरि जो वेश्या अग्निकी ज्वाला समान स्पर्शी भई सर्व तरफतैं संताप उपजावैहै, वहुरि धनके देवैतै जो अत्यत पापिनी कुत्तीकी ज्यौं खुशामद विस्तारै है ॥ ६५ ॥ वहुरि जो मदिराकी ज्यो सेई भई चित्तकौ मोह उपजावैहै सो वेश्या शीलरूप आभूपणका धारी जो पुरुप ताकरि दूरतै त्यागनी योग्यहै ॥ ६६ ॥

सत्यं शौचं शमं शीलं संयमं नियमं यमम् ।
प्रविशंति वहिर्मुक्त्वा विटाः पण्यांगनागृहे ॥ ६७ ॥

अर्थ—व्यभिचारी पुरुपहैं ते सत्य शौच शम शील सयम नियम यम इत्यादि सर्व धर्मके अंगनिकौ वाहर छोडिकरि वेश्याके घरमैं प्रवेश करैहै ।

भावार्थ—वेश्याके घरमैं प्रवेश करतेही सर्व धर्मका नाश होयहै ॥ ६७॥

तपो व्रतं यशो विद्या कुलीनत्वं दमो दया।
छिद्यंते वेश्यया सद्यः कुठारेणेवाऽखिला लताः ॥ ६८ ॥

अर्थ—जैसै कुल्हाडी करि सर्व लता शीघ्र छेदिएहै तैसै वेश्याकरि तप व्रत यश विद्या कुलीनपना इंद्रियनिका दमन दया ये सर्व शीघ्र छेदियेहै ॥ ६८ ॥

जननी जनको भ्राता तनयस्तनया स्वसा।
न संति वल्लभास्तस्य दारिका यस्य वल्लभा ॥ ६९ ॥

अर्थ—जा पुरुषकै वेश्या प्यारीहै ता पुरुषकै माता पिता भाई पुत्र पुत्री वहन ये प्यारे नाहीं ॥ ६९ ॥

न तस्मै रोचते सेव्यं गुरूणां वचनं हितम्।
सशर्करमिव क्षीरं पित्ताकुलितचेतसे ॥ ७० ॥

अर्थ—वेश्या सेवने वाले पुरुषकौ सेवने योग्य जो गुरुनका हितरूप वचन सो नहीं रुचैहै जैसै पित्तकरि आकुलितहै चित्त जाका ऐसा जो पुरुष ताकै अर्थ मिश्रीसहित दूध नाहीं रुचैहै तैसैं।

भावार्थ—वेश्यासक्तकौ गुरुवचन नहीं सुहावैहै ॥ ७० ॥

वेश्यावक्त्रगतां निंद्यां लालां पिवति योऽधमः।
शुचित्वं मन्यते स्वस्य काऽपरातो विडंबना ॥ ७१ ॥

अर्थ—जे अधम पुरुष वेश्याके मुख विषै प्राप्त जो निंदनीक लाल ताहि पीवैहै अर आपकै शुचिपनां मानैहै या सिवाय और कहा विडंबनाहै ॥ ७१ ॥

यो वेश्यावदनं निस्ते मूढो मद्या दिवासितम्।
मद्यमांसपरित्यागव्रतं तस्य कुतस्तनम् ॥ ७२ ॥

अर्थ—जो मूढ मदिराकरि वासित जो वेश्याका मुख ताहि चूमैं है ताकै मदिरा मांसके त्यागरूप व्रत कहिका ॥ ७२ ॥

वदनं जघनं यस्या नीचलोकमलाविलम्।
गणिकां सेवमानस्य तां शौचं वद कीदृशम् ॥ ७३ ॥

अर्थ—जा वेश्याका मुख अर जघन नीचलोकके मलकरि मलिनहै ता गणिकाकौ सेवता जो पुरुष ताकै पवित्रपना कैसा, कोई प्रकार पवित्रपना नाही ॥ ७३ ॥

या परं हृदये धत्ते परेण सह भाषते।
परं निषेवते लुब्धा परमाह्वयते दृशा ॥ ७४ ॥

अर्थ—या वेश्या मनमै अन्य पुरुषकौ धारै है अर औरके साथ बोलैहै अर लोभनी औरकौ सेवैहै अर दृष्टिकरि औरकौ बुलावै है ॥ ७४ ॥

सरलोऽपि सदक्षोऽपि कुलीनोऽपि महानपि।
ययेक्षुरिव निःसारः सुपर्वापि विमुच्यते ॥ ७५ ॥

अर्थ—जा वेश्या करि मायाचाररहित सरल भी अर चतुर भी अर कुलीन भी अर बडा भी अर सुपर्वा कहिये सुदर अंगसहित भी निःसार कहिये द्रव्यरहित होय सो सांठे की ज्यौं त्यागिए है,

भावार्थ—जैसै सूधा भी भला भी अर कुलीन कहिये पृथ्वीविषै लीन भी वडा भी अर सुपर्वा कहिये भली है मुठोर जाकी ऐसा भी सांठा है सो साररहित त्यागिए हैं तैसै वेश्याकरि निःसार मनुष्य त्यागिए है ॥७५॥

न सा सेव्या त्रिधा वेश्या शीलरत्नं यियासता।
जानानो न हि हिंस्रत्वं व्याघ्रीं स्पृशति कश्चन ॥ ७६ ॥

अर्थ—शील रत्नकी रक्षा करता जो पुरुष ताकरि सो वेश्या मन वचन काय करि सेवनी योग्य नाही जातै हिंसकपनेंकौ जानता संता कोई भी पुरुष है सो व्याघ्रीकौ नाही स्पर्शै है ॥ ७६ ॥

आगै परस्त्रीसेवनका निषेध करै है;—

तिरश्ची मानुषी देवी निर्जीवा च नितंबिनी ।
परकीया न भोक्तव्या शीलरत्नवता त्रिधा ॥ ७७ ॥

अर्थ—तिर्यंचणी मनुष्यणी देवी ये तो चेतन अर अचेतन ऐसी काष्ठ पाषाणादिककी ऐसी च्यार प्रकार परस्त्री है सो शीलरत्नसहित पुरुष करि मन वचन काय करि सेवनी योग्य नाही ॥ ७७ ॥

जीवितं हरते रामा परकीया निषेविता ।
प्लोषते सर्पिणी दुष्टा स्पृष्टा दृष्टिविषा न किम् । ॥७८॥

अर्थ—परस्त्री सेई भई जीवितव्यकौ हरैहै जैसै जाके देखेही विष चढै ऐसी दुष्ट सर्पिणी स्पर्शी संती कहा न जलावै, अपि तु जलावै ही है ॥ ७८ ॥

यच्चेह लौकिकं दुःखं परनारीनिषेवने ।
तत्प्रसूनं मतं प्राज्ञैर्नारिकं दारुणं फलम् ॥ ७९ ॥

अर्थ—जो परनारी सेवने विषै इस लोकसंबंधी दुःखहै सो तो ताका फूलहै अर नरकसंबंधी भयानक दुःखहै सो ताका फल पंडितनिनै कह्याहै ॥ ७९ ॥

स्वजनैः रक्षमाणायास्तस्या लाभोऽतिदुष्करः ।
तापस्तु चिंत्यमानायां सर्वांगीणो निरंतरः ॥ ८० ॥

अर्थ—स्वजननिकरि रक्षा करी भई परस्त्री है ताका लाभ अतिदुष्कर है बहुरि ताका चितवन करे संते निरंतर सर्व अंगमै ताप उपजैहै ॥ ८० ॥

प्राप्यापि कष्टकष्टेन तां देशे यत्र तत्र वा ।
किं सुखं लभते भीतः सेवमानस्त्वरान्वितः ॥ ८१ ॥

अर्थ—वहुरि जिस तिस क्षेत्रविषै कष्ट कष्ट करि परस्त्रीकौ पायकरि भी भयभीत आतुरतासहित सेवता सता कहा सुख पावैहै ? किछू भी सुख न पावैहै ॥ ८१ ॥

या हिनस्ति स्वकं कांतं सा जारं न कथं खला।
विडाली याऽत्ति पुत्रं स्वं सा किं मुंचति मूषिकाम् ॥८२॥

अर्थ—जो स्त्री अपने पतिकौ मारैहै सो दुष्टनी यारकौ कैसे नाही मारैहै जैसै जो विलाई अपने पुत्रकौ खायहै सो मूसेकौ न खाय ? खायही है ॥ ८२ ॥

यावद्दर्श कुचेतस्काः किं वृण्वंति परांगनाम्।
न पापतः परो लाभः कदाचित्तत्र विद्यते ॥ ८३ ॥

अर्थ—ऐसी परस्त्रीकौ खोटेहै चित्त जिनके ऐसे पुरुषहै ते क्यौ भोगैहै ? जातै परस्त्रीसेवनविषै पापसमान और लाभ नाहींहै ॥ ८३ ॥

या स्वं मुंचति भर्त्तारं विश्वासस्तत्र कीदृशः।
को विश्वासमृते स्नेहः किं सुखं स्नेहतो विना ॥८४॥

अर्थ—जो स्त्री अपने भरतारकौ छोडै ता विषै विश्वास कैसा ? अर विश्वास विना स्नेह कहा अर स्नेहविना सुख कहा ॥ ८४ ॥

वधो वंधो धनभ्रंशस्तापः शोकः कुलक्षयः।
आयासः कलहो मृत्युः पारदारिक वांधवाः ॥ ८५ ॥

अर्थ—वध कहिए नाश अर वंध बधन अर धनका नाश अर संताप अर शोक अर कुलकाक्षय अर खेद अर कलह अर मरण ये परस्त्री सेवनेवालेके बाधव है।

भावार्थ—परस्त्री सेवनेवालेके वध वंधनादि सर्वही होय है॥ ८५॥

लिंगच्छेदं खरारोपं कुलालकुसुमार्चनम्।
जननिंदामभोगत्वं लभते पारदारिकः ॥ ८६ ॥

अर्थ—परस्त्रीका सेवनेवाला पुरुष है सो लिंगका छेदना गधापै बैठावना अर कुलालकुसुम कहिए छैनां कंडा तिनकरि पूजन कहिए मारणा अर लोकनिंदा अर भोगरहितपना इत्यादि पावैहै ॥ ८६ ॥

लब्ध्वा विडंबनां गुर्वीमत्र प्राप्तः स पंचताम् ।
श्वभ्रे यद्दुःखमाप्नोति कस्तद्वर्णयितुं क्षमः ॥ ८७ ॥

अर्थ—सो परस्त्री सेवनेवाला इस लोकविषै बडी विडंबनाकौ पाय करि मरणकौ प्राप्त भया नरकविषै जो दुःख पावैहै ताहि वर्णन करनेकौं कौन समर्थ है ? ॥ ८७ ॥

एकांते यौवनध्वांते नारीं नेदीयसी सतीम् ।
दृष्ट्वा क्षुभ्यति धीरोऽपि का वार्ता कातरे नरे ॥ ८८ ॥

अर्थ—एकांतमै यौवनरूप अंधकारविषै शीलवंत वृद्धानारीकौ देखि करि धीर पुरुष भी क्षोभकौ प्राप्त होयहै तो कायर पुरुष विषै कहा वार्त्ताहै, वहतो क्षोभकौ प्राप्त होयही होय ॥ ८८ ॥

जल्पनं हसनं कर्म[1] क्रीडा वक्त्रावलोकनम् ।
आसनं गमनं स्थानं वर्णनं भिन्न भाषणम् ॥ ८९ ॥
नार्या परिचयं सार्द्धं कुर्वाणः परकीयया ।
वृद्धोऽपि दूष्यते प्रायस्तरुणो न कथं पुनः ॥ ९० ॥

अर्थ—परस्त्री साथ बोलना हसना कार्यकरना क्रीडा करना मुख देखना बैठना गमन करना ठाडे रहना वर्णन करना एकांतविषै बोलना इत्यादि परिचय करता संता वृद्ध पुरुषभी बाहुल्य पनै दूषित होयहै तौ तरुण पुरुष कैसै दूषित न होय ? होयही होय ॥ ८९ ॥ ९० ॥

विबुद्ध्येति महादोषं परामा मनीषिभिः ।
विवर्ज्या दूरतः सद्भिर्भुजगीव भयंकरा ॥ ९१ ॥

---

१ संस्कृत प्रतियोंमें " कर्म " इसके स्थानमैं " नर्म " ऐसा पाठहै ।

अर्थ—या प्रकार महादोष जानिकै बुद्धिवान सत्पुरुषनि करि पर-स्त्री भयंकर सर्पिणीकी ज्यौ दूरतै त्यागनी योग्य है ॥ ९१ ॥

आगै शिकारका निषेध करै हैं;—

नामापि कुरुते यस्या गृहीतं गुरु कल्मषम् ।
मृगया सा त्रिधा हेया भवदुःखविभीरुणा ॥ ९२ ॥

अर्थ—जाका नाम भी बडा पाप करै है सो शिकार खेलना संसारतै भयभीत जो पुरुष ताकरि मन वचन कायतै त्यागनी योग्य है ॥९२॥

त्रस्यंति सर्वदा दीनाश्चलतः पर्णतोऽपि ये ।
हिंस्यंते तेऽपि यैर्जीवास्तेभ्यः के निघृणाः परे ॥ ९३ ॥

अर्थ—जे दीन जीव चालते पत्तासै भी सदाकाल त्रासकौ प्राप्त होय है ते भी मृगादिक जीव तिन शिकारीन करि मारिए है तिनतै सिवाय और निर्दयी कौन है ॥ ९३ ॥

निरागसः पराधीना नश्यंतो भयविह्वलाः ।
कुरंगामैर्निहन्यंते पापिष्ठा न परे ततः ॥ ९४ ॥

अर्थ—अपराधरहित अर पराधीन अर भयकरि व्याकुल नाशकौ प्राप्त होते भागते ऐसे हरिण जिनकरि मारिए है तिनतै सिवाय और दूसरे पापी नाहीं ॥ ९४ ॥

गृह्णंतोऽपि तृणं दंतैर्देहिनो मारयंति ये ।
व्याघ्रेभ्यस्ते दुराचारा विशिष्यंते कथं खलाः ॥ ९५ ॥

अर्थ—जो दातनि करि तृण ग्रहण करै है ऐसे मृगादिक जीवनीकौ जे मारै है ते दुराचारी दुष्टजीव व्याघ्रनितै न्यारे कैसे कहिए है ।

भावार्थ—व्याघ्र भी मृगादिककौ मारै है अर शिकारी भी मारै है तातै दोनौ समान ही है ॥ ९५ ॥

ये मारयंति निस्त्रिंशा ये मार्यंते च विह्वलाः।
तेषांपरस्परंनास्ति विशेषस्तत्क्षणं मिना ॥ ९६ ॥

अर्थ—जे निर्दयी मारैहै अर जे विह्वल जीव मारिएहै तिनकै परस्पर ता समयविना विशेष नाहीं।

भावार्थ—वर्त्तमान समयतै तौ मारनेवाला अर जिनकौं मारैहै ते जीव हीनाधिकहै वहुरि आगै नरकादिकमैं परस्पर मारैहै तहां हीनाधिक नाहीं ॥ ९६ ॥

स्वमांसं परमांसैर्ये पोषयंति दुराशयाः।
स्वमांसमेव खाद्यंते हठतो नारकैरिमे ॥ ७७ ॥

अर्थ—जो दुष्टचित्त परजीवनके मांसनकरि अपना मांस पोषैहै सो ये हठतै अपने मांसहीकौं नारकीन करि खवावैहै ॥ ९७ ॥

स्वल्पायुर्विकलो रोगी विचक्षुर्वधिरः खलः।
वामनः पामनः षंढो जायते स भवे भवे ॥ ९८ ॥

अर्थ—अल्प आयु अंगविकल रोगी नेत्ररहित वहरा दुष्ट वामन कुष्टरोगी नपुंसक सो मांसभक्षी भव भवविषै होयहै ॥ ९८ ॥

दुःखानि यानि दृश्यंते दुःसहानि जगत्त्रये।
सर्वाणि तानि लभ्यंते प्राणिमर्दनकारिणा ॥ ९९ ॥

अर्थ—तीन लोकविषै जे दुःसह दुख देखिए हैं ते सर्व दुःख प्राणीनकी हिंसा करनेवाले करि पाइए है ॥ ९९ ॥

इति दोषवती मत्वा मृगया हितकांक्षिणा।
नानानर्थकरी त्याज्या राक्षसीव विभीषणा ॥ १०० ॥

अर्थ—या प्रकार दोष सहित जानिकै हितका वांछक जो पुरुष ता करि अनेक अनर्थनकी करनहारी राक्षसी समान भयकारी जो शिकार सो त्यागना योग्य है ॥ १०० ॥

भोजनं कुर्वता कार्यं मौनं शीलवता सदा ।
संतोपित्वमिवानिंद्यं भैक्ष्यशुद्धिविधायिना ॥ १०१ ॥

अर्थ—जैसै भिक्षा शुद्धिका आचरण करनेवाला जो मुनि ताकरि अनिद्य संतोपीपना करणा योग्य है तैसैं भोजन करता जो शीलवान सत्पुरुप ताकरि मौन करना योग्य है ॥ १०१ ॥

सर्वदा शस्यते जोपं भोजने तु विशेपतः ।
रसायनं सदा श्रेष्ठं सरोगित्वे पुनर्न किम् ॥ १०२ ॥

अर्थ—मौन सदाकाल सराहिए है अर भोजनमैं तो विशेप सराहिए है जैसैं औपध सदा भलीहै वहुरि सरोगीपने विपै कैसैं भली न होय ॥ १०२ ॥

संतोपो भाव्यते तेन वैराग्यं तेन दृश्यते ।
संयमः पोष्यते तेन मौनं येन विधीयते ॥ १०३ ॥

अर्थ—जाकरि मौन करिएहै ताकरि संतोप भाइए है ताकरि वैराग्य देखिएहै ताकरि संयम पोपिएहै ॥ १०३ ॥

वाचो व्यापारतो दोपा ये भवंति दुरुत्तराः ।
ते सर्वेऽपि निवार्यंते मौनव्रतविधायिना ॥ १०४ ॥

अर्थ—वचनके व्यापारतै जे दुःखसैं उतरे जाय ऐसे दोप है ते सर्वही मौनव्रतके धारक पुरुप करि निवारिए है ॥ १०४ ॥

सागरोऽपि जनो येन प्राप्यते यतिसंयमम् ।
मौनस्य तस्य शक्यंते केन वर्णयितुं गुणाः ॥ १०५ ॥

अर्थ—जिस मौन व्रत करि गृहस्थमी यतीके संयमकौं प्राप्तकीजिएहै तिस मौनके गुण कौनकरि वर्णन करनेकौ समर्थ हूजिएहै, अपि तु नाहीं हूजिए है ॥ १०५ ॥

पोपेण विशता रोधः कल्मषस्य विदीयते।
वलिष्ठेन महिष्ठेन सलिलस्येव सेतुना ॥ १०६ ॥

अर्थ—जैसैं वलवान अर वडा जो सेतु कहिए पाल ताकरि जलका रोध करिए तैसै प्रवेश करता जो पाप ताका रोध मौनकरि कीजिए है ॥ १०६ ॥

हुंकारांगुलिखात्कारभ्रूमूर्द्धचलनादिभिः।
मौनं विदधता संज्ञा विधातव्या न गृद्धये ॥ १०७ ॥

अर्थ—मौनकौ धारता जो पुरुष ताकरि हुंकार करना अंगुली उठावना खंकार करना भृकुटी चलावना मस्तक चलावना इत्यादिकरि गृद्धी जो अतिचाह ताके अर्थि संज्ञा करना योग्य नाहीं ॥ १०७ ॥

सार्वकालिकमन्यच्च मौनं द्वेधा विधीयते।
भक्तितः शक्तितो भव्यैर्भवभ्रमणभीरुभिः ॥ १०८ ॥

अर्थ—संसारभ्रमणतैं भयभीत जे भव्यजीव तिनकरि भक्तितैं शक्तिसारू एक तौ सार्वकालिक कहिए मरणपर्यंत दूजा असार्वकालिक कहिए कालकी मर्यादारूप ऐसैं दोय प्रकार मौन कीजिएहै ॥ १०८ ॥

भव्येन भक्तितः कृत्वा मौनं नियतकालिकम्।
जिनेंद्रभवने देया घंटिका समहोत्सवम् ॥ १०९ ॥

अर्थ—भव्यजीव करि भक्तिसैं कालकी मर्यादारूप मौन करिकै जिनेंद्रके मंदिरविषै महोत्सवसहित जैसै होय तैसै घंटिका देनी योग्यहै।

भावार्थ—मौनव्रत पूर्ण होय तव उद्यापन करै तामैं जिनचैत्यालयमैं घंटा चढावै, ऐसा जानना ॥ १०९ ॥

नसार्वकालिके मौने निर्वाहव्यतिरेकतः।
उद्योतनं परं प्राज्ञैः किंचनापि विधीयते ॥ ११० ॥

अर्थ—सार्वकालिक कहिए यावज्जीव मौनविषै निर्वाह विना (निर्वाहकै सिवाय) पंडितनिकरि किछू भी उद्योतन न करिए है॥ ११०॥

आवश्यके मलक्षेपे पापकार्ये विशेषतः।
मौनी न पीड्यते पापैः सन्नद्धः सायकैरिव॥ १११॥

अर्थ—सामायिकादि आवश्यक क्रिया विपै मलके क्षेपण विषै वहुरि पापकार्य जो मैथुनसेवन आदि ता विपै मौनका धारी जीवहै सो पापकरि न पीडिएहै जैसैं वकतर पहरे योद्धा हैं सो वाणनिकरि न पीड्या जायहै तैसैं मौनी पापनिकरि न वंधैहै॥ १११॥

कोपादयो न संक्लेशा मौनव्रतफलार्थिना।
पुरः पश्चाच्च कर्त्तव्याः सूद्यते तद्धितैः कृतैः॥ ११२॥

अर्थ—मौनव्रतके फलका वाछक जो पुरुष ताकरि आगैं वापीछै क्रोधादिकपाय करणा योग्य नाही, जातै करे जे क्रोधादिकपाय तिनकरि मौनव्रत नाश कीजिएहै।

भावार्थ—मौनके पहले वा पीछै कपाय न करना, कपायतै मौनव्रत निष्फल होयहै॥ ११२॥

वाचंयमः पवित्राणां गुणानां सुखकारिणाम्।
सर्वेषां जायते स्थानं मणीनामिव नीरधिः॥ ११३॥

अर्थ—वचनका संयम है सो पवित्र अर सुखकारी जे सर्वगुण तिनका स्थान होयहै जैसै रत्ननिका स्थान समुद्र होयहै तैसैं।

भावार्थ—वचनका संयमहै सो सर्व गुणनिका स्थानहै, ऐसा जानना॥ ११३॥

वाणी मनोरमा तस्य शास्त्रसंदर्भगर्भिता।
आदेया जायते येन क्रियते मौनमुज्ज्वलम्॥ ११४॥

अर्थ—जा पुरुष करि निर्मल मौन करियेहै ताकी शास्त्ररचना करि युक्त मनकौं प्यारी आदर करनेयोग्य वाणी होयहै ॥ ११४ ॥

पदानि यानि विद्यंते वंदनीयानि कोविदैः ।
सर्वाणि तानि लभ्यंते प्राणिना मौनकारिणा ॥ ११५ ॥

अर्थ—जे पंडितनि करि वंदनीक पद हैं ते सर्व पद मौन करनवाला जो जीव ताकरि पाइए है ॥ ११५ ॥

निर्मलं केवलज्ञानं लोकालोकावलोकनम् ।
लीलया लभ्यते येन किं तेतान्यन्न कांक्षितम् ॥ ११६ ॥

अर्थ—लोकालोकका देखनहारा ऐसा निर्मल केवलज्ञान जाकरि लीलामात्र करि पाइए ताकरि और वांछित वस्तु कहा न पाइए, अपि तु पाइएही है ॥ ११६ ॥

ऐसैं मौनव्रतका वर्णन किया, आगै उपवासका वर्णन करै हैं;—

रागो निवार्यते येन धर्मो येन विवर्द्ध्यते ।
पापं निहन्यते येन संयमो येन जन्यते ॥ ११७ ॥

अनेकभयसंबद्धकर्मकाननपावकः ।
उपवासः स कर्त्तव्यो नीरागीभूतचेतसा ॥ ११८ ॥

अर्थ—जाकरि रागभाव निवारिए है अर धर्म बढाइए है अर पाप नाशिए है अर संयम भाव उपजाइए है ॥ ११७ ॥ सो उपवास रागरहित भया है चित्त जाका ऐसे पुरुषकरि करणा योग्य है, कैसा है उपवास अनेक भवभै बंधे जे कर्म सो ही भया वन ताकौ अग्नि समान है ॥ ११८ ॥

उपेत्याक्षाणि सर्वाणि निवृत्तानि स्वकार्यतः ।
वसंति यत्र स प्राज्ञैरुपवासो विधीयते ॥ ११९ ॥

अर्थ—जा विषै सर्व स्पर्शनादि इंद्रिय है ते अपना अपना कार्य जो स्पर्शादि विषयनिमैं प्रवर्त्तना तातैं रहित भए संते आत्माके निकट प्राप्त होयकरि वसिए सो उपवास कहिए ॥ ११९ ॥

स सार्वकालिको जैनैरेकोऽन्योऽसार्वकालिकः ।
द्विविधः कथ्यते शक्तो हृषीकाश्वनियंत्रणे ॥ १२० ॥

अर्थ—सो उपवास एकतौ सार्वकालिक कहिए यावज्जीव धारणा दूजा असार्वकालिक कहिए कालके प्रमाणरूप, ऐसैं दोय प्रकार जैनीन करि कहिए है, कैसा है उपवास इंद्रियरूप घोडेनके रोकनेमैं समर्थ है ॥ १२० ॥

तत्राद्यो म्रियमाणस्य वर्त्तमानस्य चापरः ।
कालानुसारतः कार्यं क्रियमाणं महाफलम् ॥ १२१ ॥

अर्थ—तहां आदिका सार्वकालिक उपवास है सो जाका मरण निकट होय संन्यास धरै ताकै होय है वहुरि दूसरा असार्वकालिक उपवास है सो वर्तमान पुरुषके चतुर्दशी आदि पर्वके कालविषै मर्यादारूप होय है, जातैं कालके अनुसारतैं किया भया कार्य है सो महाफलरूप होय है ॥ १२१ ॥

वर्त्तमानो मतस्त्रेधा स वर्यो मध्यमोऽधमः ।
कर्त्तव्यः कर्मनाशाय निजशक्त्यनुगूहकैः ॥ १२२ ॥

अर्थ—सो वर्त्तमान कहिए कालका नियमरूप उपवास है सो उत्तम मध्यम अधम ऐसैं तीन प्रकार कह्या है सो अपनी शक्तिकौं न छिपावनेवाले ऐसे जे पुरुष तिन करि कर्मके नाशके अर्थि करणा योग्य है।

भावार्थ—शक्तिसारू उवपास कर्मकी निर्जराहीके अर्थ करणा योग्य है, ख्याति लाभ पूजादिकके अर्थ न करना ऐसा अभिप्राय है ॥ १२२ ॥

चतुर्णां तत्र भुक्तीनां त्यागे वर्यश्चतुर्विधः ।
उपवासः सयानीयस्त्रिविधो मध्यमो मतः ॥ १२३ ॥
भुक्तिद्वयपरित्यागे त्रिविधो गदितोऽधमः ।
उपवासस्त्रिधाप्येषः शक्तित्रितयसूचकः ॥ १२४ ॥

अर्थ—तहां च्यार प्रकार आहारका त्याग करिए सो चतुर्विध नामा उत्तम उपवासहै, बहुरि पानी सहित है सो त्रिविध नामा मध्यम उपवास कह्या है ॥ १२३ ॥ बहुरि दोय वेला प्रकार भोजनका त्याग होतसंतै त्रिविध नामा अधम उपवास है, यह उत्तम मध्यम जघन्य तीनौ प्रकारहीका उपवास उत्तम मध्यम जघन्य तीनौ शक्तिका सूचक है, जैसी जा पुरुपमे शक्ति होय तैसाही उपवास धारै ॥ १२४ ॥

भावार्थ—धारणे पारणे एकवार भोजन करै अर च्यार प्रकार आहारका त्याग करै सो चतुर्विध नामा उत्तम उवपास कहिए है, अर धारणे पारणे एक भुक्ति करै अर उपवासमै जल लेय सो मध्यम त्रिविधनामा उपवास है, अर धारणे पारणे अनेक वार खाय अर उपवासविपै पानी भी लेय सो अधम त्रिविधनामा उपवास कहिए, यामैं एकदिनमै दोय भोजनकी वेला होय है तिनं दोऊ वेलामें भोजन त्यागया तातै दोऊ भोजनका त्याग किया, ऐसा जानना ॥ १२३—१२४ ॥

आगै उपवास करनेका विधान कहैहै;—

प्रहरद्वितये भुक्त्का समेत्याचार्यसन्निधिम् ।
वंदित्वा भक्तितः कृत्वा कायोत्सर्गं यथाक्रमम् ॥१२५॥
पंचांगप्रणतिं कृत्वा गृहीत्वा सूरिवाक्यतः ।
उपवासं पुनः कृत्वा कागोत्सर्गं विधानतः ॥ १२६ ॥
आचार्यं स्तवतः स्तुत्त्वा वंदित्वा गणनायकम् ।
दिनद्वयं ततो नेयं स्वाध्यायासक्तचेतसा ॥ १२७ ॥

विधाय साक्षिणं सूरिं गृह्णाणः पटीयसा ।
संपद्यतेतरामेप व्यवहार इव स्थिरः ॥ १२८ ॥
सर्वभोगोपभोगानां कर्त्तव्या विरतिस्त्रिधा ।
शयितव्यं महीपृष्ठे प्रासुके कृतसंस्तरे ॥ १२९ ॥
विहाय सर्वसारंभमसंयमविवर्द्धकम् ।
विरक्तचेतसा स्थेयं यतिनेव पटीयसा ॥ १३० ॥
तृतीये वासरे कृत्वा सर्वमावश्यकादिकम् ।
भोजयित्वाऽतिथिं भक्त्या भोक्तव्यं गृहमेधिना ॥१३१॥
उपवासः कृतोऽनेन विधानेन विरागिणा ।
हिनस्त्येकोऽपि रेपांसि मांहीव दिवाकरः ॥ १३२ ॥

अर्थ—धारणेके दिन दोय प्रहर विषै भोजन करकै आचार्यनिके निकट जायकरि भक्तितै वंदना करकै आगम अनुसार कायोत्सर्ग करकै ॥ १२५ ॥ बहुरि पंचांग नमस्कार करकै आचार्यके वचनतैं उपवासकौं ग्रहण करकै फेरि विधानतै कायोत्सर्ग करकै ॥ १२६ ॥ आचार्यकौ स्तवनतैं स्तुति करकै अर गणधर देवकौ वंदिकै ताके अनंतर दोय दिन कहिए सोल्ह प्रहर स्वाध्यायमै आसक्त जो मन ताकरि व्यतीत करणा योग्य है,

भावार्थ—सोल्ह प्रहर स्वाधायमै लीन रहै ॥ १२७ ॥ बुद्धिवान ताकरि आचार्यकौं साक्षिकरि ग्रह्या जो उपवास सो अतिशयकरि निश्चल होयहै जैसैं व्यवहारकार्य बडेनके साक्षीभूत किया स्थिर होयहै तैसै गुरुकी साक्षी धारया उपवास निश्चल होयहै ॥ १२८ ॥ बहुरि उपवासमै सर्व भोग उपभोगनिका त्याग मन वचन काय करि करणा योग्य है, अर करया है तृणादिकका संस्तर जहां ऐसे प्रासुक पृथ्वीतल पर सोवना योग्यहै ॥ १२९ ॥ असंयमका वढावनेवाला जो सर्व

आरंभ ताहि त्यागिकै मुनिकी ज्यो विरक्तचित्त होय कै बुद्धिवान करि तिष्ठना योग्यहै ॥ १३० ॥ बहुरि तीसरे दिन सर्व आवश्यक क्रिया करकै अतिथिकौ भक्ति करि भोजन करायकै श्रावककरि भोजन करणा योग्य है ॥ १३१ ॥ इस विधान करि विरागी पुरुष करि किया जो उपवास सो एकभी जैसै सूर्य अंधकारकौ हरे तैसै पापकौ हरै है ॥ १३२ ॥

उपवासं विना शक्तो न परः स्मरमर्दने ।
सिंहेनेव विदार्यंते सिंधुरा मदमंथराः ॥ १३३ ॥

अर्थ—जैसै मदोन्मत्त हस्ती है ते सिहकरि विदारिए है तैसै उपवासविना कामके नाश करने विषै और समर्थ नाहीं ॥ १३३ ॥

उपवासेन संतप्ते क्षिप्रं नश्यति पातकम् ।
ग्रीष्मार्काध्यासिते तोयं कियत्तिष्ठति भूतले ॥ १३४ ॥

अर्थ—उपवासकरि तप्तायमान भया जो पुरुष ता विषै पाप शीघ्रही नाशकौ प्राप्त होय है जैसै ग्रीष्मके सूर्य करि व्याप्त जो पृथ्वीतल ता विषै जल कितना तिष्ठै शीघ्र ही सूखि जाय तैसै उपवासतैं पाप नसि जाय है ॥ १३४ ॥

नित्यो नैमित्तिकश्चेति द्वेधाऽसौ कथितो बुधैः ।
प्रोषधे स मतो नित्यो बहुधाऽन्यो व्यवस्थितः ॥१३५॥

अर्थ—सो यहु उपवास पंडितनिकरि नित्य अर नैमित्तिक ऐसै दोय प्रकार कह्याहै सो प्रोषध जो अष्टमी चतुर्दशीपर्व ता विषैं तौ नित्य कह्या है अर अन्य जो नैमित्तिक सो बहुत प्रकार व्यवस्थित है ॥ १३५ ॥

उपवासा विधीयंते ये पंचम्यादिगोचराः ।
उक्ता नैमित्तिकाः सर्वे ते कर्मक्षपणक्षमाः ॥ १३६ ॥

अर्थ—जे पंचमी आदि विषै उपवास करिए है ते सर्व कर्मके नाश करनेमै समर्थ नैमित्तिक उपवास कहे हैं ॥ १३६ ॥

गुरुतरकर्मजालसलिलं भववृक्षकरं
बहुपरिणाममेघनिवहप्रभवं प्रसभम् ।
क्षपयति सर्वमुग्रमुपवासपयोजपति-
र्विरचितसंवृतेर्निखिलदेहितडागततेः ॥ १३७ ॥

अर्थ—रच्या है संवर जानै ऐसा जो पुरुष ताकै उपवासरूपी जो उग्र सूर्य है सो अतिवडा जो ज्ञानावरणादि जालरूप जल ताहि बलात्कारतै क्षेपैहै सोखैहै, कैसा है कर्मजालरूप जल संसार वृक्षका करनेवाला है अर नानाप्रकार रागादि भावरूप मेघनिके समूहतैं उपज्याहै बहुरि समस्त संसारी जीवरूप सरोवरविपै भरयाहै ।

भावार्थ—सवर सहित उपवासतै कर्मनिकी निर्जरा अधिक होयहै, ऐसा जानना ॥ १३७ ॥

जनयति यद्विधूय विपदं रभसोपचितिं
घटयति संपदं त्रिदशमानववर्गमताम् ।
विधिविहितस्य तस्य पुरुषः श्रुतकेवलिनो
वदति फलं न कोऽप्यनशनस्य परो भुवने ॥१३८॥

अर्थ—जो उपवास संचयरूप भई जो विपदा ताहि नाश करि बलात्कारतै देवमनुष्यके समूहकरि मानित संपदाकौ रचैहै, ऐसा विधिपूर्वक करया जो उपवास ताके फलकौ केवली कहैहै और पुरुष लोकविपै न कहैहै ॥ १३८ ॥

रचयति यस्त्रिधा व्रतमिदं महितं महिते-
रमितगतिश्चतुर्विधमनन्यमनाः पुरुषः ।

भवशतसंचितं कलिलमेष निहत्य घनं
शिवपदमेति शाश्वतमपास्तसमस्तमलम् ॥१३९॥

अर्थ—जो पुरुष यहु च्यार प्रकार व्रतकौ मन वचन काय करि करैहै सो अनेक जन्म करि संचय किया जो सघन पाप ताहि नाशकरि समस्त कर्ममलरहित सास्वता जो सिवपद ताहि प्राप्त होय है, कैसाहै पूजनीक पुरुषनिकरि पूजनीकहै, बहुरि कैसाहै वह पुरुष अपार है ज्ञान जाका अर नाहीं है व्रतसिवाय अन्यविषै मन जाका, ऐसा है ॥१३९॥

दोहा।

मन वच काय विशुद्धकरि जो धारै व्रत शुद्ध ।
नाशि कर्ममल, मोक्षपद पावै सो अविरुद्ध ॥

इत्युपासकाचारे द्वादशः परिच्छेदः ।

ऐसैं श्री अमितगति आचार्यविरचित श्रावकाचारविषैं
द्वादशमां परिच्छेद समाप्त भया ।

त्रयोदश परिच्छेद ।

शशांकामलसम्यक्त्वो व्रताभरणभूषितः ।
शीलरत्नमिवाखानिः पवित्रगुणसागरः ॥ १ ॥

अर्थ—शशांकादिमलरहित चंद्रमासमान निर्मलहै सम्यक्त जाका अर व्रतरूप आभूषणकरि शोभित अर शीलरत्नके उपजायवेकौ खानिसमान अर निर्मल गुणनिका समुद्र ऐसाहै ॥ १ ॥

ऋजुभूतमनोबुद्धिर्गुरुशुश्रूषणोद्यतः ।
जिनप्रवचनाभिज्ञः श्रावकः सप्तधोत्तमः ॥ २ ॥

अर्थ—अर सरलहैं मनसंबंधी बुद्धि जाकी अर गुरुकी सेवा विषै उद्यमीहै अर जिनागमका जाननेवाला है ऐसा उत्तम श्रावक सातप्रकार जानना ॥ २ ॥

निसर्गजरुचौ जंतावेकांतरुचिराजिते ।
असहाय महाप्राज्ञे सदायतनसेवके ॥ ३ ॥
कृतानायतनत्यागे परदृष्टयविमोहिते ।
सासनासादनाहीने जिनशासनबृंहके ॥ ४ ॥
सोपानं सिद्धिसौधस्य कल्मषक्षपणक्षमम् ।
ज्ञानचारित्रयोर्हेतुः स्थिरं तिष्ठति दर्शनम् ॥ ५ ॥

अर्थ—ऐसे पुरुष विषै सम्यग्दर्शन निश्चल तिष्ठैहै जो स्वभावजनित रुचि जाकै अर निश्चयप्रतीति करि शोभित अर सहायरहित महाबुद्धिवान सदा आयतन जो अर्हंतादि तिनका सेवक अर किए है अनायतन कहिए कुदेवादिकका त्याग जानै अर अन्यमतीकरि विमोहितहै अर

जिनशासनकी विराधनाकरि हीनहै अर जिनधर्मका वढावने वालाहै कैसाहै सम्यग्दर्शन मोक्षमहालका सोपानहै अर पापके नाश करनेमैं समर्थहै अर ज्ञानचारित्रका कारणहै।

भावार्थ—सम्यक्त होतै सम्यग्ज्ञान सम्यक्‌चरित्र नाम पावै ऐसा है॥ ३-४-५॥

न निरस्पति सम्यक्त्वं जिनशासनभावितः।
गृहीतं वन्हिसंतप्तो लोहपिंड इवोदकम्॥ ६॥

अर्थ—जिनशासन करि भावित कहिए जानै जिनागम भाया है सो पुरुष ग्रहण किया जो सम्यक्त ताहि न छोडै है, जैसै अग्निकरि तप्त जो लोहका पिंड सो जलकौ न छोडै है॥ ६॥

दर्शनज्ञानचारित्रतपः सुविनयं परम्।
करोति परमश्रद्धस्तितीर्षुर्भववारिधिम्॥ ७॥
जिनेशानां विमुक्तानामाचार्याणां विपश्चिताम्।
साधूनां जिनचैत्यानां चिनराद्धांतवेदिनाम्॥ ८॥
कर्त्तव्या महती भक्तिः सपर्या गुणकीर्त्तनम्।
अपवादतिरस्कारः संभ्रमः शुभदृष्टिता॥ ९॥

अर्थ—उत्कृष्ट है श्रद्धान जाकै अर संसारसमुद्रकौ तिरवेकी है इच्छा जाकै ऐसा सम्यक्ती पुरुष दर्शन ज्ञान चरित्र तप इनिमैं विनय करै है। जिनदेवनिकी तथा विमुक्त कहिए सिद्धभगवाननिकी तथा आचार्यनिकी तथा जैनश्रुतके पाठकानिकी तथा साधूनिकी तथा जिनप्रतिमानिकी तथा जैनसिद्धांतके ज्ञातानिकी बडी भक्ति करणी पूजा करणी गुण गावना अपवाद दूर करना हर्ष करना शुभदृष्टिपना करना यह विनय है॥ ७-८-९॥

आगमाध्ययनं कार्यं कृतकालादिशुद्धिना ।
विनयारूढचित्तेन वहुमानविधायिना ॥ १० ॥

अर्थ—करी है कालादिककी शुद्धिता जानै ऐसा जो पुरुष ताकरि आगमका अध्ययन करना योग्य है, कैसा है सो विनयविषैं युक्त है चित्त जाका अर वहु मानका करनेवाला है ।

भावार्थ—कालादिककी शुद्धिता करि विनयसहित वहुतमानसै जिनवाणीका अभ्यास करना योग्य है ॥ १० ॥

कुर्वताऽवग्रहं योग्यं सूरिनिन्हवमोचिना ।
परमां कुर्वता शुद्धिं व्यंजनार्थद्वयस्थिताम् ॥ ११ ॥

अर्थ—सूरिनिह्नवमोची कहिए आचार्यका नाम न छिपावनेवाला अर योग्य अवग्रह कहिये प्रतिज्ञा करनेवाला अर व्यंजनशुद्धि अर्थ-शुद्धि दोऊ उत्कृष्ट करता ऐसा जो पुरुष ताकरि ज्ञानविनय करिये-है ॥ ११ ॥

संयमे संयमाधारे संयमप्रतिपादिनि ।
आदरं कुर्वतो ज्ञेयश्चारित्रविनयः परः ॥ १२ ॥

अर्थ—संयम विषै अर संयमके आधार जे मुनि तिनिविषै तथा संयमके उपदेश करनेवाले विषै आदर करता जो पुरुष ताकै उत्कृष्ट चारित्र विनय जानना योग्यहै ॥ १२ ॥

महातपः स्थिते साधौ तपः कार्ये ससंयमे ।
भक्तिमात्यंतिकीं प्राहुस्तपसो विनयं बुधाः ॥ १३ ॥

अर्थ—महातपविषै तिष्ठ्या जो साधु ताविषै अर संयमसहित तप-कार्यविषै जो अत्यंत भक्ति ताहि तपका विनय पंडितजन कहैहै ॥१३॥

सम्यक्त्वचरणज्ञानतपांसीमानि जन्मिनाम् ।
निस्तारणसमर्थानि दुःखोर्मे भवनीरधेः ॥ १४ ॥

अर्थ—ये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तपहै ते जीवनिकौ दुःखरूपहै लहर जामै ऐसा जो संसारसमुद्र तातै तारणे विषै समर्थ है ॥ १४ ॥

चतुरंगमिदं साधोः पोष्यमाणमहर्निशम् ।
सिद्धिं साधयते सद्यः प्रार्थितां नृपतेरिव ॥ १५ ॥

अर्थ—यह च्यार भेदरूप मुनिराजका आचरण निरंतर पोष्या भया शीघ्रही वाछित मोक्षकौ साधैहै जैसै राजाकी चतुरंग सेना पोषी भई वांछितसिद्धिकौ साधैहै तैसै ॥ १५ ॥

सिसाधयिषते सिद्धिं चतुरंगमृतेऽत्र यः ।
स पोतेन विना मूढस्तितीर्षति पयोनिधिम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जो मूढ दर्शन ज्ञान चारित्र तप इनि च्यार कारण विना मोक्षकौ साधे चाहैहै सो मूढ जहाजविना समुद्रकौ तिरया चाहैहै ॥१६॥

लोकद्वयेऽपि सौख्यानि दृश्यंते यानि कानिचित् ।
जन्यंते तानि सर्वाणि चतुरंगेण देहिनः ॥ १७ ॥

अर्थ—निश्चयकरि इस लोकमै अर परलोकमै जे केई सुख देखिएहै ते सर्व जीवकै दर्शन ज्ञान चारित्र तपरूप चतुरंगकरि उपजाइएहै ॥१७।

निरस्यति रजः सर्वं ज्ञेयं सूचयते हितम् ।
मातेव कुरुते किं न चतुरंगनिषेवणा ॥ १८ ॥

अर्थ—सर्व रज जो पाप ताहि दूर करैहै अर हित बतावैहै ऐसै माताकी ज्यौ दर्शन ज्ञान चारित्र तपकी सेवा कहा न करैहै, सर्वही हित करैहै ॥ १८ ॥

चतुरंगमपाकृत्य कुर्वते कर्म ये परम् ।
कल्पद्रुममपाकृत्य ते भजंति विषद्रुमम् ॥ १९ ॥

अर्थ—जे पुरुष दर्शन ज्ञान चारित्र तप इनि च्यार कारणनिकौं तागकै और क्रियाकर्म करैहै सो कल्पवृक्षकौ छोडकै विषवृक्षकौ सेवैहै।१९।

चतुरंगं सुखं दत्ते यत्तत्कर्म परं कथम्।
यत्करोति सुहृत्कार्यं तन्न वैरी कदाचन ॥ २० ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञानादि च्यार कारण जो सुख देयहै सो और कर्म सुख कैसैं देय जैसै जो मित्र कार्य करै सो वैरी कदाच नाही करै ॥ २० ॥

ये संति साधवो धन्याश्चतुरंगविभूषणाः।
विधेयो विनयस्तेषां मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ २१ ॥

अर्थ—जे धन्य साधु पुरुष दर्शन ज्ञान चारित्र तप ये च्यार अंगहीहै भूषण जिनकै ऐसेहै तिनका विनय मन वचन कायकरि करना योग्यहै ॥ २१ ॥

गुणनामनवद्यानां तदीयानामनारतम्।
चिंतनीयं पटीयोभिरूपबृंहणकारणम् ॥ २२ ॥

अर्थ—तिन साधूनके निर्मल गुणनिका निरंतर बुद्धिवाननिकरि चितवन करणा योग्यहै कैसाहै साधूनके गुणका चिंतवन धर्म बढावनेका कारणहै ॥ २२ ॥

ध्यायतो योगिनां पथ्यमपथ्यप्रतिषेधनम्।
मानसो विनयः साधोर्जायते सिद्धिसाधकः ॥ २३ ॥

अर्थ—योगीश्वरनका हितरूप अर अहितका निषेध करने वाला कार्य ताहि ध्यावता जो पुरुष ता साधुकै मोक्षका साधक मानसिक विनय होयहै ॥ २३ ॥

यश्चिंतयति साधूनामनिष्टं दुष्टमानसः।
सर्वानिष्टखनिर्मूढो जायते स भवे भवे ॥ २४ ॥

अर्थ—जो दुष्ट साधुनका अनिष्ट विचारै है सो मूढ सर्व अनिष्टनिकी खानि भव भव विषै होयहै ॥ २४ ॥

दुर्भगो विकलो मूर्खो निर्विवेको नपुंसकाः ।
नीचकर्मकरो नीचो याति दूषण चिंतकः ॥ २५ ॥

अर्थ—यतीनके दूषणका चितवन करनेवाला पुरुष है सो दुर्भग होयहै विकलांग होयहै मूर्ख होय विवेकरहित होय नपुंसक होय नीच-कर्मका करनेवाला नीच होय ॥ २५ ॥

विज्ञायेति महाप्राज्ञाः संयतानामरेपसाम् ।
संचिंतयंति नानिष्टं त्रिविधेन कदाचन ॥ २६ ॥

अर्थ—ऐसैं जानकरि महाबुद्धि हैं ते पापरहित जे मुनिराज तिनका अनिष्ट मनवचन कायकरि कदाच न चितवैहै ॥ २६ ॥

श्रवणीयमनाक्षेपं सपर्याप्रतिपादकम् ।
अनवज्ञापरं तथ्यं मधुरं हृदयंगमम् ॥ २७ ॥

अर्थ—सुनने योग्य संदेहरहित पूजाका उपजावनेवाला अर अनिं-दामै तत्पर सत्यार्थ मधुर हृदयकौ प्यारा ॥ २७ ॥

वचनं वदतः पथ्यं रागद्वेषाद्यनाविलम् ।
वाचिको विनयोऽवाचि वचनीय निखर्वकः ॥ २८ ॥

अर्थ—रागद्वेषादि करि मलीन नाहीं ऐसा हितरूप बोलता जो पुरुष ताकै वचनसंबंधी दोपनिका दूर करनेवाला वचनसंबंधी विनय जानना ॥ २८ ॥

अभ्याख्यानातिरस्कारकारकं गुणदूषकम् ।
न वाच्यं वचनं भक्तैस्तपोधनविनिंदकम् ॥ २९ ॥

अर्थ—जातै साधूनके दोष प्रगट होय ऐसा वचन तथा अनादर करनेवाला वचन तथा गुणकादूषक वचन तथा साधूनिका निंदकवचन श्रावकनि करि बोलना योग्य नाहीं ॥ २९ ॥

वदंति दूषणं दीना ये साधूनामनेनसाम् ।
ते भवंति दुराचारा दूष्या जन्मनि जन्मनि ॥ ३० ॥

अर्थ—जे अज्ञानी पापरहित साधूनके दूषण कहै है ते दुराचारी जन्म जन्म विषै दूषणकौ भजैहै ॥ ३० ॥

अनादेयगिरो गर्ह्याः क्लेशिनः शोकिनो जडाः ।
यतिनिंदापराः संति जन्मद्वितयदूषिताः ॥ ३१ ॥

अर्थ—जे पुरुष साधूनिकी निंदामैं तत्परहैं ते इस भवमैं अर परभवमैं दूषित होयहैं, नाहीं आदरने योग्य है वाणी जिनकी अर निंदने योग्य अर क्लेशसहित अर शोकवान अर अज्ञानी ऐसे होय है ॥ ३१ ॥

किं चित्रमपरं तस्माद्यदौदासीन्यचेतसाम् ।
वंदका वंदितास्तेषां निंदकाः संति निंदिताः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जातै उदासीनहै चित्त जिनका ऐसे साधूनके वंदनेवाले तैसंवनिकरि वंदनिक होयहै अर निंदक है ते निंदक होय है, तातै यामैं सिवाय आश्चर्य कहा है, किछू भी नाहीं ॥ ३२ ॥

आगै ऊपरि दार्ष्टांति कह्या ताका दृष्टांत कहैहै;—

यादृशः क्रियते भावः फलंतत्रास्ति तादृशम् ।
यादृशं चर्च्यते रूपं तादृशं दृश्यतेऽब्दके ॥ ३३ ॥

अर्थ—जैसा भाव करिए तहां तैसा फल होय है जैसै दर्पणमै जैसा रूप करिए तैसाही देखिए है ।

भावार्थ—साधु तौ वीतराग है तिनमै जैसा भक्तिरूप वा द्वेषरूप परिणाम करै तैसाही शुभ अशुभ फल पावै जैसैं दर्पण तौ निर्मलहै वामैं जैसा रूप करै तैसा ही दीखै ऐसा जानना ॥ ३३ ॥

व्रतिनां निंदकं वाक्यं विबुद्धयेति न सर्वदा।
मनोवाक्काययोगेन वक्तव्यं हितमिच्छता ॥ ३४ ॥

अर्थ—या प्रकार साधूनकी निंदामैं महापाप जानकरि हितका वांछक जो जीव ताकरि व्रतीनका निंदक मन वचन कायके योगकरि सदाकालही कहना योग्य नाहीं ॥ ३४ ॥

अभ्युत्थानासनत्यागप्रणिपातांजुलिक्रिया।
आयाते संयते कार्या यात्यनुव्रजनं पुनः ॥ ३५ ॥

अर्थ—संजमी मुनीका आगमन होतसंतै उठना आसनका त्यागना नमस्कार करना अंजुलिक्रिया कहिए हाथ जोडना क्रिया करनी योग्य है, बहुरि संजमीकौ गमन करते संतै पीछै चालना योग्यहै ॥ ३५ ॥

आयांतं ये तपोराशिं विलोक्यपि न कुर्वते।
अभ्युत्थानासनत्यागो नेभ्यः संत्यधमाः परे ॥ ३६ ॥

अर्थ—जो पुरुष आवता जो तपका समूह मुनि ताहि देखकरि भी उठबैठना अर आसनत्यागना रूप विनय नाहीं करै हैं इनतैं सिवाय और नीच कोऊ नाहीं ॥ ३६ ॥

यत्र यत्र विलोक्यंते संयतायतमानसाः
तत्र तत्र प्रणंतव्या विनयोद्यतमानसैः ॥ ३७ ॥

अर्थ—यत्नसहित है मन जिनका ऐसे संयमी मुनि जहां जहां देखिए तहां तहां विनयमैं उद्यमी है मन जिनका ऐसे पुरुषनिकरि नमस्कार करना योग्य है ॥ ३७ ॥

शय्योपवेशनस्थानगमनादीनि सर्वदा।
विधातव्यानि नीचानि संयताराधनापरैः ॥ ३८ ॥

अर्थ—संयमीनकी आराधनाविषै तत्पर जे पुरुष तिनकरि सोवनेकी शय्या अर बैठना अर खडे रहना गमनकरना इत्यादिक सदाकाल नीचे करना योग्य है।

भावार्थ—जहां महंत पुरुष विराजे होय ता स्थानतैं शय्यादिक नीचे स्थानपै करना ऊंची जगहपै न करना, ऐसा जानना ॥ ३८ ॥

पुण्यवंतो वयं येषामाज्ञां यच्छंति योगिनः।
मन्यमानैरिति प्राज्ञैः कर्तव्यं यतिभाषितम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—हम पुण्यवंत है जिनपै योगीश्वर आज्ञा करै है ऐसे मानते जे पंडित तिनकरि यतीनका कह्या करणा योग्य है।

भावार्थ—यतीश्वर आज्ञा करै सो सुबुद्धीनकौ करना योग्य है, अपने मनमै ऐसी मानना जो हम धन्यहैं जिनपै गुरुनकी आज्ञा भई ऐसै आज्ञा मे हर्ष करना, ऐसा जानना ॥ ३९ ॥

निष्ठीवनमवष्टंभं जंभणं गात्रभंजनम्।
असत्यभाषणं नर्म हास्य पादप्रसारणम् ॥ ४० ॥
अभ्याख्यानं करस्फोटं करेण करताडनम्।
विकारमंगसंस्कारं वर्जयेद्यतिसन्निधौ ॥ ४१ ॥

अर्थ—यतीनके निकट विनयवान इतने कार्य न करै, ते कार्य बतावे है;—थूंकै नाहीं अर सारा लेय प्रमादसहित न बैठै, जंभाई न लेय, अंग न तोडै, असत्य न बोलै, मजाख रागरूप हास्यवचन न बोलै, पांव न पसारै, लज्जाकौ कारण गुप्तवात प्रगट करि न कहै, हाथकी चुटकी न वजावै, हाथकरि हाथ न ताडै, विकार रूप चेष्टा न करै, अंगकौ सवारै नाहीं इत्यादि और भी प्रमादरूप आचरण महंतपुरुषनिके निकट करना योग्य नाहीं ॥ ४०-४१ ॥

उच्चस्थानस्थितैः कार्या वंदना न तपस्विनः ।
न गतिं वामतः कृत्वा विनीतैर्न च पृष्ठतः ॥ ४२ ॥

अर्थ—ऊंचे स्थानपरि तिष्ठतेनकरि तपस्वीनकी वंदना करनी योग्य नाहीं अर विनयवाननि करि वाई तरफतै गमन करकै पाछैतै वंदना करणी योग्य नाहीं ।

भावार्थ—मुनिनके दाक्षिण तरफतै प्रदाक्षिणारूप गमन करकै वंदना करणी, वाई तरफतैं जायकरि पाछैतै वंदना न करणी ॥ ४२॥

त्रिधेति विनयोऽध्यक्षः करणीयो मनीषिभिः ।
परोक्षेऽपि स साधूनामाज्ञाकरण लक्षणः ॥ ४३ ॥

अर्थ—ऐसै मन वचन काय करि तीन प्रकार प्रत्यक्ष विनय करना योग्यहै अर मुनिनकौ परोक्ष होतै तिनकी आज्ञा करणा है लक्षण जाका ऐसा परोक्ष विनय करणा योग्यहै ॥ ४३ ॥

संघे चतुर्विधे भक्त्या रत्नत्रितयराजिते ।
विधातव्यो यथायोग्यं विनयो नयकोविदैः ॥ ४४ ॥

अर्थ—नीतिविषै चतुर जे पुरुष तिनकरि रत्नत्रयकरि शोभित जो मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका ऐसा च्यार प्रकार संघ ताविषै यथा योग्य विनय करना योग्य है ॥ ४४ ॥

विनयेन विहीनस्य व्रतशीलपुरः सराः ।
निष्फलाः संति निःशेषा गुणा गुणवतां सताः ॥ ४५ ॥

अर्थ—विनय करि हीन जो पुरुष ताके व्रत शील आदि समस्त गुणहै ते निष्फल गुणज्ञानानिके कहैहै ॥ ४५ ॥

विनश्यंति समस्तानि व्रतानि विनयं विना ।
सरोरुहाणि तिष्ठंति सलिलेन विना कुतः ॥ ४६ ॥

अर्थ—सर्व व्रत है ते विनय विना नाशकौ प्राप्त होयहै जैसै जल विना कमल है ते कहां तिष्टै, अपि तु नाहीं तिष्ठैहै तैसै जानना॥ ४६॥

निर्वृतिस्तरसाऽवश्या विनयेन विधीयते।
आत्मनीनसुखाधारा सौभाग्येनेव कामिनी॥ ४७॥

अर्थ—विनय करि आत्माका हितरूप सुखकी आधारभूत जो मुक्ति अवस्था सो वेगकरि वश कीजिए है, जैसै सौभाग्य पने करि स्त्री वश कीजिए तैसै विनयकरि मुक्ति वश होयहै॥ ४७॥

सम्यग्दर्शनचारित्रतपोज्ञानानि देहिना।
अवाप्यंते विनीतेन यशांसीव विपश्चिता॥ ४८॥

अर्थ—जैसै पंडितजनकरि यश पाइएहै तैसै विनयवान पुरुषकरि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप ये पाइएहै॥ ४८॥

तस्य कल्पद्रुमो भृत्यस्तस्य:चिंतामणिः करे।
तस्य सन्निहितो यक्षो विनयो यस्य निर्मलः॥ ४९॥

अर्थ—जा पुरुषकै निर्मल विनयहै ताका कल्पवृक्ष किंकरहै अर ताके हाथविषै चिंतामणिहै अर यक्ष ताके निकटवर्त्ती है।

भावार्थ—विनयतै शुभ परिणामके वशतै पुण्यबंध होयहै ताके उदयतै सर्व कल्पवृक्षादि पदार्थ सुखदाई होय परिणमैहै॥ ४९॥

आराध्यंतेऽखिला येन त्रिदशाः सपुरंदराः।
संघस्याराधने तस्य विनीतस्यास्ति कः श्रमः॥ ५०॥

अर्थ—इंद्रनिसहित समस्त देव जा विनयवान करि आराधिएहै ताके संघके आराधनविषै कहा श्रमहै।

भावार्थ—जा विनयभावनाकरि इंद्रादिक देव चरननकी सेवा करैहै ऐसा संघका विनय करवेमै कहा खेदहै लाभही है॥ ५०॥

क्रोधमानादयो दोषाश्छिद्यंते येन वैरदाः।
न वैरिणो विनीतस्य तस्य संति कथंचन ॥ ५१ ॥

अर्थ—जा विनयवानकरि वैरभावके देनेवाले ऐसे जे क्रोधमानादिक परिणाम ते नाश कीजिएहै ताकै कोई प्रकारभी वैरी न होयहै।

भावार्थ—विनयवानतै कोई वैर राखै नाहीं ॥ ५१ ॥

कालत्रयेऽपि ये लोके विद्यंते परमेष्ठिनः।
ते विनीतेन निःशेषाः पूजिता वंदिताः स्तुताः ॥ ५२ ॥

अर्थ—लोकमै भूत भविष्यत वर्त्तमान ऐसैं तीनौ काल विषै भी जे अर्हंतादि परमेष्ठी विद्यमानहै ते समस्त विनयवान पुरुषकरि पूजे अर वंदे अर वचनकरि गोचर किये।

भावार्थ—जाकै विनयहै ताकै समस्त परमेष्ठीनकौ भक्तिहै ॥ ५२ ॥

गर्वो निखर्व्यते तेन जन्यते गुरुगौरवम्।
आर्जवं दर्श्यते स्वस्य प्रश्रयं वितनोति यः ॥ ५३ ॥

अर्थ—जो पुरुष विनयकौ विस्तारै है ता पुरुष करि आपका मानकषाय नाश कीजिए है अर गुरूनका मान उपजाइए है अर सरलभाव प्रवर्त्ताइए है ॥ ५३ ॥

विनीतस्यामला कीर्त्तिर्वभ्रमीति महीतले।
सुखयंतीजनं सेव्या कांतिः शीतरुचेरिव ॥ ५४ ॥

अर्थ—विनयवान पुरुषकी निर्मल कीर्त्ति पृथ्वीतलविषै अतिशय करि भ्रमै है सर्व जगतमै फैलै है, कैसी है कीर्त्ति लोककौ सुख उपजावती है अर चंद्रमाकी कांतिसमान निर्मल है ॥ ५४ ॥

विनयः कारणं मुक्तेर्विनयः कारणं श्रियः।
विनयः कारणं प्रीतेर्विनयः कारणं मतेः ॥ ५५ ॥

अर्थ—विनय है सो मुक्तिका कारण है अर विनय है सो लक्ष्मी-का कारण है अर विनय है सो प्रीतिका कारण है अर विनय है सो बुद्धिका कारण है ॥ ५५ ॥

विनयेन विना पुंसो न संति गुणसंपदः।
न वीजेन विना क्वापि जायंते सस्यजातयः ॥ ५६ ॥

अर्थ—जैसै वीज विना कहू भी धान्यकी जाति नाहीं उपजैहै तैसै विनयविना गुणरूप संपदा न होय है ॥ ५६ ॥

प्रश्रयेण विना लक्ष्मीं यः प्रार्थयति दुर्मनाः।
स मूल्येन विनानूनं रत्नं स्वीकर्त्तुमिच्छति ॥ ५७ ॥

अर्थ—जो दुष्टचित्त पुरुष विनय विना लक्ष्मीकौ वांछै है सो पुरु-ष निश्चय करि मोल विना रत्नकौं अंगीकार करनेकौ इच्छै है ॥ ५७ ॥

का संपदविनीतस्य का मैत्री चलचेतसः।
का तपस्या विशीलस्य का कीर्त्तिः कोपवर्त्तिनः ॥५८॥

अर्थ—विनयरहित पुरुषकी सपत्ति कहा अर चलायमान है चित्त जाका ऐसे पुरुषकी मित्रता कहा अर शीलरहित पुरुषकी तपस्या कहा अर क्रोधी पूरूपकी कीर्त्ति कहा ॥ ५८ ॥

न शठस्येह यस्यास्ति तस्यामुत्र कथं सुखम्।
न कच्छे कर्कटीयस्य गृहे तस्य कुतस्तनी ॥ ५९ ॥

अर्थ—जा पुरुषकै इस लोकमै संतोषरूप सुख नाही ताकै परलो-कमै सुख कैसैं होय जैसै जाकी वाडीमै ककड़ी नाहीं ताके घरमै काहे-की होय, अपि तु नाहीं होय ॥ ५९ ॥

लाभालाभौ विबुद्ध्येति भो विनीताविनीतयोः।
विनीतेन सदा भाव्यं विमुच्याविनयं त्रिधा ॥ ६० ॥

अर्थ—या प्रकार विनयवानकै अर विनयरहितकै लाभ अलाभ जानिकरि भो शिष्य ! मन वचन कायतै अविनयकौ त्यागकै विनयसहित होना योग्यहै ॥ ६० ॥

ऐसै विनय का वर्णन किया आगै वैयावृत्य का वर्णन करैहै;—

कृतांतैरिव दुर्वारैः पीडितानां परीषहैः ।
वैयावृत्यं विधातव्यं मुमुक्षूणां विमुक्तये ॥ ६१ ॥

अर्थ—काल समान दुःखतै निवारण जिनका ऐसे जे रोगादि परीषह तिनकरि पीडित जे मोक्षके अभिलाषी आचार्य आदि तिनका वैया वृत्य कहिए टहल चाकरी करणा योग्यहै, काहेकै अर्थि—मुक्तिके अर्थि ।

भावार्थ—लौकिक कार्यकी वाछा रहित मुक्तिहीके अर्थि वैयावृत्य करना ॥ ६१ ॥

दुर्भिक्षे मरके रोगे चौरराजाद्युपद्रुते ।
कर्मक्षयाय कर्त्तव्या व्यावृतिर्व्रतवर्त्तिनाम् ॥ ६२ ॥

अर्थ—दुर्भिक्षविषै अर मरी विषै अर रोगविषै अर चौर राजादिकतै उपसर्ग विषै करनिके नाशके अर्थि व्रतीनकी टहल चाकरी करनी योग्यहै ॥ ६२ ॥

आचार्येऽध्यापके वृद्धे गक्षरक्षे प्रवर्त्तके ।
शैक्ष्ये तपोधने संघे गणे ग्लाने दशस्वपि ॥ ६३ ॥
प्रासुकैरौषधैर्योग्यैर्मनसा वपुषा गिरा ।
विधेया व्यावृतिः सद्भिर्भवभ्रांतिजिहासुभिः ॥ ६४ ॥

अर्थ—जातै व्रतनिका आचरण करिए सो आचार्य कहिए, बहुरि जाके निकट शास्त्राध्ययन करिए सो उपाध्याय कहिए, बहुत कालके दीक्षित होय सो वृद्ध कहिए, अर गणकी रक्षा करै सो गणरक्ष कहिए,

अर संघकौ प्रवर्त्तावै सो प्रवर्तक कहिए, अर शास्त्रके सीखनेमै तत्पर होय सो शैक्ष्य कहिए अर महोपवासादिके करनेवाले तपस्वी कहिए, अर च्यार प्रकार मुनिनका समूहकौ संघ कहिए, अर वडे मुनिका संतानकौ गण कहिए अर रोगादिक करि क्लेशरूप शरीर जाका होय सो ग्लान कहिए, ऐसैं दश प्रकार मुनिनविषै सत्पुरुषनिकारि योग्य कहिए व्रतीनके लेने योग्य प्रासुक औषधनि करि तथा मन वचन काय करि टहल चाकरी करनी योग्य है कैसेहैं वैयावृत्त्य करनेवाले पुरुष संसार भ्रमणके त्याग करनेके वाञ्छक है ॥ ६३-६४ ॥

तपोभिर्दुष्करै रोगैः पीड्यमानं तपोधनम् ।
यो दृष्ट्वोपेक्षते शक्तो निधर्मा न ततः परः ॥ ६५ ॥

अर्थ—दुःख करि करे जाँय ऐसे तपनि करि रोगनिकरि पीडित जो साधु ताहि देखकर जो शक्तिसहित पुरुष उपेक्षते कहिए किछू इलाज न करैहैं देखताहि रहि जायहै ता सिवाय और अधर्मी नाहीं ॥ ६५ ॥

गृहस्थोऽपि यतिर्ज्ञेयो वैयावृत्यपरायणः ।
वैयावृत्यविनिर्मुक्तो न गृहस्थो न संयतः ॥ ६६ ॥

अर्थ—जो वैयावृत्त्य विषै तत्पर है सो गृहस्थ भी यतिसमान जानना वहुरि वैयावृत्त्यकरि रहितहै सो गृहस्थहै न मुनिहै ॥ ६६ ॥

वैयावृत्त्यपरः प्राणी पूज्यते संयतैरपि ।
लभते न कुतः पूजामुपकारपरायणः ॥ ६७ ॥

अर्थ—वैयावृत्त्यविषै तत्पर जीवहै सो संयमीन करि भी पूजिएहै, जातै उपकारविषैं परायणजे पुरुष ते किसतैं पूजा न पावै सर्व हीतै पावै ॥ ६७ ॥

संयमो दर्शनं ज्ञानं स्वाध्यायो विनयो नयः ।
सर्वेऽपि तेन दीयंते वैयावृत्त्यं तनोति यः ॥ ६८ ॥

अर्थ—जो पुरुष वैयावृत्यकौ विस्तारैहै ताकरि संयम सम्यग्दर्शन ज्ञान स्वाध्याय विनय नीति ये सर्वही दीजिएहै ।

भावार्थ—वैयावृत्य करनेतैं व्रती स्वस्थ होय तब संयमादि निर्विघ्न-सधै, तातैं जो व्रतीनकी टहल चाकरि करै ताकरि संयमादिक सर्व दिये कहिए ॥ ६८ ॥

निर्वृतिर्दीयते येन तेन धर्मो विधाप्यते ।
आगमोऽध्याप्यते तेन क्रियते तेन वा न किम् ॥ ६९ ॥

अर्थ—जा पुरुषकरि धर्मात्मा जीवनिकौ सुख दीजिएहै ता करि धर्म कराइएहै अर आगम पढाइएहै अथवा ता करि कहा उत्तमकार्य न कीजिएहै सर्वही कीजिएहै ।

भावार्थ—धर्मात्मा निराकुल होय तब धर्मसाधन करै शास्त्राध्यायन करै और भी धर्मकार्य करै जातै जो धर्मात्माकौ निराकुल करै ताकरि धर्मादिक सर्व उत्तम कार्य किए कहिए ॥ ६९ ॥

समाधीर्विहितस्तेन जिनाज्ञा तेन पालिता ।
धर्मो विस्तारितस्तेन तीर्थं तेन प्रवर्त्तितम् ॥ ७० ॥

अर्थ—जो वैयावृत्य करै है तानै समाधि जो शुभध्यान सो किया अर जिनराजकी आज्ञा पाली अर तातै धर्म विस्तारया अर तीर्थ जो रत्नत्रय सो प्रवर्त्तीया ॥ ७० ॥

दुष्प्रापं तीर्थकर्तृत्वं त्रैलोक्यक्षोभणक्षमम् ।
प्राप्यते व्यावृतेर्यस्या तस्याः किं न परं फलम् ॥ ७१ ॥

अर्थ—तीन लोककौ क्षोभ उपजावने विषै समर्थ जाके प्रभावतैं इंद्रादिकनिके आसनकंपनादि क्षोभ उपजै ऐसा तीर्थंकरपना जा वैयावृ-त्य भावनाका फल पाइए ताका और फल कहा न पाइए, सर्व ही पाइए ॥ ७१ ॥

परस्यापोह्यते दुःखं सदा येनोपकुर्वता ।
संपद्यते कथं तस्य क कार्य कारणं विना ॥ ७२ ॥

अर्थ—जिस पर उपकार करनेवाले पुरुष करि परका दुःख दूर कीजिए है ताकै दुःख कैसै होय, जातै कारण विना कार्य कैसै होय।

भावार्थ—दुःखका कारण अशुभभाव हैं सो परोपकारीकै अशुभ-भाव नाही तब आप दुःखी कैसै होय, ऐसा जानना ॥ ७२ ॥

सेव्यो दीर्घायुरादेयो नीरोगो निरुपद्रवः ।
वदान्यः सुंदरो दक्षो जायते स प्रियंवदः ॥ ७३ ॥

अर्थ—सो वैयावृत्य करनेवाला सेवने योग्य होय है दीर्घायु होयहै आदर करने योग्य होय है उपद्रवरहित होय है सुंदर अर प्रवीण अर प्रियवादी होय है ॥ ७३ ॥

स धार्मिकः स सद्दृष्टिः स विवेकी स कोविदः ।
स तपस्वी स चारित्री व्यावृत्तिं विदधाति यः ॥ ७४ ॥

अर्थ—जो वैयावृत्य करै है सो धर्मात्मा होय है सो सम्यग्दृष्टी है सो विवेकी है सो पंडित है सो तपस्वी है सो चारित्रवान है।

भावार्थ—वैयावृत्य होत संतै सर्व धर्मके अंग होय है जातै वैयावृत्य नामा तप सब तपनिका सारभूत कह्या है ॥ ७४ ॥

ऐसै वैयावृत्य तपका वर्णन किया, आगै प्रायश्चित नामा तपका वर्णन करै है;—

आश्रित्य भक्तितः सूरिं रत्नत्रितयभूषितम् ।
प्रायश्चित्तं विधातव्यं गृहीत्वा व्रतशुद्धये ॥ ७५ ॥

अर्थ—दर्शन ज्ञान चारित्ररूपी रत्नत्रय करि भूषित ऐसा जो आचार्य ता प्रति भक्तितै प्राप्त होय करि व्रतनिकी शुद्धताके अर्थि प्रायश्चित ग्रहणकरि आचरण करना योग्य है ॥ ७५ ॥

न सदोषः क्षमः कर्तुं दोषाणां व्यपनोदनम् ।
कर्दमाक्तं कथं वासः कर्दमेन विशोध्यते ।। ७६ ।।

अर्थ—सदोष पुरुष है सो दोष दूर करनेकौ समर्थ नाहीं, जैसै कीच-करि लिपटया वस्त्र कीचकरि कैसै सोधिये ।

भावार्थ—निर्दोष गुरुही दोप दूर करकै शुद्ध करै है सदोषगुरुतै दोष दूर होय नाहीं ।। ७६ ।।

दोषमालोचितं ज्ञानी सूरिरीशो व्यपोहितुम् ।
अज्ञानेन न वैद्येन व्याधिः क्वापि चिकित्स्यते ।। ७७।।

अर्थ—आलोचित कहिए शिष्यनै कह्या जो दोष·ताहि ज्ञानवान आचार्य दूर करनेकौ समर्थ है, जातै अज्ञानी वैद्यकरि रोगका इलाज कहूं न कीजिए है रोगका ज्ञाता होयगा सो इलाज करैगा ।। ७७ ।।

आलोच्यर्जुस्वभावेन ज्ञानिने संयतात्मने।
तदीयवाक्यतः कार्यं प्रायश्चित्तं मनीषिणा ।। ७८ ।।

अर्थ—संयम सहित है आत्मा जाका ऐसा ज्ञानवान जो आचार्य ताके अर्थ सरलस्वभावतै अपने दोषनिकौ कहकै तिस आचार्यके वच-नतै बुद्धिवानकरि प्रायश्चित्त करना योग्य है ।। ७८ ।।

प्रांजलीभूय कर्तव्यः सूरे रालोचनस्त्रिधा ।
विपाके दुःखदं कार्यं वक्रभावेन निर्मितम् ।। ७९ ।।

अर्थ—आचार्यसै मन वचन काय करि सरल होयकै आलोचना करनी योग्य है जातै कुटिलभाव करि किया कार्य है सो विपाकमै दुःखदाई है ।

भावार्थ—अपनें दोषनिकौ गुरूनतै कहना ताका नाम आलोचना है अर तीनौ योगनिकी सरलतातै करना कुटिलतातैं करै तौ उलटा दुःखदाई होय ।। ७९ ।।

फलाय जायते पुंसो न चारित्रमशोधितम् ।
मलग्रस्तानि शस्यानि कीदृशं कुर्वते फलम् ॥ ८० ॥

अर्थ—विना सोध्या चारित्रहै सो पुरुषके फलके अर्थ न होयहै जैसै मल जो कूडा ताकरि ग्रसे जे सस्य धान्य ते कैसै फल निपजावै, अपि तु नाही उपजावै ॥ ८० ॥

ऐसै प्रायश्चित्त का वर्णन किया, आगै स्वाध्याय नामा तप का वर्णन करैहै;—

वाचना प्रच्छनाऽऽम्नायानुप्रेक्षा धर्मदेशना ।
स्वाध्यायः पंचधा कृत्यः पंचमीं गतिमिच्छता ॥ ८१ ॥

अर्थ—पंचमी गति जो सिद्ध अवस्था ताहि इच्छता जो पुरुष ताकरि पांच प्रकार स्वाध्याय करना योग्यहै, स्व कहिए आत्माके अध्यायरूप जो पढना अथवा सु कहिए भलेप्रकार शास्त्रका अध्ययन कहिए वाचनादिक करना सो स्वाध्यायहै, सो पांच प्रकारहै—तहाँ निर्दोष ग्रंथ अर्थ उभय इनिका जो भव्यजीवनिकौ देना सिखावना सो तौ वाचनाहै, बहुरि संशयके दूर करनेकौ निर्बाधनिश्चयके पुष्ट करनेकौ ग्रंथ अर्थ उभयका प्रश्न करना सो प्रच्छनाहै जो आपकी उच्चताके अर्थ परकौ ठगनेके अर्थि नीचा पाडनेके अर्थि परकी हास्य करनेकौ इत्यादि खोटे खोटे आशयतै पूछै सो प्रच्छनातप नाही, बहुरि जिस पदार्थका स्वरूप जान्या ताका मनकै विषै वारंवार चिंतवन करना सो अनुप्रेक्षाहै, बहुरि पाठकौ शुद्ध घोकना सो आम्नायहै, बहुरि धर्मकथा आदिका अंगीकार उपदेश देना सो धर्मोपदेशहै; ऐसै पंच-प्रकार जानना ॥ ८१ ॥

तपोऽन्तरानंतरभेदभिन्ने
तपोविधौ किंचन पापहारि ।

स्वाध्यायतुल्यं न विलोक्यतेऽन्यत्
हृषीकदोषप्रशमप्रवीणम् ॥ ८२ ॥

अर्थ—अंतरंग अर वहिरंग भेदकरि भिन्न जो वारहप्रकार तपका विधान ता विषैं स्वाध्यायसमान पापकौ हरनेवाला और तप न देखिएहै, कैसाहै स्वाध्यायनामा तप इंद्रियनिका दोषं जो इष्टानिष्ट विषयनिमैं रागद्वेष करना ताके उपसमावनेमै प्रवीणहै ॥ ८२ ॥

स्वाध्यायमत्यस्य चलस्वभावं
न मानसं यंत्रपितुं समर्थः।
शक्नोति नोन्मूलयितुं प्रवृद्धं
तमः परो भास्करमंतरण ॥ ८३ ॥

अर्थ—चंचल है स्वभाव जाका ऐसा जो मन ताके रोकनेकौं स्वाध्यायविना और समर्थ नाहीं जैसै वृद्धिकौ प्राप्त भया जो अंधकार ताके नाशकौ सूर्य विना और समर्थ नाहीं तैसै ॥ ८३ ॥

यः स्वाध्यायः पापहानिं विधत्ते
कृत्वैकाग्र्यं नोपवासः क्षमस्ताम्।
शक्तः कर्त्तुं संवृतानां न कार्यं
लोके दृष्टोऽसंवृतौ दुष्टचेष्टः ॥ ८४ ॥

अर्थ—स्वाध्यायनामा तप एकाग्रपना करि जो पापकी हानि करैहै ता पापकी हानिके करनेकौ केवल उपवास समर्थ नाहीं, लोकविषैं संवर रहित अर दुष्टहै चेष्टा जाकी ऐसा पुरुष संवरसहित जीवनिके करनेयोग्य जो कार्य है ताहि करनेकौ समर्थ नाहीं।

भावार्थ—स्वाध्यायविषै संवर होयहै तातैं कर्मकी निर्जरा होयहै अर स्वाध्याय विना केवल उपवासही करै सो संवररहित दुष्टचेष्टाविषैं प्रवर्त्तै ताकै पापकी निर्जरा होय नाहीं ॥ ८४ ॥

विज्ञातनिःशेषपदार्थजातः
कर्मास्रवद्वारपिधानकारी।
भूत्वा विधत्ते स्वपरोपकारं
स्वाध्यायवर्त्ती बुधपूजनीयः ॥ ८५ ॥

अर्थ—स्वाध्यायविषै प्रवर्त्तनेवाला पुरुषहै सो जानैहै श्रुतज्ञानके बलतै सकलपदार्थ जानै अर आश्रव आवनेके द्वारजे मिथ्यात्वादिक तिनका रोकनेवाला ऐसा होयकरि आपका वा परका उपकार करैहै कैसाहै स्वाध्याय करनेवाला पुरुष पंडितनि करि पूजने योग्यहै ॥ ८५ ॥

यद्बुद्धतत्त्वो विधुनोति सद्यो
विध्वंसिताशेषहृषीकदोषः।
तपोविधानैर्भवकोटिलक्षै-
र्नूनं तदज्ञो न धुनोति कर्म ॥ ८६ ॥

अर्थ—जान्याहै वस्तुका स्वरूप जानै अर नाश कियेहैं समस्त इंद्रियनिके दोष जानै ऐसा पुरुषहै सो जा कर्मकौ निर्जरा करैहै ता कर्मकौ अज्ञानी अनेक जन्मनिकरि तपके आचरण करि भी निश्चय करि नाहीं निर्जरावैहै।

भावार्थ—निर्जरा होय है सोश्रुत ज्ञानके अभ्यासतैं भई जो विशुद्धता तातै होयहै केवल कायक्लेश तै विशेष निर्जरा होय नाहीं तातै ज्ञानाभ्यासही मुख्य है ऐसा जानना ॥ ८६ ॥

निरस्तसर्वाक्षकषायवृत्ति-
र्विधीयते येन शरीरिवर्गः।
प्ररूढजन्मांकुरशोषपूषा
स्वाध्यायतोऽन्योऽस्ति ततो न योगः ॥ ८७ ॥

अर्थ—जा स्वाध्याय करि नष्ट भई है सर्व इंद्रिय अर कषायरूप परिणति जाकी ऐसा जीवनिकासमूह कीजिएहै,

भावार्थ—विषय कषायरहित जीव कीजिएहै तातै स्वाध्यायतै न्यारा योग कहिए ध्यान नाही, ।

भावार्थ—श्रुतके अभ्यास हीतै ध्यान होयहै ज्ञान विना ध्यान नाहीं, कैसाहै स्वाध्यायतप विस्तारकौ प्राप्त भया जो संसाररूप अंकुर ताके सोषनेकौ सूर्यसमान है ॥ ८७ ॥

गुणाः पवित्राः शमसंयमाद्या
विबोधहीनाः क्षणतश्चलंति ।
कालं कियंतं दलपुष्पपूर्णा-
स्तिष्ठंति वृक्षाः क्षतमूलबंधाः ॥ ८८ ॥

अर्थ—कषायनिकी मंदतारूप शमभाव अर संयमभाव इत्यादिक जे पवित्र गुण हैं ते ज्ञानरहित क्षणमात्रमै चलायमान होयहै जैसै पत्र अर पुष्पनिकरि भरे ऐसे वृक्ष है ते नष्ट भयाहै जडका बंधान जिनका ऐसे कितनेकाल तिष्ठैहै किछू भी न तिष्ठैहै ।

भावार्थ—सब गुणनिका मूल ज्ञान है सो ज्ञानविना और गुण होय नाहीं, ऐसा जानना ॥ ८८ ॥

जानात्यकृत्यं न जनो न कृत्यं
जैनेश्वरं वाक्यमबुद्ध्यमानः ।
करोत्यकृत्यं विजहाति कृत्यं
ततस्ततो गच्छति दुःखमुग्रम् ॥ ८९ ॥

अर्थ—जिनराजके वचनकौं न जानता जो जीवहै सो न करने योग्यकौं वा करने योग्यकौ न जानैहै तातैं अकार्य जो हिंसादिक ताहि

कैरहै अर कार्य जो वैराग्यादिक ताहि तजै है तातै तीव्र दुःखकौ प्राप्त होयहै ॥ ८९ ॥

अनात्मनीनं परिहर्तुकामा
ग्रहीतुकामाः पुनदात्मनीनम्।
पठंति शश्वज्जिननाथवाक्यं
समस्तकल्याणविधायि संतः ॥ ९० ॥

अर्थ—संत पुरुपहै ते निरंतर जिनराजके वचनकौं पढैहै कैसा है जिनवचन समस्तकल्याण करणेवाला है कैसे है जिनवचनके पढनेवाले पुरुप आत्माके हितरूप नाहीं ऐसे मिथ्यात्वादिक भाव तिनके दूर करनेके वांछकहै वहुरि आपके अर्थि हित जे सम्यक्तादिभाव तिनके ग्रहण करनेके वांछक है ॥ ९० ॥

सुखाय ये सूत्रमपास्य जैनं
मूढाः श्रयंते वचनं परेषाम्।
तापच्छिदे ते परिमुच्य तोयं
भजंति कल्पक्षयकालवह्निम् ॥ ९१ ॥

अर्थ—जे मूढ जिनराजके वचनकौ त्यागकै सुखके अर्थि अन्य मिथ्यादृष्टीनिके वचन सेवै है ते ताप दूर करनेके अर्थि जलकौं छोडकै प्रलयकालके अग्निकौं सेवै है ॥ ९१ ॥

विहाय वाक्यं जिनचंद्रदृष्टं
परं न पीयूपमिहास्ति किंचित्।
मिथ्यादृशां वाक्यमपास्य नूनं
पश्यामि नो किंचन कालकूटम् ॥ ९२ ॥

अर्थ—इस लोकविषै जिनराजकरि कह्या जो वचन ता सिवाय और अमृत नाहीं अर मिथ्यादृष्टीनिके वचन विना और कालकूटविष मैं निश्चयकरि किछू नाहीं देखूं हूं ॥ ९२ ॥

बिधीयते येन समस्तमिष्टं
कल्पद्रुमेणेव महाफलेन ।
आवर्ज्यतां विश्वजनीनवृत्ति
मुक्त्का परं कर्म जिनागमोऽसौ ॥ ९३ ॥

अर्थ—जा करि महाफलसहित कल्पवृक्षकी ज्यों सर्व मनोवांछित कीजिए ऐसा यहु जिनागम सर्वलोकके हितरूप परिणति सिवाय और कार्यका वर्जन करहु ।

भावार्थ—जिनवचनके अभ्यासतैं हमारे लौकिक कार्यकी वांछा मत होउ स्वपरके उपकाररूप परिणति होउ ॥ ९३ ॥

ऐसैं स्वाध्याय नामा तपका वर्णन किया:—

परेऽपि ये संति तपोविशेषा
जिनेंद्रचंद्रोदितसूत्रदृष्टाः ।
स्वशक्तितस्ते निखिला विधेयाः
विधानतः कर्मनिकर्त्तनाय ॥ ९४ ॥

अर्थ—स्वाध्यायपर्यंत तप तौ पहले कहे अर ध्यान तप आगैं कहैंगे । बहुरि और भी जे तपके भेद सिंहनिःक्रीडितादि जिनभाषितसूत्रनैं दिखाए ते अपनी शक्तिसारू समस्तविधानपूर्वक कर्मनकी निर्जराके अर्थि करणा योग्यहै ॥ ९४ ॥

सौख्यं स्वस्थं दीयते येन नित्यं
रागावेशश्छिद्यते येन सद्यः ।

येनानंदो जन्यते याचनीय-
स्तं संतोषं कुर्वते के न भव्याः ॥ ९५ ॥

अर्थ—जाकरि निराकुल सुख नित्य दीजिएहै अर रागका उदय शीघ्र ये दिएहै अर जाकरि वाछनेयोग्य मुक्तिपदको आनंद उपजाइए है ऐसा जो संतोप सौ कौन भव्य न करै, सर्वही करै।

भावार्थ—सब तपनिमै तपका मुख्य लक्षण इच्छानिरोधहै इच्छा-निरोध अर संतोप एकहीहै तातै संतोप सब तपनिमैं प्रधानहै सोही परमतपहै, ऐसा जानना ॥ ९५ ॥

नेष्टं दातुं कोऽप्युपायः समर्थः
सौख्यं नृणामस्ति संतोषतोऽन्यः।
अंभोजानां कः प्रबोधं विधातु
शक्तो हित्वा भानुमंतं हि दृष्टः ॥ ९६ ॥

अर्थ—मनुष्यनिकौ वांछित सुख देनेकौ संतोषसिवाय और कोई भी उपाय नाही जैसै लोकमैं कमलनिके प्रफुल्लित करनेकौ सूर्यसिवाय और कोई समर्थ न देख्या तैसै संतोष विना सुख नाही ॥ ९६ ॥

विमुच्य संतोषमपास्तबुद्धिः
सुखाय यः कांक्षति कंचनान्यम्।
दारिद्र्य हानाय स कल्पवृक्षं
निरस्य गृह्णाति विषद्रुमं हि ॥ ९७ ॥

अर्थ—जो अज्ञानी सुखके अर्थि संतोपकौं त्यागकै अन्य काम-भोगादिककौ इच्छैहै सो दारिद्र्यके नाशके अर्थि संतोषकौ त्यागकै विपवृक्षकौ ग्रहण करैहै ॥ ९७ ॥

क्रोधलोभमदमत्सरशोका
धर्महानिपटवः परिहार्याः।

व्याधयो न सुखघातपटिष्ठाः
पोषयंति कृतिनः सुखकांक्षाः ॥ ९८ ॥

अर्थ—क्रोध लोभ मान मत्सर शोक इत्यादिक धर्मकी हानि करनेमैं प्रवीण जे भाव ते त्यागने योग्यहै जातै सुखके वांछक जे भाग्यवान पुरुषहैं ते सुखके नाश करनेमैं प्रवीण जे रोगतिनहि पुष्ट न करैहै।

भावार्थ—क्रोधादिभावहै ते आकुलतामयहै तातै सुखके घातकहै ते त्यागने योग्यहै अर संतोषहै सो सुखमयहै सो ही सुखार्थीनि करि सेवने योग्यहै ॥ ९८ ॥

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम्।
माध्यस्थ्यभावो विपरीतदृष्टौ
सदा विधेयो विदुषा शिवाय ॥ ९९ ॥

अर्थ—एकेंद्रियादि सर्व जीवनिविषै मंत्रीभाव कहिए कोई भी जीव दुखी मत होऊ ऐसी भावना, बहुरि सम्यग्दर्शनादि गुण सहित पुरुषनि विषैं अतिहर्ष, अर रोगादि क्लेशकरि सहित जीवहै तिनविषै करुणाभाव, अर विपरीतहै श्रद्धा जाकी ऐसे पुरुष विषैं माध्यस्थ्यभाव कहिए विपरीत पुरुषकौ देखकै विचारना जो यहु उपदेश योग्य नाहीं यापै रागद्वेष कहिकौ करना, या प्रकार च्यार भावना ज्ञानवानकरि मोक्षके आर्थि सदा करणा योग्यहै ॥ ९९ ॥

अनश्वरश्रीप्रतिबंधकेषु
प्रभूतदोषोपचितेषु नित्यम्।
विरागभावः सुधिया विधेयो
भवांगभोगेषु विनश्वरेषु ॥ १०० ॥

अर्थ—ज्ञानी जीवकरि संसार देह भोगनिविषै सदा वैराग्यभाव करणा योग्यहै, कैसे है संसार देह भोग अविनाशी लक्ष्मीके रोकनेवाले है वहुरि अनेक दोषनिकरि युक्त है विनाशीक है ॥ १०० ॥

श्रावकधर्म भजति विशिष्टं
योऽनघचित्तोऽमितगति दृष्टम् ।
गच्छति सौख्यं विगलितकष्टं
स क्षपयित्वा सकलमनिष्टम् ॥ १०१ ॥

अर्थ—जो पुरुष अमितगति कहिए अनंत है ज्ञान जाका ऐसा जो जिनराज तानै दिखाया अथवा अमितगति आचार्यनै दिखाया जो श्रवकका धर्म ताहि सेवैहै सो पुरुष सब अनिष्ठनिका नाश करकै नाहीं है कष्ट जहां ऐसा सुखरूप जो मोक्ष ताहि प्राप्त होय है, कैसाहै धर्म विशिष्ट कहिए अन्य धर्मनितै न्यारा है लक्षण जाका ऐसा है, वहुरि कैसा है सो पुरुष पापरहित है चित्त जाका ऐसा है ॥ १०१ ॥

सवैया ।

श्रावकधर्म कह्यो जिनराज यथाविधि ताहि अखंडित धारै,
सो अतिनिर्मलचित्त सुधी भवकष्ट अनिष्टसमूह निवारै ।
स्वर्गनिके सुख भोगि तथा नर होय महाव्रत भाव सम्हारै,
आतम ध्याय विभाव नसाय महासुखसागर धाम सिधारै ॥

इत्युपासकाचारे त्रयोदशः परिच्छेदः ।

इति श्री अमितगति आचार्यविरचित श्रावकाचार
विषैं त्रयोदशमां परिच्छेद

समाप्त भया ।

अथ चतुर्दशः परिच्छेद ।

आगैं द्वादश अनुप्रेक्षाका वर्णन करैहैं, तहां प्रथमही अनित्यानुप्रेक्षाका स्वरूप कहै है;—

यौवनं नगनदी स्पदोपमं
शारदांबुदविलासजीवितम् ।
स्वप्नलब्धधनविभ्रमं धनं
स्थावरं किमपि नास्ति तत्त्वतः ॥ १ ॥

अर्थ—यौवन तौ पर्वतकी नदीका चलना समानहै निरंतर चल्या जायहै, बहुरि जीवना है सो सरदकालके मेघके विलास समानहै क्षणमात्रमैं विलय जायहै, बहुरि धनहै सो स्वप्नमै पाया जो धन तासमान झूंठाहै, किछू भी निश्चयतैं थिर नाहीं ॥ १ ॥

विग्रहा गदभुजंगमालयाः
संगमा विगमदोषदूषिताः ।
संपदोऽपि विपदाकटाक्षिताः
नास्ति किंचिदनुपद्रवं स्फुटम् ॥ २ ॥

अर्थ—शरीर तौ रोगरूपी सर्पनिका घरहै अर मिलापहै सो वियोगरूपी दोषिनिकरि दूषित है, बहुरि संपदा हैं ते विपदाकरि देखीहै (सहित है), प्रगटपने किछूभी वस्तु उपद्रवरहित नाहीं ॥ २ ॥

प्रीतिकीर्त्तिमतिकांति भूतयः
पाकशासनशरासनास्थिराः ।
अध्वनीनपथिसंगसंगमाः
संति मित्रपितृपुत्रबांधवाः ॥ ३ ॥

अर्थ—प्रीति अर कीर्त्ति अर बुद्धि अर कांति अर संपदा ये सर्व इंद्रधनुपसमान अथिरहै वहुरि मित्र पिता पुत्र बांधव ये सर्व पंथीजननिका मार्ग मै संयोग होय तासमानहै सर्व शीघ्रही विछुरि जाँयहै ॥ ३ ॥

मोक्षमेकमपहाय कृत्रिमं
नास्ति वस्तु किमपीह शाश्वतम् ।
किंचनापि सहगामि नात्मनो
ज्ञानदर्शनमपास्य पावनम् ॥ ४ ॥

अर्थ—इस लोकमै एक मोक्ष सिवाय अन्य करी भई वस्तु किछू भी नित्य नाहीं, वहुरि निर्मल ज्ञान दर्शन सिवाय और किछू भी आत्माके साथ जानेवाला नाहीं, ज्ञानदर्शनही सदा: संग रहै है और शरीरादिक तौ तहांके तहांही रहै है ॥ ४ ॥

संति ते त्रिभुवने न देहिनो
ये न यांति समवर्त्तिमंदिरम् ।
शक्रचापखचिता हि कुत्र ते
ये भजंति न विनाशमंवुदाः ॥ ५ ॥

अर्थ—तीन भवनविपै ते शरीरके धारी जीव नाहीं जे यमके मंदिरकौ न जाय सवही मरणकौ प्राप्त होयहै जैसै इंद्रधनुपकरि रचे जे वादले ते ऐसे कहां है जे नष्ट न होंय, सर्वही नसै है ॥ ५ ॥

देहपंजरमपास्य जर्जरं
यत्र तीर्थपतयोऽतिपूजिताः ।
यांति पूर्णसमये शिवास्पदं
तत्र के जगति नात्र गत्वराः ॥ ६ ॥

अर्थ—जिस संसारविपैं अत्यंत पूजनीक जे तीर्थंकर देव ते भी आयुके पूर्णसमय जर्जरे देह पींजराकौ त्यागकै सिद्धालयकौं पधारे हैं

तहां इस जगतविषै और कौन जानेवाले नाहीं सर्वही परलोककौ जाय हैं ॥ ६ ॥

ऐसै अनित्यभावना कही। आगै अशरणभावनाकौ कहै है;—

यं करोति पुरतो यमराजा
भक्षणाय भुवने क्षुधितात्मा।
कानने मृगमिव द्विपवैरी
तस्य नास्ति शरणं भुवि कोऽपि ॥ ७ ॥

अर्थ—क्षुधासहित है आत्मा जाका ऐसा जमराज सो जीवकौं भक्षण करनेके अर्थि आगै करै है ता जीवका लोकविषैं कोई भी शरण नाहीं जैसै वनमैं मृगकौ सिह भक्षण करनेकौं होय तब ताकौं कोई शरण नाहीं तैसैं ॥ ७ ॥

अंतकेन यदि विग्रहभाजः
स्वीकृतस्य समपत्स्यत पाता।
रक्षितः सुखरैरमरिष्य-
न्नो तदा सुखधूनिकुरंवः ॥ ८ ॥

अर्थ—कालतैं ग्रह्या जो प्राणी ताकी मरणतैं जो रक्षा होय तौ इंद्रादिक देवनिकरि रक्षित जो देवांगनानिका समूह सो न मरता।

भावार्थ—मरणतै रक्षा होय तौ इंद्र अपनी देवांगनानिकौं न मरणे देय, तातैं मरण होते जीवकै शरण नाहीं ॥ ८ ॥

यं निहंतुममरा न समर्था
हन्यते न स परैः समवर्त्ती।
यो द्विपैर्न समदैरपि भग्नो
भज्यते हि शशकैर्न स वृक्षः ॥ ९ ॥

अर्थ—जा जमराजके हनिवेकौ देव समर्थ नाहीं सो और जीवनि-करि कैसैं हनिए,

भावार्थ—जो इंद्रादिक देव भी मरणकौ न निवारि सकै तौ और-नकी कहा कथा, जैसैं मतवारे हाथीन करि भी जो वृक्ष भग्न न भया तो सुस्सानि करि भंग कैसे कीजिए ॥ ९ ॥

स्यंदनद्विपपदातितुरंगै-
मंत्रितंत्रजपपूजनहोमैः ।
शक्यते न खलु रक्षितुमंगी
जीवितव्यपगमे म्रियमाणः ॥ १० ॥

अर्थ—रथ हाथी प्यादे घोडेनिकरि तथा मंत्र तंत्र जप पूजन होम इन करि आयुके नाश भये जो मरता जीव सो राखनेकौ समर्थ न हूजिएहै ॥ १० ॥

ये धरंति धरणीं सह शैलै-
र्ये क्षिपंति सकलं ग्रहचक्रम् ।
ते भवंति भुवने न स कश्चि-
द्यो निहंति तरसा यमराजम् ॥ ११ ॥

अर्थ—जे जीव समस्त पर्वतनिसहित पृथ्वीकौ धारैहै अर सकल ग्रहचक्रकौ क्षेपैंहैं ऐसे पुरुष तौ लोकविषैहैं परंतु सो कोई पुरुष नाहीं जो वेगकरि यमराजकौ नाश करैहै ॥ ११ ॥

यो निहंति रभसेन बलिष्ठा-
निंद्रचंद्ररविकेशवरामान् ।
रक्षको भवति कश्चन मृत्यो-
र्निघ्नतो भवभृतो न ततोऽत्र ॥ १२ ॥

अर्थ—जो यमराज वेगकरि वलवान जे इंद्र चंद्र सूर्य नारायण बलभद्र तिनहि हनैहै तातै इस लोकविषैं जीवनिका नाश करता जो यम तातै बचावनेवाला कोऊ नाहीं।

भावार्थ—अन्यमती यमकौ देव मानैहैं सो तौ मिथ्याहै अर आयु का जो पूर्ण भये दोऊ राखनेकौ समर्थ नाही, सम्यकदर्शनादिक वा अरहंतादिक शरणहै जातै वस्तुका स्वरूप जाने मरणका भय रहै नाहीं, अर सिद्धपद पावै तहां फेर मरण होय नाहीं, तातै पर कोऊ शरण नाही आपका आपही शरणहै॥ १२॥

या प्रकार अशरण भावना कही, आगै संसार भावनाकौं कहैहै;—

चित्रजीवाकुलायां तनूभागिना।
कुर्वता चेष्टितं सर्वदा मोहिना।
गृह्णता मुंचता विग्रहं संसृतौ
नर्तकेनेव रंगक्षितौ भ्रम्यते॥ १३॥

अर्थ—इस मोही जीवकरि एकेंद्रियादि नाना जीवनिकरि भरी नृत्य करनेकी भूमिसमान जो यह संसारपरिणति ताविषै नटवा की ज्यौं भ्रमिएहै कैसाहै संसारी जीव सदा अनेक चेष्टा करैहै अर शरीरकौं ग्रहण करैहै अर छोडैहै॥ १३॥

श्वसति रोदिति सीदति खिद्यते
स्वपिति रुष्यति तुष्यति ताम्यति।
लिखति दीव्यति सीव्यति नृत्यति
भ्रमति जन्मवने कलिलाकुलः॥ १४॥

अर्थ—पापकर्मकरि व्याकुल यहु जीव संसारवनविषै भ्रमैहै, उच्छ्वास लेयहै, रोवैहै, पीडित होयहै, खेदाखिन्न होयहै, सोवैहै, रोष करैहै, राग-

करैहै, तप्तायमान होयहै, लिखैहै, क्रीडा करैहै, व्यवहार करैहै, सीवैहै, नृत्य करैहै, या प्रकार अनेक चेष्टा करैहै ॥ १४ ॥

जनकस्तनयस्तनयो जनको
जननी गृहिणी गृहिणी जननी।
भगिनी दुहिता दुहिता भगिनी
भवतीति बतांगिगणो बहुशः ॥ १५ ॥

अर्थ—पिता पुत्र होयहै पुत्र पिता होयहै माता स्त्री होयहै स्त्री माता होयहै बहण पुत्री होयहै पुत्री बहण होयहै सो बडे खेदकी बातहै यहु जीव पूर्वोक्तप्रकार अनेकबार भ्रमैहै ॥ १५ ॥

कलिलजालवशः स्वयमात्मनो
भवति यत्र सुतो निजमातरि।
किमपरं बत तत्र निगद्यते
विविधदुःखखनौ जननार्णवे ॥ १६ ॥

अर्थ—जा संसारसमुद्रविषै पापके समूहकरि वश भया संता जीव आप आपका पुत्र अपनी माताके गर्भविषै होय बडे खेदकी बातहै, ता संसार विषै और और व्यवस्था कहा कहिए, कैसाहै भवसमुद्र नानादुःखनिके उपजायवेकी खानिहै ॥ १६ ॥

किमपि वेत्ति शिशुर्न हिताहितं
विरहदुःखमुपैति युवा परम्।
विकलतां भजते स्थविरस्तरां
भवति शर्म कदा बत संसृतौ ॥ १७ ॥

अर्थ—अहो संसारविषै सुख कब होयहै बालक तौ किछु हिताहितकौं न जानैहै, बहुरि जवान तीव्र कामके दुखकौ प्राप्त होयहै बहुरि

बूढाहै सो अतिशयकरि विकलताकौं भजैहै शक्तिरहित होजायहै इच्छा बढजायहै ऐसै सुख कोई अवस्थामें नाही, दुःखहीहै ॥ १७ ॥

न सोऽस्ति संबंधविधिर्जगत्त्रये
समं समस्तैरपि देहधारिभिः ।
अवापि यो न भ्रमता भवार्णवे
शरीरिणा कर्मनियंत्रितात्मना ॥ १८ ॥

अर्थ—तीन लोकविषै सो संबंधका विधान नाहीं जो जीव नै समस्त देहधारीनकरि सहित अनेकवार न पाया, कैसाहै जीव संसारसमुद्रविषै भ्रमताहै अर कर्मनिकरि वंध्याहै आत्मा जाका ऐसाहै ॥ १८ ॥

यत्र चित्रैर्विवर्त्तैः परावर्त्यते
कर्मणानारतं भ्रम्यमाणो जनः ।
दुःसहं दुर्वचं मानसं कायिकं
तत्र दुःखं न किं संसृतावश्नुते ॥ १९ ॥

अर्थ—जिस संसारसमुद्रविषै कर्म करि निरंतर भ्रमाया ऐसा जो जीव सो नानाप्रकार पर्यायनिकरि उलट पलट कीजिएहै ता संसार-विषैं दुर्वचनसंबंधी मनसंबंधी शरीरसंबंधी दुःसह दुःख कहा न भोगिए है, भोगिएहीहै। ऐसा संसारका स्वरूप जाणि मोक्षका यत्न करणा ॥ १९ ॥

या प्रकार संसार भावना कही। आगैं एकत्व भावनाकौं कहैं है;—

देहबांधवनिमित्तमंगिना
पापकर्म विविधं विधीयते ।
एककेन वृहति विषह्यते
नारकीं गतिमुपेयुषा व्यथा ॥ २० ॥

अर्थ—शरीर अर वंधुजननिके पोपणेके अर्थि जीवकरि पापकर्म नानाप्रकार कीजिएहै वहुरि ताके फलतै नरकगतिकौ प्राप्तभया एक आप ताकरि ही पीडा सहिए है शरीर कुटुंबादिक कोऊ भेला होय नाहीं ॥ २० ॥

पद्मपत्रनयना मनोरमाः
कारयंति दुरितं दुरुत्तरम् ।
दुर्गतिं विकटदुःखसंकटा
मेककस्य शरणं न गच्छतः ॥ २१ ॥

अर्थ—कमलके पत्र समानहै नेत्र जिनके ऐसी मनकौ रमावनेवाली जे स्त्री है ते दुस्तर पापकौ करावै है वहुरि दुःखनिकरि व्याप्त जो दुर्गति ता प्रति अकेले जानेकौ शरण कोऊ नाहीं ॥ २१ ॥

मातृतातसुतदारबांधवाः
सर्वदा मम मुधेति तप्यते ।
कर्म पूर्वमपहाय विद्यते
नात्र कोऽपि सुखदुःखकारकः ॥ २२ ॥

अर्थ—माता पिता पुत्र स्त्री वांधव ये सदा मेरे है ऐसी मानि-करि सदा खेद करैहै वहुरि पूर्व कर्म विना इस लोक विपै सुखदुःखका करनेवाला कोऊ नाहीं ॥ २२ ॥

वेदनां गतवतः स्वकर्मजा–
मत्र यो न विदधाति किंचन ।
किं करिष्यति परत्र यत्नतो
देहजादिनिवहःस पालितः ॥ २३ ॥

अर्थ—जो पाल्या पोष्या ऐसा पुत्रादिकनिका समूह सो अपने कर्मोदयतै उपजी जो रोगादिककी वेदना ताकौ प्राप्त भया जो जीव

ताका इस लोकमै उपाय करि किछू न करै है सो परलोकविषैं कहा करैगा, किछू भी करैगा नाहीं ॥ २३ ॥

एकको भ्रमति जन्मकानने
यति निर्वृतिनिवासमेककः ।
एककः श्रयति दुःखमेककः
शर्म याति न परोऽस्य विद्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—यह जीव संसारवन विषैं एकला भ्रमैहै बहुरि मोक्ष धामकौं एकला जाय है बहुरि दुःखकौं अकेला भोगै है सुखकौ अकेला प्राप्त होय है, इसका दूजा साथी नाहीं ॥ २४ ॥

जन्ममृत्युरतिकीर्त्तिसंपदा—
मेकको भवति भाजनं सदा ।
नास्ति कोऽपि सचिवः शरीरिणो
द्रव्यमुक्तिमपहाय तत्त्वतः ॥ २५ ॥

अर्थ—जन्म मरण प्रीति यश संपदा इनका भाजन सदा अकेला-हीहै जन्मदिककौं अकेला ही पावैहै, निश्चयतैं मोक्ष अवस्था विना जीवका साथी कोऊ नाहीं ॥ २५ ॥

ऐसै एकत्व भावनाका वर्णन किया। आगैं अन्यत्व भावनाकौं कहैहैं;—

अनादिरात्माऽनिधनः सचेतनो
विधायकः कर्मफलस्य भोजकः ।
हिताहितादानविमोक्षकोविद
स्ततः शरीरं विपरीतमात्मनः ॥ २६ ॥

अर्थ—आत्मा अनादि है अनंत है चेतनसहित है कर्ताहै कर्मफल-का भोक्ता है हितका ग्रहण करनेवाला अहितका त्यागनेवाला है तातै ज्ञानस्वरूप आत्मातै शरीर विपरीत है।

भावार्थ—शरीर नवीन उपज्या है विनाशीकहै जडहै ताहीतैं कर्म-का कर्त्ता नाहीं अर भोक्ता नाहीं अर हित अहितका ग्रहण करनेवाला नाहीं, ऐसै आत्माका अर शरीरका लक्षण न्यारा है एक नाहीं ॥ २६ ॥

सदापि यो यत्नशतैः प्रपाल्यते
न यत्र कायोऽपि निजः स देहिनः।
परः स्वकीयं किमु तत्र विद्यते
प्रवर्त्तते यत्र ममेति मोहितः ॥ २७ ॥

अर्थ—जिस संसार विषैं जो शरीर अनेक उपायनिकरि सदाही पालिएहै सो शरीर भी जीवकै आपका नाही तहां और वस्तु आपकी कैसैं होय जहां यहु मोहित भया "ये वस्तु मेरीहै" ऐसै प्रवर्त्तैहै ॥२७॥

विमुच्य जंतोरुपयोगमंजसा
न दर्शनज्ञानमयं निजं परम्।
परत्र सर्वत्र ममेति शेमुषी
प्रवर्त्तते मोहपिशाचनिर्मिता ॥ २८ ॥

अर्थ—जीवका दर्शनज्ञानमय उपयोग विना निश्चयतैं और परप-दार्थ आपका नाहीं, बहुरि सर्व पदार्थ विषै ये मेरहै ऐसी बुद्धि मोह-रूप पिशाचकरि करी भई प्रवर्त्तैहै ॥ २८ ॥

भवंति ये कार्मणयोगसंभवाः
परेऽत्र भावा वपुरात्मजादयः।
विहाय ते दुःख परंपरां परां
परं न किंचिद्विपरीतमीशते ॥ २९ ॥

अर्थ—इस लोक विषै कर्मनिके संयोगतै निपजे शरीर पुत्रादिक जें पदार्थहै ते केवल दुःखकी परंपराय विना और किछू दुःखतै विपरीत जो सुख ताहि करवे समर्थ नाहीं।

भावार्थ—शरीरादिक परपदार्थमै आपाकी बुद्धिहै सो दुःखहीका कारणहै सुखका कारण नाहीं ॥ २९ ॥

अनात्मनीना भवदुःखहेतवो
विनश्वराः कर्मभवा यतोऽखिलाः।
ततो न वाह्येषु विशुद्धबुद्धयो
ममेति बुद्धिं मनसाऽपि कुर्वते ॥ ३० ॥

अर्थ—जातैं कर्मणके उदयतै भये समस्त शरीरादिक पदार्थहैं ते आत्माके अर्थि हितरूप नाही अर संसार दुःखके कारण हैं अर विनाशीक हैं तातैं वाह्य पदार्थनिविषैं "यह मेरेहै" ऐसी बुद्धिकौं मन करि भी न करैहैं ॥ ३० ॥

न विद्यते यत्रकलेवरं निजं
स्वकीयबुद्धया मनसि व्यवस्थितम्।
तदीयसंबंधभवाः सुतादयः
परे कथं तत्र निजा निगद्यताम् ॥ ६१ ॥

अर्थ—जहां आपकी बुद्धिकरि मनविषै तिष्ठया जो शरीर सो आपका नाहीं तहां ता शरीरके संबंधतैं उपजे जे अन्य पुत्रादिक ते कहो? आपके कैसै होय ॥ ३१ ॥

करोति वाह्येषु ममेति शेमुषीं
परेश्वयं यावदनर्थकारिणीम्।
न निर्गमस्तावदमुष्य संसृते-
रिति त्रिधा सा विदुषा विमुच्यताम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—जहां ताईं बाह्य पर पदार्थनि विषैं ये मेर है ऐसी अनर्थ करने वाली बुद्धिहै तहां ताईं इस जीवका संसारतैं निकसना नाहीं इस कारणतैं सो बुद्धि मन वचन काय करि त्यागना ॥ ३२ ॥

ऐसै अन्यत्वभावना कही। आगै अशुचित्वभावनाकौ कहैंहै;—

क्षणादमेध्याः शुचयोऽपि भावाः
संसर्गमात्रेण भवंति यस्य।
शरीरतः संततिपूतिगंधे-
स्ततः परं किंचन नास्त्यचौक्ष्यम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—जा शरीरके संसर्गमात्र करि क्षणमात्रमै पवित्र पदार्थ भी अपवित्र होयहैं तातै निरंतर दुर्गंधरूप जो शरीर तातै अन्य किछू अपवित्र नाहीं ॥ ३३ ॥

वहुप्रकाराशुचिराशिपूर्ण
शुक्रासृजाते शुचिता क्व काये।
अमेध्यपूर्णः किममेध्यकुंभो
दृष्टो हि मेध्यत्वमुपाददानः ॥ ३४ ॥

अर्थ—अनेक प्रकार विष्टादिक अपवित्र वस्तुनि करि भरया अर वीर्य अर रुधिरतै उपज्या ऐसा जो शरीर ताविषै पवित्रता कहूं नाहीं, जातैं विष्टा करि भरया अपवित्र कुभ पवित्रताकौ धारता कहूं देख्या नाहीं ॥ ३४ ॥

मज्जास्थि मेदोमलमांसखानिं
विगर्हणीयं क्रिमिजालगेहम्।
देहं दधानः शुचिताभिमानं
मूर्खो विधत्ते न विशुद्धबुद्धिः ॥ ३५ ॥

अर्थ—मज्जा अर हाड अर मेद अर मल विष्टादिक इनके उपजनेकी खानि अर निंदने योग्य अर कीडानिके समूहका घर ऐसा जो देह ताहि धारता संता पवित्रपनेका अभिमान मूर्ख धारै है, निर्मल बुद्धि न धारै है॥ ३५॥

स्रवन्नवस्रोतृविचित्रगूथं
यो वारिणा शोधयते शरीरम्।
अङ्गाय दुग्धेन निघृष्य मन्ये
विशुद्धमंगारमसौ विधत्ते॥ ३६॥

अर्थ—जो झरै है नव द्वारनितै नाना प्रकार मल जातैं ऐसा जो शरीर ताहि जल करि पवित्र करै है सो मै ऐसा मानूं हूं ये कोयलाकौ दूध तै घिसकै जलदी विशुद्ध करै है॥ ३६॥

न हन्यते तेन जलेन पापं
विवर्द्धयते येन विवर्द्धय रागम्।
यद्यस्य वर्णप्रभवे समर्थं
तत्तस्य दृष्टं न विनाशकारि॥ ३७॥

अर्थ—जा जलकरि रागादिभाव बढाय करि हिंसादिक पाप वढाइए है ता जलकरि पाप कैसे नाश कीजिए, जातै जो वस्तुका वर्ण उपजायवे विषै समर्थ है सो ताका नाश करनेवाला न देख्या॥ ३७॥

विनाश्यते चेत्सलिलेन पापं
धर्मस्तदानीं क्रियते किमर्थम्।
आरोहणं कोऽपि करोति वृक्षे
फले हि हस्तेन न लभ्यमाने॥ ३८॥

अर्थ—जो जलकरि पाप नाशिए तौ तपश्चरणादि धर्म काहेके अर्थि करिए जातै हाथमै फल आये संते कोई वृक्षपै चढै नाहीं॥ ३८॥

माघेन तीव्रः क्रियते शशांको
ग्रीष्मेण भानुर्यदिनाम शीतः।
देहस्तदानीं पयसा विशुद्धो
विधीयते दुर्वचगूथयूथः॥ ३९॥

अर्थ—जो माघ मासकरि चंद्रमा तप्त कीजिए अरग्रीष्मकरि सूर्य शीतल कीजिए तौ जलकरि शरीर विशुद्ध कीजिए कैसाहै शरीर निंदनीक विष्टादिक मलका पुंजहै॥ ३९॥

सज्ज्ञान सम्यक्तचरित्रतोयै-
र्विगाह्यमानैर्मनसाऽपि जीवः।
विशोध्य मानस्तरसा पवित्रै-
र्न शुद्धिमभ्येति भवांतरेऽपि॥ ४०॥

अर्थ—मन करि भी अवगाहे जे सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यकचारित्ररूप पवित्र जल तिनकरि शीघ्र निर्मल किया जो जीव सो जन्मांतर विषै भी अशुद्धिताकौं प्राप्त नाहीं होयहै।

भावार्थ—जलादि परद्रव्यनितैं मिथ्यादृष्टी शुद्धिता मानैहै सो मिथ्याहै तातैं जीव तौ सम्यग्दर्शनादि आत्मपरिणामहीतैं शुद्ध होयहै॥ ४०॥

ऐसै अशुचि भावना कही। आगै आश्रवभावनाका कहैहैं:—

रंध्रैरिवांबुविततैरुदधौ तरंडे
जीवे मनोवचनकायविकल्पजालैः।
जन्मार्णवे विशति कर्म विचित्ररूपं
सद्यो निमज्जनविधायि सुदुर्निवारम्॥ ४१॥

अर्थ—जैसै समुद्रमै नाव विषैं विस्ताररूप छिद्रनिकरि जल प्रवेश करैहै तैसै संसारसमुद्रविषैं मन वचनकायके विकलपजालतैं नानाप्रकार

कर्म आश्रवैहैं ताकरि जीव दुःखकरि निवारण करने योग्य जलदी डूबनेकौ प्राप्त होयहै ॥ ४१ ॥

चित्रेण कर्मपवनेन नियोज्यमानः
प्राणिप्लवो बहुविधोऽसुखभांडपूर्णः ।
संसारसागरमसारमलभ्यपारं
भूरिभ्रमं भ्रमति कालमनंतमानम् ॥ ४२ ॥

अर्थ—तीव्र मंदादि भेदनिसहित नानाप्रकार जो कर्मपवन ताकरि प्रेरया भया यह जीवरूप नौका संसारसमुद्रविषै अनंतकाल भ्रमैहै कैसाहै जीवरूपी नाव नानाप्रकार दुःखरूप भांडनि करि भरयाहै बहुरि कैसाहै संसारसमुद्र असारहै जामै आत्महित नाहीं बहुरि नाहीं पावने योग्यहै पार जाका ऐसा अपारहै अर बहुतहैं भौंर जा विषैं ऐसाहै ॥ ४२ ॥

कर्मादधाति यदयं भविनः कषायः
संसारदुःखमविधाय न तद्व्यपैति ।
यद्वंधनं हि विदधाति विपक्षवर्ग
स्तन्नाम कस्य विरचय्य सुखं प्रयाति ॥ ४३ ॥

अर्थ—जो यहु कषायभाव जीवकै कर्मबंध करैहै सो कर्मबंध दुःख दिये विना नाश नाहीं होयहै जैसै वैरीनिका समूह जो बंधन बाधै है सो बंध कौनकौ सुख करिकै जाय है दुःख करिकै ही जाय है ।

भावार्थ—कषायकरि वंध्या जो कर्म ताका छूटना महाकठिन है तामै मुख्य आश्रवका कारण जो कषाय सो करणा योग्य नाहीं ॥४३॥

भेदाः सुखासुखविधानविधौ समर्था
ये कर्मणो विविधवंधरसा भवंति ।

जंतोः शुभाशुभमनः परिणामजन्या
स्तैर्भ्रम्यते भववने चिरमेष भीमे ॥ ४४ ॥

अर्थ—जीवके नानाप्रकार जे चित्तके परिणाम तिनकरि उपजे जे सुख दुःख करनेकी विधिविषै समर्थ नानाप्रकार बंधके अनुभागभेद तिन करि यहु जीव भयंकर संसारवन विषै वहुत काल भ्रमाइए है।

भावार्थ—कर्मनिका तीव्र मद अनुभाग तीव्र मंद कषायतै होय है ताकरि जीव नरकादि पर्यायनिमै भ्रमै है ॥ ४४ ॥

गृह्णाति कर्म सुखदं शुभयोगवृत्त्या
दुःखप्रदायि तु यतोऽशुभयोगवृत्त्या ।
आद्या सुखार्थिभिरतः सततं विधेया
हेया परा प्रचुरकष्टनिधानभूता ॥ ४५ ॥

अर्थ—जातै शुभयोगकी परणति करि जीव सुखदायक कर्मका ग्रहण करैहै वहुरि अशुभयोगकी परिणति करि दुःखदायक कर्मका ग्रहण करैहै, इस कारणतै सुखके अर्थी जे जीव तिनकरि आदिकी जो शुभपरणति सो निरतर करणी योग्य है वहुरि प्रचुर दुःखके निधान-समान जो अशुभयोगकी परणति सो त्यागनी योग्य है ॥ ४५ ॥

एकप्रकारमपि योगवशादुपेतं
कुर्वंति कर्म विविधं विविधाः कषायाः ।
एकस्वभावमुपगस्य जलं घनेभ्यः
प्राप्य प्रदेशमुपयाति न किं विभेदम् ॥ ४६ ॥

अर्थ—योगनिके वशकरि एक प्रकार ग्रहण किया भी कर्म कषाय नाना प्रकार करै है।

भावार्थ—योगद्वार समयप्रवद्ध ग्रहण कियौ सो तौ एक प्रकारही है परंतु जैसा तीव्र मंद कषाय होय तैसाही नानाप्रकार तीव्र मंद शक्ति

लिये होय है जैसै मेघनितै जलहै सो एकस्वभावकौ प्राप्त होयके निंब आदि प्रदेशकौ प्राप्त होय करि कहा विचित्र भेदकौ नाहीं प्राप्त होय है, होयही है ॥ ४६ ॥

मिथ्यात्वदौर्वृत्त्यकषाययोग-
प्रमाददोषा विविधप्रकाराः ।
कर्माश्रवाः संति शरीरभाजां
जलाश्रवा वा सरसां प्रवाहाः ॥ ४७ ॥

अर्थ—मिथ्यात्व अर अविरत अर कषाय अर योग अर प्रमाद ये दोषस्वरूप नाना प्रकार जीवनिकै कर्माश्रवके कारण है, जैसै सरोवरनिके जलके आश्रवके कारण प्रवाह है तैसै ।

भावार्थ—मिथ्यात्वादिक भाव कर्मबंधके कारण है, तातै इनकौं त्यागना, यहु तात्पर्य है ॥ ४७ ॥

संवरणं तरसा दुरिताना-
माश्रवरोधकरेषु नरेषु ।
आगमनस्य कृते हि निरोधे
कुत्र विशंति चलानि सरः सु ॥ ४८ ॥

अर्थ—मिथ्यात्वादिक आश्रवनिकौ जे सम्यक्त्वादि भावनि करि रोकनेवाले पुरुषहै तिनकै शीघ्र कर्मनिका रुकना रूप संवर होयहै जैसै जलनिके आवनेका द्वार रोके संतै सरोवरनिविषैं जल कहांतैं आवै कहूंतैं भी न आवै है ॥ ४८ ॥

नश्यति कर्म कदाचन जंतोः
संवरणेन विना न गृहीतम् ।
शुष्यति कुत्र जलं हि तडागे
संगमने वहुधाऽभिनवस्य ॥ ४९ ॥

अर्थ—जीवकै ग्रहण किया भया जो कर्म है सो संवर विना कदाच नाश न होयहै, जैसैं सरोवरविषै बहुत प्रकार नवीन जलका आगम होतसंतैं जल कहातैं सूखै, अपि तु नाहीं सूखै है तैसै जानना ॥ ४९ ॥

योगनिरोधकरस्य सुदृष्टे-
रस्तकषायरिपोर्विरतस्य।
यत्नपरस्य नरस्य समस्तं
संवृतिमृच्छति नूतनमेनः ॥ ५० ॥

अर्थ—मन वचन कायका रोकनेवाला अर सम्यग्दृष्टि अर नाश कियेहै कषाय वैरी जानैं अर हिंसादिकतै विरक्त अर यत्नाचारमै तत्पर ऐसा जो पुरुष ताकै समस्त नवीन कर्म रुकै है।

भावार्थ—मिथ्यात्वादिके प्रतिपक्षी जे सम्यक्त्वादि भाव तिनकरि संवर होय है ॥ ५० ॥

धर्मधरस्य परीषहजेतु—
र्वृत्तवतः समितस्य सुगुप्तेः।
आगमवासितमानसवृत्तेः
संगतिरस्ति न कर्मरजोभिः ॥ ५१ ॥

अर्थ—उत्तम क्षमादि दश प्रकार धर्मका धरनेवाला अर क्षुधादि परीषहनिका जीतनेवाला अर सामायिकादि चारित्रका धारी अर यत्ना चार रूप समितिनिकरि युक्त अर भले प्रकार योगनिका निग्रहरूप है गुप्ति जाकै ऐसा जो पुरुष ताकै कर्मरूपी रजनि करि संगति नाहीं होय है।

भावार्थ—इनिके होतसंतै द्रव्यसंवर होय है, ऐसा जानना ॥५१॥

दर्शनबोधचरित्रतपोभि—
श्चेतसि कल्मषमेति न जुष्टे।
शूरतरैः पुरुषैः कृतरक्षे
शत्रुबलं विशति क्क पुरे हि ॥ ५२ ॥

अर्थ—दर्शन ज्ञान चारित्र तप इनकरि सहित जो चित्त ता विषैं पापकर्म नाहीं प्राप्त होय है जैसैं शूरवीर पुरुषनिकरि करी है रक्षा जाकी ऐसा जो नगर ताविषैं शत्रुकी सेना कहां प्रवेश करै, अपि तु नाहीं करै है ॥ ५२ ॥

पातकमाश्रवति स्थिररूपं
संभृतिमात्मवतां न यतीनाम्।
वर्मधरान्न नरान् रणरंगे
क्कापि भिनत्ति शिलीमुखजालम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—स्थिररूप आत्माका अनुभव करते जे आत्मज्ञानी यतीश्वर तिनके कर्म नहीं आश्रवैहै जैसैं रणभूमिविषैं वक्त वकतरके धरनेवाले पुरुष तिनहि बाणानिका समूह कहूं भी भेदै नाहीं ॥ ५३ ॥

कामकषायहृषीकनिरोधं
यो विदधाति परैरसुसाध्यम्।
केवललोकविलोकितलोको
याति स मुक्तिपुरीं दुखापाम् ॥ ५४ ॥

अर्थ—ज्यो पुरुष काम अर कषाय अर इंद्रिय इनिका निरोध करै है सो पुरुष मुक्ति पुरीकौं प्राप्त होय है, कैसा है कामादिकका निरोध और सामान्य पुरुषनि करि असाध्य है, बहुरि कैसा है वह पुरुष केवलज्ञानरूपी प्रकाश करि देख्या है लोक जानैं कैसी है मुक्तिपुरी दुःख

करि है पावना जाका बडे बडे मुनीश्वर जाके आर्थ खेद करै है तौ भी न पावै है।

भावार्थ—जे कामादिकका संवर करैहै ते केवली होय मुक्तिपुरीकौ पावै है इस विना कोटि कष्टतै भी मुक्ति न होय है ऐसा तात्पर्य है ॥ ५४ ॥

दृढीकृतो याति न कर्मपर्वतः
शरीरिणां निर्जरया विना क्षयम्।
न धान्यपुंजः प्रलयं प्रपद्यते
व्ययं विना क्वापि विवर्द्धितश्चिरम् ॥ ५५ ॥

अर्थ—जीवनीकै दृढ किया जो कर्मरूपी पर्वत सो निर्जरा विना क्षयकौ प्राप्त न होय है जैसै वहुत कालतै वृद्धिकौ प्राप्त किया जो धान्यका समूह सो खरच करे विना कहूं भी नाशकौ प्राप्त न होय है तैसै।

भावार्थ—जितना कर्म वंधै तितना ही उदय देय खिरै तौ अनादिकालके संचयरूप कर्म नसै नाही, वहुरि जब तपश्चरणादिकतै अनेक कालके वांधे कर्म एककालमै खिपै तव कर्मका नाश होय तातै तपश्चरणादिकमै प्रवर्त्तना योग्यहै, यहु तात्पर्यहै ॥ ५५ ॥

निरंतरानेकभवार्जितस्य या
पुरातनस्य क्षतिरेकदेशतः।
विपाकजापाकजभेदतो द्विधा
यतीश्वरास्तां निगदंति निर्जराम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—निरंतर अनेक भवनि विषै उपार्ज्या जो कर्म ताकी एकदेश जो हानि ताहि यतीश्वर निर्जरा कहैहै सो निर्जरा सविपाक अविपाक भेदतैं दोय प्रकारहै ॥ ५६ ॥

आगैं सविपाक निर्जराका स्वरूप कहैहै;—

अनेहसा या कलिलस्य निर्जरा
विपाकजां तां कथयंति सूरयः ।
अपाकजां तां भवदुःखखर्विणीं
विधीयते या तपसा गरीयसा ॥ ५७ ॥

अर्थ—जो अपनी स्थिति पूर्ण रूप उदय काय करि कर्मकी निर्जरा है तहि आर्य है ते विपाकजा निर्जरा कहैहै, बहुरि जो उग्र तपश्चरण-करि करिएहै ताहि संसार दुःखकी नाश करने वाली अपाक निर्जरा कहैहैं ॥ ५७ ॥

विपाकजायामुदितस्य कर्मणो
मता परस्यामखिलस्य विच्युतिः ।
यतो द्वितीयाऽत्र ततो विधानतः
सदा विधेया कुशलेन निर्जरा ॥ ५८ ॥

अर्थ—जातै सविपाकजा निर्जरा विषैं तौ उदयकौ प्राप्त भया जो कर्म ताकी हानि होयहै बहुरि अविपाकजाविषै उदय आया अर विना उदय आया ऐसा सर्वही कर्मका नाश होयहै तातै प्रवीण पुरुष करि दूसरी जो अविपाकनिर्जरा सो तपश्चरणादिविधानतैं सदा करणी योग्यहै ॥ ५८ ॥

तपोभिरुग्रैः सति संवरे रजो
निषूद्यमानं सकलं पलायते ।
निराश्रवं वारि विवस्वदंशुभि
र्न शोष्यमाणं सरसोऽवतिष्ठते ॥ ५९ ॥

अर्थ—आगामी कर्मनिका संवर होतसंतै उग्र तपश्चरण करि नाश किया जो कर्म सो समस्त नाशकौ प्राप्त होयहै जैसैं नवीन

जलके आश्रवरहित जो सरोवरका जल सो सूर्यकी किरणानि करि सोष्या भया न तिष्ठैहै तैसै जानना ॥ ५९ ॥

परेण जीवस्तपसा प्रतापितो
विनिर्मलत्वं रभसा प्रपद्यते ।
सुवर्णशैलस्य मलोऽवतिष्ठते
प्रताप्यमानस्य कृशानुना कथम् ॥ ६० ॥

अर्थ—उत्कृष्ट तप करि तपाया जो जीवहै सो शीघ्र निर्मल पनेकौ प्राप्त होय है जैसै अग्निकरि तपाया जो सुवर्णका गद्दा ताकै मैल कैसै तिष्टै, अपि तु नाही तिष्टै है ।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञानादिकतै जीवका मलिनभाव मिटै तब सिद्ध पदकौ प्राप्त होय तातै सम्यग्दर्शनादि आराधना योग्यहै ॥ ६०

ऐसै निर्जरा भावना कही । आगै लोकभावनाकौ कहै है;—

व्योममध्यगमकृत्रिमं स्थिरं
लोकमंगिनिवहेन संकुलम् ।
सप्तरज्जुघनसम्मितं जिना
वर्णयंति पवमानवेष्टितम् ॥ ६१ ॥

अर्थ—जिनराज है ते लोककौं ऐसा वर्णन करै है, कैसा है लोक. अनंतानंत जो आकाश ताके मध्य प्राप्त है, बहुरि काहूका करया भया नाही बहुरि जीवनिके समूहनिकरि भरया है बहुरि सात राजूका घन जो तीनसै तेतालीस राजू ता प्रमाण है बहुरि बातवलयनि करि वेष्टित है, ऐसा है ॥ ६१ ॥

जन्ममृत्युकलितेन जंतुना
कर्मवैरिवशवर्तिना सता ।

योे न यत्र बहुशो विगाहितो
विद्यते न विषयः स कश्चन ॥ ६२ ॥

अर्थ—ता लोकविषै सो क्षेत्र नाहीं जो जीवनै बहुत बार नाहीं अवगाह्या कैसा है जीव जन्म मरणकरि व्याप्त है बहुरि कर्म वैरीके वशवर्त्ती है अर अस्तित्वरूप है।

भावार्थ—तीनसै तेतालीस राजूमै ऐसा क्षेत्र नाहीं जहां यह जीव न उपज्या अर न मर्या ऐसा वैराग्यके अर्थि विचारना ॥ ६२ ॥

भूरिशोऽत्र सुखदुःखदायिनीः
भूतिजातिगतियोनिसंपदाः।
यन्त्रितो विविधकर्मशृंखलैः
का न निर्विशति चेतनश्चिरम् ॥ ६३ ॥

अर्थ—नानाप्रकार कर्मरूप सांकलनि करि बंध्या यहु जीव है सो वारंवार सुखदुःखकी देनेवाली विभूति जाति देवादिक गति योनि संपदा कौनसीकौ प्राप्त न होयहै सर्वहीकौं प्राप्त होय है।

भावार्थ—इस लोकमै या जीवकौ सुखदुःखके कारण अनेकवार प्राप्त होय है तिनमैं हर्ष विषाद करना वृथा है, ऐसा विचारना ॥ ६३

बांधवो भवति शात्रवोऽपि वा
कोऽत्र कस्य निजकार्यवर्जितः।
बंधुरेष मम शत्रुरेष वा
शेमुषीमिति करोति मोहितः ॥ ६४ ॥

अर्थ—इस लोकमै कार्य करि रहित कौन किसीका भाई बंधु वा शत्रु होयहै कोई भी न होय है तातै यहु मेरा भाई है यहु मेरा वैरी है ऐसी बुद्धिकौ मोही जीव करै है यहु बुद्धि मिथ्या है ऐसा जानना ॥ ६४ ॥

देवमर्त्यपशुनारकेष्वयं
दुःखजालकलितेष्वनारतम्।
कामकोपमदलोभवासितो
वर्त्तते भवविपर्ययाधुलः ॥ ६५ ॥

अर्थ—दुःखनिके समूहकरि भरे जे देव मनुष्य तिर्यंच नारकी तिन विषैं यहु क़ाम क्रोध मद लोभ इत्यादि विभावनिकरि वासित जीव निरंतर प्रवर्त्तै है, कैसाहै यहु संसारविपै विपर्यय बुद्धिकरि आकुल है, संसारमै तो इष्टानिष्ट वस्तु नाहीं अर यहु काहूकौ इष्ट मानैं है काहूकौ अनिष्ट मानै है तातै दुःखी है ॥ ६५ ॥

जन्मवर्त्तिनिवहो वियोज्यते
योज्यते स्वकृतकर्मभिः पुनः।
शुष्कपत्रनिकरः परस्परं
मारुतैरिव विभीमवृत्तिभिः ॥ ६६ ॥

अर्थ—आप करि किए जे कर्म तिनकरि संसारी जीवनिका समूह कहूं परस्पर वियोगरूप कीजिए है कहूं संयोगरूप कीजिएहै जैसै उग्र--वेगसहित जो पवन तिनकरि पत्तानिका समूह कहूं मिलाइए है कहूं विछुराइएहै सूखे " संयोग वियोगका कारण कर्म है कोऊ परवस्तु नाहीं " ऐसा विचारना ॥ ६६ ॥

एष वेष्टयति भोगकांक्षया
कोशकार इव लालया स्वयम्।
कर्मवीजभवया विनिंद्यया
घोरमृत्युभयदानदक्षया ॥ ६७ ॥

अर्थ—जैसै कोशकार जो कुसेरा सो अपनी लीला कारे आपहीकौं बांधैहै तैसै यहु जीव भोगनिकी वांछाकरि आपही आपकौ बाधै है,

कैसीहै भोगनिकी वांछा कर्मवीजकरि उपजीहै, मोहोदय जनितहै स्वभावतै नाहीं, बहुरि विशेषपनें निद्यहै अर भयानक मृत्युके देनेमैं प्रवीण है अनंतवार मरण करावैहै ऐसी है ॥ ६७ ॥

चेतसीति सततं वितन्वतो
लोकरूपमुपजायते परा।
राक्षसीत इव संसृतेः स्फुटं
धर्मकर्मजननी विरक्तता ॥ ६८ ॥

अर्थ—या प्रकार जो लोकका स्वरूप चित्तविषै विचारै है ताकै धर्म कर्मकी उपजावनेवाली संसारतै परम उदासीनता प्रगट उपजै है जैसै राक्षसीतै भय उपजै तैसै संसारतै भय उपजै है ॥ ६८ ॥

यों प्रकार लोकभावना कही। आगै बोधिदुर्लभभावनाकौं कहैहै;—

देशजातिकुलरूपकल्पता
जीवितव्यबलवीर्यसंपदः।
देशनाग्रहणबुद्धिधारणाः
संति देहिनिवहस्य दुर्लभाः ॥ ६९ ॥

अर्थ—मुक्ति होने योग्य भरतादिक्षेत्र अर क्षत्रियादिजाति अर कुल बहुरि सुंदररूप अर नीरोगता बहुरि दीर्घ आयु अर शरीरसंबंधी बल अर आत्मासंबंधी वीर्य अर संपदा अर जिनवानीका उपदेश अर ताके जाननेकी बुद्धि बहुरि जानकरि ताकी धारणा राखनी यह वस्तु जीवनिकै समूहकौ पावना दुर्लभहै बडे भाग्यके उदयतैं मिलैहै ॥६९॥

हंत! तासु सुखदानकोविदा
ज्ञानदर्शनचरित्रसंगतिः।
लभ्यते तनुमताऽतिकृच्छ्रतः
कामिनीष्विव कृतज्ञता सती ॥ ७० ॥

अर्थ—आचार्य खेदकरि कहैंहै—अहो तिन पूर्वोक्त सामग्रीनिविषैं भी सुखदेनमै प्रवीण ऐसी जो ज्ञानदर्शन चारित्रकी संगति सो जीवकरि कष्टतै पाइएहै जैसै स्त्रीनिविषै सुंदर कृतज्ञता कष्टतै पाइए तैसै पूर्वोक्त सामग्रीनिमै बोध पावना दुर्लभहै ॥ ७० ॥

साधुलोकमहिता प्रमादतो
बोधिरत्र यदि जातु नश्यति ।
प्राप्यतेऽन्न भविना तदा पुन
र्नीरधाविव मनोरमो मणिः ॥ ७१ ॥

अर्थ—इस लोकमै साधु पुरुषनिकरि पूजित ऐसो सम्यक्त्वादिककी प्राप्तिरूप जो बोधि सो कदाचित् प्रमादतै नसिजाय तौ फेरि जीवनि करि न पाइए है जैसै समुद्रविषै पडी सुंदर मणि न पाइए तैसैं बोधि पावना दुर्लभहै ॥ ७१ ॥

हंत! बोधिमपहाय शर्मणे
योऽधमो वितनुते धनार्जनम् ।
जीविताय विषवल्लरीं स्फुटं
सेवतेऽमृतलतामपास्य सः ॥ ७२ ॥

अर्थ—अहो वडे खेदकी बातहै जो अधम पुरुष सम्यक्त्वादिककी प्राप्तिरूप बोधिकौ छोडकरि सुखके अर्थि धन उपार्जन करैहै सो जीवनेके अर्थि अमृतवेलकौ छोडकै प्रगटपने विषवेलिकौ सेवैहै ॥ ७२ ॥

योऽत्र धर्ममुपलभ्य मुंचते
क्लेशमेष लभतेऽतिदारुणम् ।
यो निधानमनघं व्यपोहते
खिद्यते स नितरां किमद्भुतम् ॥ ७३ ॥

अर्थ—जो पुरुष धर्मकौं पापकरि छोडैहै सो यहु अति भयानक क्लेशकौ पावैहै जैसै जो निर्मल भंडारकौ छोडै सो अत्यंत खेद खिन्न होयही होय, यामै कहा आश्चर्यहै ॥ ७३ ॥

मुंचता जननमृत्युयातनां
गृह्णता च शिवतातिमुत्तमाम्।
शाश्वती मतिमता विधीयते
वोधिरद्रिपतिचूलिका स्थिरा ॥ ७४ ॥

अर्थ—जो जीव जन्म मरणकी तीव्र वेदनाकौ त्यागताहै बहुरि शाश्वती कल्याणकी संततिकौ ग्रहण करता है ता बुद्धिमान पुरुषकरि दर्शनादिककी प्राप्तिरूप जो वोधि सो सुमेरुकी चूलिकासमान स्थिर कीजिए है।

भावार्थ—जो जीव दुःखकौ त्यागि सुखी भया चाहै सो सम्यग्दर्शनादिककौं दृढ राखै यहु तात्पर्य है ॥ ७४ ॥

ऐसैं वोधिभावना कही। आगै धर्म भावनाका वर्णन करैहै;—

निरुपमनिरवद्यशर्ममूलं
हितमभिपूजितमस्तसर्वदोषम्।
भजति जिननिवेदितं स धर्मं
भवति जनः सुखभाजनं सदा यः ॥ ७५ ॥

अर्थ—जो पुरुष जिनभाषित धर्मकौ सेवैहै सो सदा सुखकाभाजन होय है, कैसाहै जिनभाषित धर्म उपमारहित अर पापरहित सुखका मूलहै बहुरि हितस्वरूप है अर सवनिकरि पूजित है अर नष्ट भये हैं पूर्वापरविरुद्ध आदि दोष जाके ऐसा है ॥ ७५ ॥

व्यपनयति भवं दुरंतदुःखं
वितरति मुक्तिपदं निरामयं यः।

भवति कृतधिया त्रिधा विधेयः
सकलसमीहितसाधनः स धर्मः ॥ ७६ ॥

अर्थ—पूर्ण है वुद्धि जाकी ऐसे पुरुप करि सो धर्म मन वचन कायकीर करणा योग्य है, कैसाहै धर्म सकल वांछित वस्तुका साधन है जातै समस्त इष्ट पदार्थ मिलै है, बहुरि जो धर्म—दूरहै अंतजाका ऐसा हैं दुःख जामैं ऐसा जो संसार ताहि दूर करैहै, अर निर्दोप मुक्तिपदकौं देय है ॥ ७६ ॥

मनुजभवमवाप्य यो न धर्म
विपयसुखाकुलितः करोति पथ्यम् ।
मणिकनकनगं समेत्य मन्ये
पिपतिपति स्फुटमेप जीवितार्थी ॥ ७७ ॥

अर्थ—मनुष्य जन्मकौ पायकै विपयनिके सुखनि विपै आकुलित जो पुरुप हितरूप धर्मकौ न करै है सो मैं ऐसा मानूं हूं कि यहु रत्न सुवर्णके पर्वतकौ प्राप्त होय करि प्रगटपने जीवनेका अर्थी पडनेकौं इच्छै हैं, मनुष्यभव पायकरि तौ धर्म करनाही योग्य है ॥ ७७ ॥

कलुपयति कुधीर्निरस्तधर्मा
भवशतमेकभवस्य कारणं यः।
अभिलपितफलानि दातुमीशं
त्यजति तृणार्थितया स कल्पवृक्षम् ॥ ७८ ॥

अर्थ—जो त्यागाहै धर्म जानै ऐसा कुवुद्धी पुरुप एक भवके अर्थ अनेक भव विगाडैहै सो फलानिके देवे समर्थ जो कल्पवृक्ष ताहि त्यागैहै अर तृणके अर्थि अभिलापा करै है ।

भावार्थ—जो एक भव संबंधी किंचित् विषय सुखके अर्थ धर्म छोडैहै सो अनेकवार निगोदादि पर्यायनिमै भ्रमैहै तातैं अनेक भव विगाडना कह्याहै, ऐसा जानना ॥ ७८ ॥

शमयमनियमव्रताभिरामं
चरति न यो जिनधर्ममस्तदोषम् ।
भवमरणनिपीडितो दुरात्मा
भ्रमति चिरं भवकानने स भीमे ॥ ७९ ॥

अर्थ—जो पुरुष दूर किये है हिंसादि दोष जानैं ऐसा जो जिन-धर्म ताहि नाहीं आचरण करैहै सो जन्म मरण करि दुःखित दुरात्मा बहुत काल ताई भयानक संसारवन विषैं भ्रमैहै, कैसाहै जिनधर्म कषायके अभावरूप शमभाव अर यावज्जीव त्यागरूप यम अर कालकी मर्यादारूप नियम अर अहिंसादि व्रत इनकरि सुंदर है युक्त है ॥ ७९

विगलितकलिलेन येन युक्तो
भवति नरो भुवनस्य पूजनीयः ।
शुचिवचनमनःशरीरवृत्त्या
भजति बुधो न कथं तमत्र धर्मम् ॥ ८० ॥

अर्थ—जो पापरहित धर्म करि युक्त मनुष्य है सो लोककै पूज-नीक होयहै ता धर्मकौ इसलोकमैं पवित्र मन वचनकायकी परणति करि कौन पंडित जन न सेवैहै, सेवैहीहै ॥ ८० ॥

क्षांतिर्मार्दवमार्जवं निगदितं सत्यं शुचित्वं तप-
स्त्यागोऽकिंचनता मुमुक्षुपतिभिर्ब्रह्मव्रतं संयमः ।
धर्मस्येति जिनोदितस्य दशधा निर्दूषणं लक्षणं
कुर्वाणो भवयंत्रणाविरहितो मुक्त्यंगनां श्लिष्यति ॥८१॥

अर्थ—क्रोधकपायके अभावरूप क्षमा अर मानके अभावरूप मार्दव अर मायाके अभावरूप आर्जव अर सत्यवचन अर लोभके अभावरूप शुचिपना अर अनशनादि तप अर शक्तिसारू त्याग अर निष्परिग्रहता अर ब्रह्मचर्य अर संयम ऐसैं दशप्रकार लक्षण जिनधर्मका मुनीश्वरनि करि कह्या ताहि जो आचरण करैहै सो संसारबंधनकरि रहित भया संता मुक्तिस्त्री कौं आलिंगैहै ॥ ८१ ॥

ऐसै धर्मानुपेक्षा कही । आगै अधिकारकौ संकोचैहै;—

> योऽनुप्रेक्षा द्वादशापीति नित्यं
> भव्यो भक्त्या ध्यायति ध्यानशीलः ।
> हेयादेयाशेपतत्त्वावबोधी
> सिद्धिं सद्यो याति स ध्वस्तकर्मा ॥ ८२ ॥

अर्थ—या प्रकार जो पुरुप द्वादशै अनुप्रेक्षानिकौं ध्यान रूपहै स्वभाव जाका ऐसा भव्य भक्ति करि नित्यही ध्यावैहै विचारैहै सो हेय उपादेय तत्वका जाननेवाला शीघ्रही मुक्तिपदकौं प्राप्त होयहै कैसाहै सो नाश कियेहैं कर्म जानैं ऐसाहै ।

भावार्थ—जो द्वादश अनुप्रेक्षा भावैहै सो मुक्तिकौं प्राप्त होयहै, ऐसा भावनाका फल दिखयाहै ॥ ८२ ॥

> सूचिततत्त्वं ध्वस्तकुतत्त्वं
> भवभयविदलनदमयमकथनम् ।
> यो हृदि धत्ते पापनिवृत्ते
> शुचिरुचिरुचिरं जिनपतिवचनम् ॥ ८३ ॥
> केवललोकालोकितलोकोऽ—
> मितगतियतिपतिसुरपतिमहिताम् ।

याति स सिद्धिं पावनशुद्धिं
सकलितकलिमलगुणमणिसहिताम् ॥ ८४ ॥

अर्थ—जो पुरुष जिनराजके वचनकौं पापरहित हृदयविषैं धारै है सो पुरुष मोक्षकौं प्राप्त होयहै, कैसाहै जिनराजका वचन सूचित किया है (बताया है) वस्तुका स्वरूप जानैं बहुरि नाश किया है अन्यथा वस्तुका स्वरूप जानैं (वस्तु तौ जैसा अनेकांतस्वरूप है तैसाही है परंतु अन्यथा माननेरूप मिथ्या अभिप्रायका जानैं नाश किया है ऐसा है) बहुरि संसार भयका नाश करनेवाला है इंद्रियनिका दमन अर संयमका कथन जाविषैं बहुरि पवित्र रुचिकरि सुंदर है रुचिकारी है, बहुरि कैसाहै सो जिनवचनकौ हृदयमै धारनेवाला पुरुष केवलज्ञान दर्शनरूपी प्रकाशकरि देख्याहै लोक जानैं,

भावार्थ—जिनवचनके अभ्यासतै केवली होय है, कैसीहै मुक्ति अनंतहै महिमा जिनकी ऐसे जे गणधरादिक अर देवनिके इंद्र तिनकरि पूजितहै बहुरि रागादि दोषरहित अत्यंत पवित्र है बहुरि खंडित कियेहैं पापरूप मैल जिननै ऐसे सम्यक्त्वादिगुणरत्ननिकरि पूजित है युक्तहै, ऐसा जानना ॥ ८३-८४ ॥

सवैया इकतीसा।

जग है अनित्य तामैं सरन न वस्तु कोय,
तातैं दुखरासि भववासकौं निहारिए।
एक चित्त चिन्ह सदा भिन्न परद्रव्यनितैं
अशुचि शरीरमैं न आपाबुद्धि धारिए॥
रागादिक भाव करैं कर्मको बढाव तातैं
संवरस्वरूप होय कर्मबंध डारिए।

तीन लोक मांहि जिनधर्म एक दुर्लभ है
तातैं जिनधर्मकौं न छिनहू विसारिए ॥

दोहा॥

ऐसैं द्वादश भावना भापी अमितगतीस।
जो भावै सो सुखलहै कर्ममहागिरि पीस ॥

इत्युपासकाचारे चतुर्दशः परिच्छेदः।

ऐसैं श्री अमितगति आचार्यविरचित श्रावकाचारविषैं
चतुर्दशमां परिच्छेद समाप्त भया।

अथ पञ्चदशः परिच्छेदः ।

नियम्य करणग्रामं व्रतशीलगुणादृतैः ।
सर्वो विधीयते भव्यैर्विधिरेष विमुक्तये ॥ १ ॥

न सा संपद्यते जंतोः सर्वकर्मक्षयं विना ।
रजोपहारिणी वृष्टिर्वलाहकमिवोर्जिता ॥ २ ॥

समस्तकर्मविश्लेषो ध्यानेनैव विधीयते ।
न भास्करं विनाऽन्येन हन्यते शार्वरं तमः ॥ ३ ॥

यत्नः कार्यो बुधैर्ध्याने कर्मभ्यो मोक्षकांक्षिभिः ।
रोगेभ्यो दुःखकारिभ्यो व्याधितैरिव भैषजम् ॥ ४ ॥

अर्थ—व्रत अर शील अर गुणनिमैं कियाहै आदर जिननैं ऐसे भव्य जीवनिकरि इंद्रियनिके समूहकौ रोकि करि यह सर्व पूर्वोक्त व्रतादि आचरण मुक्तिके अर्थि कीजिएहै ॥ १ ॥

सो मुक्ति सर्व कर्मनिके क्षयविना जीवकै न होयहै जैसै मेघविना रजकी उपसमावनेवाली वृष्टि न होय तैसै ॥ २ ॥

बहुरि समस्त कर्मका नाश ध्यानही करि करिएहै जैसै सूर्य विना और करि रात्रिसंबंधी अंधकार न निवारिए तैसै ॥ ३ ॥

तातै कर्मनतै मोक्षके वांछक जे पंडितजन तिनकरि ध्यान विषैं यत्न करणा योग्यहै जैसै रोगनतै छूटनेके वांछक जे रोगी तिनिकरि औषधका यत्न करणा योग्यहै तैसै ॥ ४ ॥

आगै ध्यानका सामान्य लक्षण कहैहै;—

आद्यत्रिसंहतैः साधैरांतर्मौहूर्त्तिकं परम् ।
वस्तुन्येकत्र चित्तस्य स्थैर्यं ध्यानमुदीर्यते ॥ ५ ॥

अर्थ—आदिके वज्रवृपभनाराच वज्र नाराच अर्द्ध नाराच ये तीन संहनन जिनकै पाइए ऐसे जे ध्यानके साधनेवाले पुरुप तिनि करि एक वस्तुविषै उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त मनकी थिरता कीजिए सो ध्यान कहिएहै ॥ ५ ॥

तदन्येषां यथाशक्ति मनोरोधविधायिनाम् ।
एकद्वित्रिचतुः पंच षडादिक्षणगोचरम् ॥ ६ ॥

अर्थ—बहुरि सो ध्यान., मनके रोकनेवालेनिकै यथाशक्ति एक दोय तीन च्यार पाच छह आदि समयनिकै गोचरहै ।

भावार्थ—उत्कृष्ट ध्यान उत्तम सहननवालेकै अंतमुहूर्त्तकाहै और-निकै यथाशक्ति एक आदि समयभी ध्यान होयहै, ऐसा जानना ॥ ६ ॥

साधकः साधनं साध्यं फलं चेति चतुष्टयम् ।
विवोद्धव्यं विधानेन बुधैः सिद्धिं विवित्सुभिः ॥ ७ ॥

अर्थ—मोक्षके जानने वा प्राप्त होनेके वांछक जे पंडित जन तिनकरि साधन करनेवाला साधक, अर जाकरि साधिए सो साधन, बहुरि साधने योग्य होय सो साध्य, अर साधनका फल यह च्यार बात विधान सहित जानना योग्य है ॥ ७ ॥

सो ही कहै है;—

संसारी साधको भव्यः साधनं ध्यानमुज्वलम् ।
निर्वाणं कथ्यते साध्यं फलं सौख्यमनश्वरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—संसारी भव्य जीव तौ साधनेवाला साधक है, बहुरि निर्मल ध्यान है सो साधनहै, बहुरि मोक्ष साधने योग्य साध्य है बहुरि अवि-नाशी सुख है सो ध्यानका फल है ऐसा जानना ॥ ८ ॥

आगै ध्यानके भेद कहै है;—

आर्त्तं रौद्रं मतं धर्म्यं शुक्लं चेति चतुर्विधम् ।
ध्यानं ध्यानवतां मान्यैर्भवनिर्वाणकारणम् ॥ ९ ॥

अर्थ—ध्यानवान जे मुनीश्वर तिनि करि मानने योग्यजे गणधरादिक तिनि करि आर्त्त, रौद्र, धर्म, शुक्ल ऐसै च्यार प्रकार का ध्यान संसारका अर निवार्णका कारण कह्या है ॥ ९ ॥

संसारकारणं पूर्वं परं निर्वृतिकारणम् ।
इत्याद्यं द्वितयं त्याज्यमादेयमपरं बुधैः ॥ १० ॥

अर्थ—पहले आर्त रौद्र तौ संसारके कारण हैं बहुरि पर जे धर्म शुक्ल ते मोक्षके कारण है इस हेतुतै पंडितनिकरि आदिके आर्त, रौद्र दोनौ त्यागने योग्य हैं बहुरि और जे धर्म शुक्ल ते ग्रहण करणा योग्यहैं ॥ १० ॥

तहां प्रथम ही आर्त्तध्यानके भेद कहैहैं;—

प्रिययोगाऽप्रियायोगपीडालक्ष्मीविचिंतनम् ।
आर्त्तं चतुर्विधं ज्ञेयं तिर्यग्गतिनिबंधनम् ॥ ११ ॥

अर्थ—इष्ट वस्तुका वियोग अर अनिष्ट वस्तुका संयोग अर रोगादिककी पीडा अर लक्ष्मीकी अभिलाषारूप जो विचार सो च्यार प्रकार आर्तध्यान तिर्यंचगतिका कारण जानना ॥ ११ ॥

आगैं रौद्रध्यानका स्वरूप कहैहै;—

रौद्रं हिंसानृतस्तेयभोगरक्षणचिंतनम् ।
ज्ञेयं चतुर्विधं शक्तं श्वभ्रभूमिप्रवेशने ॥ १२ ॥

अर्थ—हिसा अर झूंठ अर चोरी अर विषयनिकी रक्षा इनिविषै हर्षरूप जो चितवन सो च्यार रौद्रध्यान नरकभूमिविषै प्रवेश करावने विषैं समर्थ जानना योग्य है ॥ १२ ॥

आगैं धर्मध्यानके भेद कहैहै;—

आज्ञापायविपाकानां चिंतनं लोकसंस्थितेः।
चतुर्धाऽभिहितं धर्म्यं निमित्तं नाकशर्मणः ॥ १३ ॥

अर्थ—सर्वज्ञ वीतरागकी आज्ञा अर संसार दुःखका नाश अर कर्मनिका उदय इनका विचारना अर लोकके आकारकाविचारना ऐसै च्यार प्रकार धर्मध्यान स्वर्गसुखका कारण कह्या है ॥ १३ ॥

आगैं शुक्लध्यानके भेदनिकौ कहैहै;—

शुक्लं पृथक्तवीतर्कवीचारं प्रथमं मतम्।
जिनैरेकत्ववीतर्काऽवीचारं च द्वितीयकम् ॥ १४ ॥
अन्यत्सूक्ष्मक्रियं तुर्यं समुच्छिन्नक्रियं मतम्।
इत्थं चतुरविधं शुक्लं सिद्धिसौधप्रवेशकम् ॥ १५ ॥

अर्थ—जिनदेवनि करि पृथक्त्कवितर्कवीचार पहला शुक्लध्यान कह्या ह पृथक्त्क कहिये भिन्न भिन्नपने करि वितर्क जो श्रुत ताका वीचार कहिए अर्थ शब्द अर योगकी पलटना ताकौ पृथक्त्कवितर्क वीचार कहिये, वहुरि एक पनाकरि श्रुतका जामै चिंतवन होय पलटन न होय सो एकत्ववितर्कावीचार कह्याहै, वहुरि योगनिकी क्रिया जामै सूक्ष्म होय सो सूक्ष्मक्रियातीसराहै, वहुरि नष्ट भईहै योगनिकी क्रिया जामै सो समुच्छिन्नक्रियहै, ऐसै च्यार प्रकार शुक्लध्यान मुक्तिमहलके प्रवेश करावनेवाला कह्या है ॥ १५ ॥

आगै ध्यानके स्वामी कहैहै;—

आर्त्तं तनूमतां ध्यानं प्रमत्तांतगुणाश्रितम्।
संयतासंयतांतानां रौद्रं ध्यानं प्रवर्त्तते ॥ १६ ॥

अर्थ—जीवनकै आर्तध्यानहैसो छट्ठा प्रमत्त गुणस्थान पर्यंत तिष्ठैहै अर संयतासंयत जो पंचम गुणस्थान तहां ताईं रौद्रध्यान प्रवर्त्तैहै ॥ १६ ॥

अनपेतस्य धर्मस्य धर्मतो दशभेदतः ।
चतुर्थः पंचमः षष्ठः सप्तमश्च प्रवर्त्तकः ॥ १७ ॥

अर्थ—आज्ञादिक दशप्रकार धर्म जो स्वभाव ताकरि युक्त जो धर्मध्यान ताका प्रवर्त्तावने वाला ध्यावनेवाला चतुर्थ पंचम षष्ठ सप्तम गुणस्थानवर्ती जीव जानना।

भावार्थ—यद्यपि चतुर्थादि गुणस्थाननिमैं परिणामनिकी निर्मलता वा वस्तुविचारमैं लीनता अधिक अधिकहै तथापि सामान्यपनैं सर्व धर्मध्यानही कह्याहै ॥ १७ ॥

समर्थं निर्मलीकर्त्तुं शुक्लं रत्नशिखास्थिरम् ।
अपूर्वकरणादीनां मुमुक्षूणां प्रवर्त्तते ॥ १८ ॥

अर्थ—निर्मल करनेकौं समर्थ ऐसा जो शुक्लध्यानहै सो अपूर्वकरण आदि सात गुणस्थानवाले मोक्षके वांछक जे आत्मा तिनकै प्रवर्त्तैहै, कैसाहै शुक्लध्यान रत्नकी शिखासमान स्थिरहै, जैसैं रत्नकी शिखा पवनादिकतैं न चलै तैसैं शुक्लध्यान रागादिकतैं न चलैहै ॥ १८ ॥

अद्धायोड्डूयते सर्वं कर्म ध्यानेन संचितम् ।
वृद्धं समीरणेनेव वलाहककदंबकम् ॥ १९ ॥

अर्थ—संचय किया जो सर्व कर्महै सो ध्यानकरि शीघ्र उडाइएहै जैसै वृद्धिकौं प्राप्त भया वादलानिका समूह सो पवनकरि उडाइएहै तैसैं ॥ १९ ॥

ध्यानद्वयेन पूर्वेण जन्यंते कर्मपर्वताः ।
वज्रेणेव विभिद्यंते परेण सहसा पुनः ॥ २० ॥

अर्थ—पहले दोय ध्यान जे आर्त रौद्र तिनिकरि कर्मरूपी पर्वत उपजाइएहै, बहुरि पीछले जे दोय धर्मध्याय शुक्लध्यान तिनिकरि कर्म-पर्वत शाघ्रही भेदिएहै ।

भावार्थ—आर्तरौद्रतै कर्म बंधैहै अर धर्म शुक्लनितै कर्मनिका नाश होयहै, ऐसा जानना ॥ २० ॥

यो ध्यानेन विना मूढः कर्मच्छेदं चिकीर्षति ।
कुशिलेन विना शैलं स्फुटमेष विभित्सति ॥ २१ ॥

अर्थ—जो मूढ ध्यान विना कर्मनिका नाश करनेकौ इच्छैहै सो प्रगट यहु वज्रविना पर्वतके छेदनेकौ इच्छैहै ॥ २१ ॥

ध्यानेन निर्मलेनाऽऽशु हन्यते कर्मसंचयः ।
हुताशनकणेनापि स्नुष्यते किं न काननम् ॥ २२ ॥

अर्थ—निर्मल ध्यान करि शीघ्र कर्मनिकी समूह नाश कीजिएहै जैसै अग्निके कण करि भी कहा वन न जलाइए है, जलाइएही है ॥ २२ ॥

ध्यानं विधित्सता ज्ञेयं ध्याता ध्येयं विधिः फलम् ।
विधेयानि प्रसिद्धयंति सामग्रीतो विना नं हि ॥ २३ ॥

अर्थ—ध्यान करनेकौ इच्छता जो पुरुष ताकरि ध्याता कहिये ध्यानका करनेवाला अर ध्येय कहिये ध्यावने योग्य वस्तु विधि कहिए ध्यानका विधान अर ध्यानका फल ये जानने योग्य है, ते सामग्री बिना सिद्ध होय नाहीं, ध्याता आदिका स्वरूप जानै तौ ध्यानकी सिद्धि होय ॥ २३ ॥

आगैं ध्याताका स्वरूप कहै है;—

निसर्गमार्दवोपेतो निष्कषायो जितेंद्रियः ।
निर्ममो निरहंकारः पराजितपरीषहः ॥ २४ ॥
हेयोपादेयतत्वज्ञो लोकाचारपराङ्मुखः ।
विरक्तः कामभोगेषु भवभ्रमणभीलुकः ॥ २५ ॥

लाभेऽलाभे सुखे दुःखे शत्रौ मित्रे प्रियेऽप्रिये।
मानापमानयोस्तुल्यो मृत्युजीवितयोरपि ॥ २६ ॥

निरालस्यो निरुद्वेगो जितनिद्रो जितासनः।
सर्वव्रतकृताभ्यासः संतुष्टो निष्परिग्रहः ॥ २७ ॥

सम्यक्त्वालंकृतः शांतो रम्यारम्यनिरुत्सुकः।
निर्भयो भाक्तिकः श्राद्धो वीरो वैरंगिकोऽशठः ॥ २८ ॥

निर्निदानो निरापक्षो विभंक्षुर्देहपंजरम्।
भव्यः प्रशस्यते ध्याता यियासुः पदमव्ययम् ॥ २९ ॥

अर्थ—स्वभाव करि ही कोमल परिणाम करि युक्त होय, कषायरहित होय (तीव्रकषायी न होय) अर जीते है इंद्रिय जानै ऐसा होय, बहुरि परद्रव्यनिमै ममकाररहित होय, अहंकार रहित होय (पर द्रव्य मेरेहैं ऐसी बुद्धि सो तो ममकार कहिये, परहै सो मै हूं ऐसी बुद्धिकौं अहंकार कहिए इन करि रहित होय) अर जीते है क्षुधादि परीषह जानैं ऐसा होय ॥ २४ ॥

अर त्यागने योग्य अर ग्रहण करणे योग्य जे तत्व तिनका ज्ञाता होय अर लौकिक आचारतै अपूठो होय, अर काम भोगनि विषै विरक्त होय, अर संसारभ्रमणतै भयभीत होय ॥ २५ ॥

लाभ अलाभ, सुख दुःख, शत्रु मित्र, प्रिय वस्तु अप्रियवस्तु, मान अपमान, अर मरण जीवन विषै भी समान होय।

भावार्थ—सर्वकौ ज्ञेयपना करि समान जानि इष्टानिष्टबुद्धि नाहीं करै ॥ २६ ॥

निरालसी होय, उद्वेगरहित होय, जीतीहैं इंद्रियां जानै, अर जीत्या है आसन जानै, आसन वांधनेमैं हलै चलै नाहीं, अर सर्व अहिंसादि

व्रतानिका करया है अभ्यास जानै, अर संतोप सहित प्रसन्नचित्त होय, अर परिग्रहरहित होय ॥ २७ ॥

अर सम्यग्दर्शनकरि शोभित होय, शांतपरिणामी होय, अर सुंदर चित्तकौ रमावनेवाली वस्तु तिनमैं उत्साहरहित होय, निर्भय होय, देव गुरु धर्म विषै भक्त होय, कर्म वैरीके जीतनेकौ सुभट होय, वैरागी होय, पंडित होय ॥ २८ ॥

निदान रहित होय, काहूकी अपेक्षा लियें न होय, देहरूपी पींजरेके भेदनेका इच्छुक होय, भव्य होय ऐसा अविनाशी स्थानके जानेका इच्छुक ध्याता सराहिये है ॥ २९ ॥

ऐसै ध्याताका स्वरूप कह्या । आगै ध्येयकौ कहैहै;—

ध्येयं पदस्थपिंडस्थरूपस्थारूपभेदतः ।
ध्यानस्यालंवनं प्राज्ञैश्चतुर्विधमुदाहृतम् ॥ ३० ॥

अर्थ—ध्यानका आलंवन कहिए जाकौ ध्यानविषै चिंतिए ऐसा ध्येय, पदस्थ १ पिंडस्थ २ रूपस्थ ३ अरूप ४ इन भेदनिकरि बुद्धिमाननिनै च्यार प्रकार कह्या है ॥ ३० ॥

तहां प्रथमही पदस्थका स्वरूप कहैहै;—

यानि पंचनमस्कारपदादीनि मनीषिणा ।
पदस्थं ध्यातुकामेन तानि ध्येयानि तत्वतः ॥ ३१ ॥

अर्थ—जे पंचनमस्कारपद आदि अक्षरनिके समूहरूप पदहै ते पदस्थ ध्यावनेका वाछक जो बुद्धिमान पुरुप ताकरि निश्चयतै ध्यावने योग्य है ।

भावार्थ—पदस्थमै पंचनमस्कारमंत्र आदि पद ध्यावना ॥ ३१ ॥

आगै मंत्रनिका विधान कहैहैं;—

मरुत्सखशिखो वर्णो भूतांतः शशिशेखरः ।
आद्यलघ्वादिको ज्ञात्वा ध्यातुः पापं निषूदते ॥ ३२ ॥
स्थितो ऽ सि आ उ सा मंत्रश्चतुष्पत्रे कुशेशये ।
ध्यायमानः प्रयत्नेन कर्मोन्मूलयतेऽखिलम् ॥ ३३ ॥
तन्नाभौ हृदये वक्त्रे ललाटे मस्तके स्थितम् ।
गुरुप्रसादतो बुद्ध्वा चिंतनीयं कुशेशयम् ॥ ३४ ॥
अयुयवित्यमी वर्णाः स्थिताः पद्मे चतुर्दले ।
विश्राणयंति पंचापि सम्यग्ज्ञानानि चिंतिताः ॥ ३५ ॥
स्थितपंचनमस्काररत्नत्रयपदैर्दलैः ।
अष्टभिः कलिते पद्मे स्वरकेसरराजिते ॥ ३६ ॥
स्थितोऽर्हं मित्ययं मंत्रो ध्यायमानो विधानतः ।
ददाति चिंतितां लक्ष्मीं कल्पवृक्ष इवोर्जिताम् ॥ ३७ ॥
हसतीं कारस्तोमः सोऽहं मध्यस्थितो विगतमूर्द्धा ।
पार्श्वप्रणवचतुष्को ध्येयो द्विप्रांतकृतमायः ॥ ३८ ॥

यंत्रः

सहस्रा द्वादश प्रोक्ता जपहोमविचक्षणैः ।
ॐ जोगेत्यादिमंत्रस्य तद्भागो दशमः पुनः ॥ ३९ ॥

ॐ जोग्गे मग्गे तच्चे भूदे भव्वे भविस्से अक्खे पक्खे जिणपारस्से स्वाहा । अयं मंत्रः, जाप्यं द्वादशसहस्रं १२०००, होमः द्वादशशतं १२०० ।

चक्रस्योपरि जापेन जातीपुष्पैर्मनोरमैः ।
विद्या सूचयते सम्यक् स्वप्ने सर्व शुभाशुभम् ॥ ४० ॥
ॐ ह्रीँकारद्वयांतस्थो हंकारो रेफभूषितः ।
ध्यातव्योऽष्टदले पद्मे कल्मपक्षपणक्षमः ॥ ४१ ॥
सप्ताक्षरं महामंत्रं ॐ ह्रीँकारपदानतम् ।
विदिग्दलगतं तत्र स्वाहांतं विनिवेशयेत् ॥ ४२ ॥
[2]दिशि स्वाहांतमों ह्रीँ हूँ नमो ह्रीँ हूँ पदोत्तमम् ।
तत्र स्वाहांतमों ह्रीँ हूँ कर्णिकायां विनिक्षिपेत् ॥४३॥
तत्पद्मं त्रिगुणीभूत मायाबीजेन वेष्टयेत् ।
विचिंतयेच्छुचीभूतः स्वेष्टकृत्यप्रसिद्धये ॥ ४४ ॥
पद्मस्योपरि यत्नेन देयोपादेयलब्धये ।
मंत्रेणानेन कर्तव्यो जपः पूर्वविधानतः ॥ ४५ ॥

ॐ ह्रीँ हूँ नमो हूँ णमो अरहताण ह्रीं नमः इति मूलमंत्रः ।
जाप्य १०००० हामः १००० ।

सव्येनाप्रतिचक्रेण फडिति प्रत्येकमक्षरम् ।
कोणपङ्के विचक्राय स्वाहा वाह्येऽपसव्यतः ॥ ४६ ॥
निविश्य विधिना दक्षो मध्ये तस्य निवेशयेत् ।
भूतांतं विंदुसंयुक्तं चिंतयेच्च विशुद्धधीः ॥ ४७ ॥
विधाय वलयं वाह्ये तस्य मध्ये विधानतः ।
णमो जिणाणमित्याद्यैः पूरयेत्प्रणवादिकैः ॥ ४८ ॥

---

१ अ इ उ य उ । २ दूसरी संस्कृत प्रतिमें यह श्लोक इस प्रकारहै;—
दिशि स्वाहांतमों ह्रीँ ह्राँ नमो ह्रीँ हँ पदोत्तमम् ।
तत्र स्वाहा नमो ह्रीँ हँ कर्णिकायां विनिक्षिपेत् ॥

ॐ णमो जिणाणं १ ॐ णमो परमोधि जिणाणं २ ॐ णमो सव्वोधि जिणाणं ३ ॐ णमो अणंतोधि जिणाणं ४ ॐ णमो कोट्ठ-वुद्धीणं ५ ॐ णमो वीजवुद्धीणं ६ ॐ णमो पादानुसारीणं ७ ॐ णमो संभिण्णसोदराणं ८ ॐ णमो उज्जुमदीणं, ९ ॐ णमो विउलमदीणं १० ॐ णमो दसपुव्वीणं ११ ॐ णमो चौद्दसपुव्वीणं १२ ॐ णमो अट्ठंगणिमित्तकुसलाणं १३ ॐ णमो विगुव्वणइड्ढिपत्ताणं १४ ॐ णमो विज्जाहराणं १५ ॐ णमो चारणाणं १६ ॐ णमो पण्णसमणाणं १७ ॐ णमो आगासगामीणं १८ ॐ ज्रौं झ्रौं श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी स्वाहा इति पदैर्वलयं पूरयेत् । एवं पंचनमस्कारेण पंचागुलीन्यस्तेन सकली क्रियते; ॐ णमो अरहंताणं ह्राँ स्वाहा अंगुष्ठे, ॐ णमो सिद्धाणं ह्रीँ स्वाहा तर्जन्यां, ॐ णमो आयरियाणं ह्रूं स्वाहा मध्यमायां, ॐ णमो उवज्झायाणां ह्रोँ स्वाहा अनामिकायां, ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं कनिष्ठकायां, एवं वारत्रयमंगुलीषु विन्यस्य मस्तकस्योपरि पूर्वदक्षिणापरोत्तरेषु विन्यस्य जपं कुर्यात् ।

इहां तांई यहु मंत्रविधान वा यंत्ररचना वा क्रियाविशेष आदि वर्णन किया, सो याका अर्थ हमकौ यथार्थ सर्व प्रतिभास्या नाहीं तातैं न लिख्याहै, विशेपबुद्धि जिनकौ मंत्रशास्त्रका ज्ञान होय ते यथार्थ समझ लीज्यो ।

अभिधेया नमस्कारपदैर्ये परमेष्ठिनः ।
पदस्थास्ते विधीयंते शब्देऽर्थस्य व्यवस्थितेः ॥ ४९ ॥

अर्थ—जे अर्हंतादि परमेष्ठी नमस्कारपदनिकरि कहनेयोग्यहैं ते पदस्थ कहिएहै, जातै शब्दविषै पदार्थकी व्यवस्थितिहै ।

भावार्थ—शब्दके अर अर्थके वाच्यवाचकभावसंबंधहै, तातै शब्दमै अर्थ तिष्टैहै इस हेतुतै नमस्कार आदि शब्दनिका ध्यानकौ पदस्थ कह्याहै ॥ ४९ ॥

आगै पिंडस्थ ध्यानकौ कहैहैं;—

अनंतदर्शनज्ञानसुखवीर्यैरलंकृतम् ।
प्रातिहार्याष्टकोपेतं नरामरनमस्कृतम् ॥ ५० ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशशरीरमुरुतेजसम् ।
घातिकर्मक्षयोत्पन्न नवकेवल लब्धिकम् ॥ ५१ ॥
विचित्रातिशयाधारं लब्ध कल्याणपंचकम् ।
स्थिरधीः साधुरर्हतं ध्यायत्येकाग्रमानसः ॥ ५२ ॥

अर्थ—स्थिरहै बुद्धि जाकी ऐसा एकाग्रचित्त साधुहै सो अर्हंतदेवकौ ध्यावैहै, कैसाहै अर्हंत देव अनंतदर्शन अनंतज्ञान अनंतसुख अनंतवीर्य करि शोभितहै, बहुरि अशोकवृक्ष पुष्पवृष्टि दिव्यध्वनि चमर सिंहासन भामंडल देवदुदुभि छत्र इनि अष्ट प्रातिहार्यनिकरि युक्तहै, बहुरि मनुष्यदेवनिकरि कियाहै नमस्कार जाकौं ऐसाहै, बहुरि निर्मल स्फटिक मणि समानहै परमौदारिकशरीर जाका, बहुरि घातिकर्मके क्षयतै उपजीहै नव केवल लब्धि जाकै, बहुरि नानाप्रकारके अतिशय कहिए जिनकौं देखि लौकिक जीवनिके चित्तकौ आश्चर्य उपजै ऐसे अतिशयनि करि युक्तहै, बहुरि पायाहै पचकल्याण जानै ऐसाहै ॥ ५०-५१-५२ ॥

पिंडस्थो ध्यायते यत्र जिनेंद्रो हृतकल्मषः ।
तत्पिंडपंचकध्वंसि पिंडस्थं ध्यानमिष्यते ॥ ५३ ॥

अर्थ—नाश कियाहै कल्मप कहिए पाप जानै ऐसा जो जिनेद्र सो पिंड जो परमौदारिक शरीर ताविषै तिष्टया ध्याइए सो पिंडस्थ ध्यान

कहिए, बहुरि कसाहै पिंडस्थ ध्यान औदारिकादि पंच शरीरनिका नाश करनेवालाहै, सिद्धपदकौ देने वालाहै ॥ ५३ ॥

आगै रूपस्थ ध्यानकौ कहैहै;—

प्रतिमायां समारोप्य स्वरूपं परमेष्ठिनः ।
ध्यायतः शुद्धचित्तस्य रूपस्थं ध्यानमिष्यते ॥ ५४ ॥

अर्थ—परमेष्ठीका स्वरूप प्रतिमाविषै भले प्रकार आरोपण करकैं ध्यानकरता शुद्ध है चित्त जाका ऐसा जो पुरुष ताकै रूपस्थ ध्यान कहिए है ॥ ५४ ॥

आगैं अरूपस्थ ध्यानकौ कहैहै;—

सिद्धरूपं विमोक्षाय निरस्ताशेषकल्मषम् ।
जिनरूप मिवध्येयं स्फटिकप्रति विंवितम् ॥ ५५ ॥
अरूपं ध्यायति ध्यानं परं संवेदनात्मकम् ।
सिद्धरूपस्य लाभाय नीरूपस्य निरेनसः ॥ ५६ ॥

अर्थ—दूर भये है समस्त कर्म जाके ऐसा सिद्धभगवानका स्वरूप जैसा स्फटिकविषै प्रतिबिंबित जिनराजका स्वरूप,

भावार्थ—स्फटिकमणि जैसा जिनविंव होय तैसा ध्यावना; वर्ण गंध रस स्पर्शरहित ऐसा अमूर्त्तीक अर सर्वकर्मरहित ऐसा जो सिद्धभगवानका स्वरूप ताकी प्राप्तिके अर्थि केवलज्ञानस्वरूप अरूप ध्यानकौं ध्यावै है ॥ ५५-५६ ॥

आगै परमात्माका ध्यान कैसै करना, सो कहैहै;—

वहिरंतः परश्चेति त्रेधात्मा परिकीर्त्तितः ।
प्रथमं द्वितीयं हित्वा परात्मानं विचिंतयेत् ॥ ५७ ॥

अर्थ—बहिरात्मा अंतरात्मा परमात्मा ऐसे आत्मा तीन प्रकार कह्या है, तहां बहिरात्मा अर अंतरात्माकौ छोडकै परमात्माका चितवन करै ॥ ५७ ॥

बहिरात्मात्मविभ्रांतिः शरीरे मुग्धचेतसः ।
या चेतस्यात्मविभ्रांतिः सोऽतरात्मा विधीयते ॥ ५८ ॥

अर्थ—जो मूढबुद्धीकै शरीरविषै आत्माकी भ्राति है शरीरमै आपौ मानैहै सो बहिरात्मा है, बहुरि चैतन्यके विकार जे रागादिक तिनविषै आपौ मानैहै सो अंतरात्मा कहिए है ॥

इहा प्रश्न—जो और ग्रंथनिमै तौ मिथ्यादृष्टीकौ बाहिरात्मा कह्या है अर सम्यग्यदृष्टीकौ अतरात्मा कह्याहै इहा ऐसा कैसै कह्या ।

ताका उत्तर—देहमैं आपा मानना सो बहिरात्मा अर रागादिकमैं आपा मानना सो अंतरात्मा ऐसै इहां तौ दोऊ त्यागनेयोग्य कहे । अर जहां अंतरात्मा सम्यग्दृष्टीकौ कह्या तहा उपादेय कह्या, किछू आशयमैं विरोध नाहीं वक्ताकी इच्छातै अर्थ भेदही है, ऐसा जानना ॥

आगै वहिरात्माका स्वरूप कहै हैं;—

श्यामोगौरःकृशःस्थूलःकाणःकुंठोऽवलो कली ।
वनिता पुरुषः पंढो विरूपो रूपवानहम् ॥ ५९ ॥
जातदेहात्मविभ्रांतेरेषा भवति कल्पना ।
विवेकं पश्यतः पुंसो न पुनर्देहदेहिनोः ॥ ६० ॥

अर्थ—मै काला हूं, गौरा हूं, पतला हूं, मोटा हूं, काणा हूं, हीन हूं, वलवान हूं, निर्बल हूं, स्त्री हूं, पुरुष हूं, नपुसक हूं, बिरूप हूं रूपवान हू, ऐसी यह्र कल्पना है सो उपजी है शरीरमै आत्मा की भ्रांति जाकै जो शरीरही आत्माहै ऐसै मिथ्यादृष्टीकै होय है जातै काला गौरा आदि देहके धर्म है आत्माके नाहीं, बहुरि जो पुरुष शरीरका

अर आत्माका भेद देखैहै श्रद्धा करैहै ताकै यह कल्पना न होयहै ॥ ५९-६० ॥

शत्रुमित्रपितृभ्रातृमातृकांतासुतादयः।
देहसंबंधतः संति न जीवस्य निसर्गजाः ॥ ६१ ॥

अर्थ—देहका अपकार करनेवाळा सो शत्रु अर देहका उपकार करनेवाळा सो मित्र अर देहका उपजावनेवाळा सो पिता अर जहां देहकी उत्पत्ति तहांही जाकी उत्पत्ति होय सो भाई अर देहकौ उपजावै सो माता अर देहकौ रमावै सो स्त्री देहतै उपज्या सो पुत्र इत्यादि सर्व जीवकै शत्रु आदिक देहके संबंधतैं है, स्वभाव जनित नाहीं ॥ ६१ ॥

श्वाभ्रस्तिर्यङ्नरो देवो भवामीति विकल्पना।
श्वाभ्रतिर्यङ्नृदेवांगसंगतो न स्वभावतः ॥ ६२ ॥

अर्थ—मै नारकी हूं, तिर्यंच हूं, मनुष्य हूं, देव हूं ऐसी यहु कल्पना है सो नारक तिर्यंच मनुष्य देवनिके शरीरके संगतैं है स्वभावतै नाहीं ॥ ६२ ॥

वालकोऽहं कुमारोऽहं तरुणोऽहमहं जरी।
एता देहपरिणामजनिताः संति कल्पनाः ॥ ६३ ॥

अर्थ—मै वालक हूं, मैं कुमार हूं, मै तरुण हूं, मै वृद्ध हूं ऐसी जे कल्पना है ते शरीरके परिणाम करि उपजीहै ॥ ६३ ॥

विदग्धः पंडितो मूर्खो दरिद्रः सधनोऽधनः
कोपनोऽसूयको मूढो द्विष्टस्तुष्टा शठोऽशठः ॥ ६४ ॥
सज्जनो दुर्जनो दीनो लुब्धो मत्तोऽपमानितः।
जातचित्तात्मसंभ्रांतेरेषा भवति शेमुषी ॥ ६५ ॥

अर्थ—मैं चतुरहूं, पंडितहूं, मूर्खहूं, दरिद्रीहूं, धनवानहूं, निर्धनहूं, क्रोधीहूं, ईर्षायुक्तहूं, मोहीहूं, द्वेषीहूं, रागीहूं, अज्ञानीहूं, ज्ञानीहूं, । सज्जनहूं, दुर्जनहूं, दीनहूं, लोभीहूं, प्रमादी हूं अपमानसहितहूं ऐसी यह्व बुद्धि उपजीहै रागादिकभावनिमैं आपेकी भ्रांति जाकै ऐसा जो पुरुष ताकै होयहै ॥ ६४-६५ ॥

आगै मिथ्याबुद्धि सम्यक् बुद्धिका फल कहैहै;—

देहे यात्ममतिर्जंतोः सा वर्द्धयति संस्थितिम् ।
आत्मन्यात्ममतिर्या सा सद्यो नयति निर्वृतिम् ॥ ६६ ॥

अर्थ—जो देहविषै आपेकी बुद्धि है सो जीवकै संसार बढावै बहुरि जो आत्माविषै आत्मबुद्धि है सो शीघ्र मुक्ति कौं प्राप्त करैहैं ॥ ६६ ॥

यो जागर्त्यात्मिनः कार्ये कायकार्य स मुंचति ।
यः स्वपित्यात्मनः कार्ये कायकार्य करोति सः ॥ ६७ ॥

अर्थ—जो पुरुष आत्माके कार्यमै जागैहै अपने हितमै सावधानहै सो पुरुष शरीरके कार्यकौ त्यागैहै शरीरसंबंधी क्रिया मै उदासीन रहैहै, बहुरि जो आत्माके कार्य विषै सोवैहै आत्माके हित मै उद्यमी नांहीं सो शरीरसंबंधी क्रियाकौ करैहै ॥ ६७ ॥

ममेदमहमस्यास्मि स्वामी देहादिवस्तुनः ।
यावदेषा मतिर्बाह्ये तावद्ध्यानं कुतस्तनम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—ये शरीरादि परद्रव्य मेरा है अर मै शरीरादि परवस्तुका स्वामीहूं ऐसी बुद्धि जहां ताईं बाह्य परद्रव्यविषै है तहां ताईं ध्यान कहांतै होय ॥ ६८ ॥

नाहं कस्यापि मेकश्चिन्न भावोऽस्ति बहिस्तनः ।
यदैषा शेमुषी साधोः शुद्धध्यानं तदा मतम् ॥ ६९ ॥

अर्थ—मैं कोई बाह्य पदार्थका नाहीं अर बाह्यपदार्थ मेरा कोई नाहीं ऐसी यहु बुद्धि जब साधुकै होय तब शुद्धध्यान कह्याहै ॥ ६९ ॥

रागद्वेषमदक्रोधलोभमन्मथमत्सराः ।
न यस्य मानसे संति तस्य ध्यानेऽस्ति योग्यता ॥७०॥

अर्थ—जाके मन विषैं राग अरद्वेष अर मान अर क्रोध अर लोभ अर मत्सर अर काम अर ईर्षाभाव ये नाहीं ता पुरुषकै ध्यान विषैं योग्यताहै ॥ ७० ॥

[1]रागद्वेषादिभिः क्षिप्तं मनः स्थैर्यं प्रचाल्यते ।
कांचनस्येव काठिन्यं दीप्यमानैर्हुताशनैः ॥ ७१ ॥

अर्थ—रागद्वेषादि करि आक्षिप्त ऐसी मनकी स्थिरता चलायमान होजायहै जैसै देदीप्यमान अग्नि करि सुवर्णका काठिनपनां चलाय मान होजाय तेसै ।

भावार्थ—मन चाहे जेता स्थिर होय परंतु रागद्वेषादि करि चलायमान होही जायहै ॥ ७१ ॥

विद्यमाने कषायेऽस्ति मनसि स्थिरता कथम् ।
कल्पांतपवनैः स्थैर्यं तृणं कुत्र प्रपद्यते ॥ ७२ ॥

अर्थ—जैसै प्रलयकालकी पवनविषै तृणहै सो थिरताकौं कैसै प्राप्त होय तैसै कषाय भाव विद्यमान होत संतै मनकी थिरता कैसै होय ॥ ७२ ॥

अक्षय्यकेवलालोकविलोकितचराचरम् ।
अनंतवीर्यशर्माणममूर्त्तमनुपद्रवम् ॥ ७३ ॥

---

१ यह श्लोक वचनिकाकी प्रतिमैं नहीहै, संस्कृत प्रतिसे लिख कर वचनिका कर दी है।

निरस्तकर्मसंबंधं सूक्ष्मं नित्यं निरास्रवम् ।
ध्यायतः परमात्मानमात्मनः कर्मनिर्जरा ॥ ७४ ॥

अर्थ—अविनाशी जो केवल दर्शन केवल ज्ञान तिनकरि देखे वा जानेहै चराचर समस्त वस्तु जानै, वहुरि अनतहै स्वरूपतै न चलने रूप वीर्य अर निराकुलतारूप आनंद जाकै, अर वर्णादि राहित अमूर्तीकहै, अर रोगादि उपद्रव रहितहै, अर दूर कियाहै समस्त कर्मकासंबंध जानै, वहुरि जाकौ मनः पर्ययज्ञानी भी देख सकै नाहीं ऐसा सूक्ष्महै, नित्यहै, अर रागादिकके अभावतै निराश्रवहै ऐसा जो परमात्मा सिद्ध भगवान ताहि ध्यावता जो पुरुष ताकै आपके कर्मनिकी निर्जरा होय है ॥ ७३–७४ ॥

आत्मानमात्मना ध्यायन्नात्मा भवति निर्वृतः ।
घर्षपन्नात्मनाऽऽत्मानं पावकी भवति द्रुमः ॥ ७५ ॥

अर्थ—जैसै वृक्षहै सो वृक्षकरि घिस्या संता अग्निके भावकौ प्राप्त होयहै तैसै आत्माहै सो आपकरि आपकौ ध्यावता संता सुखी होयहै, सिद्ध स्वरूप होयहै ॥ ७५ ॥

न यो विविक्तमात्मानं देहादिभ्यो विलोकते ।
स मज्जति भवांभोधौ लिंगस्थोऽपि दुरुत्तरे ॥ ७६ ॥

अर्थ—जो पुरुष देहादि परद्रव्यनितै आपकौ न्यारा नाहीं देखैहै नाहीं श्रद्धान करै है सो पुरुष मुनि श्रावके बाह्य लिंगमै तिष्ठया भी दुस्तर संसार समुद्र विषै डूबै है, द्रव्यलिंगी मुनिश्रावक भी संसारी ही रहैहै तव और जीवनिकी कहा कथा है ॥ ७६ ॥

सविज्ञानमविज्ञानं विनश्वरमनश्वरम् ।
सदानात्मीयमात्मीयं सुखदं दुःखकारणम् ॥ ७७ ॥

अनेकमेकमंगादि मन्यमानो निरस्तधीः।
जन्ममृत्युजरावर्त्ते वंभ्रमीति भवोदधौ ॥ ७८ ॥

अर्थ—जो अज्ञानी पुरुष शरीरादि जे अचेतन पदार्थ तिनकौ चेतन मानता अर विनाशीककौ अविनाशी मानता अर सदा आपका नाहीं ताकौ आपका मानता अर दुःखका कारण ताकौ सुखदायी मानता अर एक नाहीं ताकौ एक मानता सो जीव संसारसमुद्रविषैं अतिशयकरि भ्रमैहै कैसाहै संसारसमुद्र जन्म मरण जरारूप हैं भौरे जा विषै ॥ ७७-७८ ॥

आत्मनो देहतोऽन्यत्वं चिंतनीयं मनीषिणा।
शरीरभारमोक्षाय सायकस्येव कोशतः ॥ ७९ ॥

अर्थ—जैसै तरकशतै तीरकौ न्यारा देखिए तैसै बुद्धिवान पुरुषकरि शरीरका भार त्यागनेके अर्थि मोक्ष होनेके अर्थि शरीरतैं आत्माका भिन्नपना चितवना योग्यहै ॥ ७९ ॥

या देहात्मैकताबुद्धिः सा मज्जयति संसृतौ।
सा प्रापयति निर्वाणं या देहात्मविभेदधीः ॥ ८० ॥

अर्थ—जो देहमै अर आत्मामै एकताकी बुद्धिहै सो संसारमैं डुबोवैहै अर जो शरीरकी अर आत्माकी भिन्नबुद्धिहै सो मोक्षकौ प्राप्त करैहै ॥ ८० ॥

यः शरीरात्मनोरैक्यं सर्वथा प्रतिपद्यते।
पृथक्त्क शेमुषी तस्य गूथमाणिक्ययोः कथम् ॥ ८१ ॥

अर्थ—जो देह अर आत्मा विषै सर्वथा एकपना मानैहै ताकै विष्टा अर माणिक्यरत्नविषै भिन्नपनेकी बुद्धि कैसै होय।

भावार्थ—आत्मा तौ रत्नसमान पवित्रहै अर देह विष्टासमान अपवित्रहै सो कारणवश विष्टामै तिष्ठता जो रत्न ताहि जैसैं मूर्ख एक मानै

तैसैं कर्मोदयके वश शरीरमैं तिष्ठता जो आत्मा ताहि मिथ्यादृष्टी एक मानैहै ऐसा जानना ॥ ८१ ॥

देहचेतनयोर्भेदो भिन्नज्ञानोपलब्धितः।
सर्वदा विदुषा ज्ञेयश्चक्षुः घ्राणार्थयोरिव ॥ ८२ ॥

अर्थ—ज्ञानवान करि देहका अर चेतनका भेद जानना योग्यहै जातै भिन्न ज्ञानकरि जाननेमै आवैहै जैसै नेत्र इंद्रिय अर नासिका इंद्रियके विषय जे रूप गंध ते भिन्नज्ञानकरि जाननेमै आवैहै तातै भिन्नहीहै।

भावार्थ—देहतौ इंद्रियज्ञानकरि दीसैहै अर आत्मा स्वसंवेदनकरि दीसैहै, इंद्रियज्ञानकरि आत्मा न दीसैहै अर स्वसंवेदनमै शरीर न आवै है, ऐसै न्यारे ज्ञान करि जाने जायहैं तातै शरीर अर आत्मा भिन्नहै; जैसै रूप नेत्र करि जान्या जायहै गंध नासिकाकरि जानिए है, रूप नासिकाकरि न जानिएहै अर गंध नेत्रकरि न जानिएहै; तातैं गंध रूप भिन्न भिन्नहै ऐसा अनुमान दिखाया है ॥ ८२ ॥

न यस्य हानितो हानिर्न वृद्धिर्वृद्धितो भवेत्।
जीवस्य सह देहेन तेनैकत्वं कुतस्तनम् ॥ ८३ ॥

अर्थ—जा शरीरकी हानितै जीवकै हानि नाहीं अर जाशरीरकी वृद्धितै जीवकी वृद्धि नाहीं होयहै, तात जीवकै देहके साथ एकपना काहेका ? ॥ ८३ ॥

तत्वतः सह देहेन यस्य नानात्वमात्मनः।
किं देहयोगजैस्तस्य सहैकत्वं सुतादिभिः ॥ ८४ ॥

अर्थ—परमार्थतै जिस आत्माकै देहके साथ भिन्नपनाहै ताके देहके संयोगतै उपजे जे पुत्रादिक तिनकरि एकपना कैसै होय ॥ ८४ ॥

ममत्वधिषणा येषां पुत्रमित्रादिगोचरा।
साऽऽत्मरूपपरिच्छेदछेदिनी मोहकल्पिता ॥ ८५ ॥

अर्थ—जिनकै पुत्र मित्रादिविपै जो ये मेर है ऐसी ममत्वबुद्धिहै तिनके ऐसी बुद्धि आत्मज्ञानकी नाश करनेवाली मोहकरि भई ।

भावार्थ—मिथ्यात्वके उदयकरि कल्पना मात्रहै सत्यार्थ नाहीं ॥

पत्तनं काननं सौधमेषा नात्मधियांमतिः ।
निवासो दृष्टतत्वानामात्मै वास्त्यक्षयोऽमलः ॥ ८६ ॥

अर्थ—मै नगरमै बसूं हूं बनमै बसूं हूं महलमै बसूं हूं ऐसी यह्नु बुद्धि आत्मज्ञानरहित मिथ्यादृष्टीनिकै होयहै, बहुरि देख्याहै तत्व जिननैं ऐसे सम्यग्दृष्टीनिके अविनाशी, नित्य, निर्मल ऐसा जो आत्मा सो ही निवास है ॥ ८६ ॥

शुद्धस्य जीवस्य निरस्तमूर्त्तेः
सर्वे विकाराः परकर्मजन्याः ।
मेघादिजन्या इव तिग्मरश्मे-
र्विनश्वराः संति विभास्वरस्य ॥ ८७ ॥

अर्थ—अमूर्त्तीक जो शुद्ध आत्मा ताकै समस्त विकार हैं ते कर्मोदयतै उपजैहै,

भावार्थ—द्रव्यदृष्टि करि देखिए तौ विकार कर्मजनित है किछू आत्माके स्वभाव नाहीं; जैसै देदीप्यमान जो सूर्य ताके विनाशीक जे विकार (कहूं थोडा प्रकाश होना कहूं बहुत प्रकाश होना इत्यादिक) वादला आदिके निमित्तसै होयहै, स्वभावजनित नाहीं ॥ ८७ ॥

दृष्टात्मतत्वो द्रविणादिलक्ष्मीं
न मन्यते कर्मभवां स्वकीयाम् ।
विपक्षलक्ष्मीं भुवने विवेकी
प्रपद्यते चेतसि कः स्वकीयाम् ॥ ८८ ॥

अर्थ—देख्याहै आत्माका स्वरूप जानै ऐसा पुरुषहै सो कर्मोदय-करि उपजी जो धनधान्यादिकी लक्ष्मी ताहि आपकी न मानै है, लोकविषै ऐसा कौन विवेकीहै जो शत्रुकी लक्ष्मीकौ चित्तविषै आपकी मानै ॥ ८८ ॥

ज्ञानदर्शनमयं निरामयं
मृत्युसंभवविकारवर्जितम् ।
आमनंति सुधियोऽत्र चेतनं
सूक्ष्ममव्ययमपास्तकल्मषम् ॥ ८९ ॥

अर्थ—लोकविषै पंडितहैं ते आत्माकौ ऐसा मानै है;—आत्मज्ञान-दर्शनमयीहै अर रोगरहितहै अर मरण उपजने आदि विकाररहितहै अर नष्टभयाहै पाप जाका ऐसा निर्मल है अविनाशीहै सूक्ष्महै ॥ ८९ ॥

विग्रहं कृमिनिकायसंकुलं
दुःखदं हृदि विचिंतयंति ये ।
गुप्तिवद्धमिव ते सचेतनं
मोचयंति तनुयंत्रमंत्रितम् ॥ ९० ॥

अर्थ—कीडानिके समूहकरि भरया दुःखदायी ऐसा जो शरीर ताहि हृदयविषै जे पुरुष भिन्न विचारैहै ते पुरुष शरीर रूप पचकरि वंध्या ऐसा जो आत्मा ताका मानौ गुप्तिवधन खोलैहै ।

भावार्थ—जे शरीर अर आत्माकौ भिन्न भावैहै तिनकै कर्मवधकी निर्जरा होयहै ॥ ९० ॥

स्थित्वा प्रदेशे विगतोपसर्गे
पर्यंकवंधस्थितपाणिपद्मः ।
नासाग्र संस्थापित दृष्टिपातो
मंदीकृतोच्छ्वासविवृद्धवेगः ॥ ९१ ॥

विधाय वश्यं चपल स्वभावं
मनोमनीषी विजिताक्षवृत्तिः ।
विमुक्तये ध्यायति ध्वस्तदोषं
विविक्तमात्मानमनन्यचित्तः ॥ ९२ ॥

अर्थ—नाहीं अन्य वस्तुविषै चित्त जाका ऐसा ज्ञानी पुरुष मुक्तिके अर्थि रागादिदोषरहित समस्त परद्रव्यनितै भिन्न जो आत्मा ताहि ध्यावैहै कैसाहै सो पुरुष दंशमशकादिकी बाधारहित क्षेत्रविषै तिष्ठ करि पर्यंकासनविषै धरेहैं हस्तकमल जानै बहुरि नासिकाके अग्रविषै थाप्याहै दृष्टिका पडना जानै बहुरि वृद्धिकौ प्राप्त भया ऐसा श्वासोच्छ्वासका वेग सो मंद कियाहै बहुरि चंचलहै स्वभाव जाका ऐसा जो मन ताहि वस करिकै जीतीहै इंद्रियनिकी परणति जानैं ऐसा पुरुष आत्माकौ ध्यावैहै ॥ ९१–९२ ॥

अभ्यस्यतो ध्यानमनन्यवृत्ते-
रित्थं विधानेन निरंतरायम् ।
व्यपैति पापं भवकोटिबद्धं
महाशमस्येव कषायजालम् ॥ ९३ ॥

अर्थ—या प्रकार पूर्वोक्त विधान करि अंतरायरहित निरंतर ध्यानकौ अभ्यास करता अर नाहींहै परपरणति जाकै ऐसा जो पुरुष ताकै कोटि भवकरि बाध्या जो पाप सो नाशकौं प्राप्त होयहै, जैसै उपशमभावसहित पुरुषकै कषायनिका समूह नाश होय तैसै ॥ ९३ ॥

ध्यानं पटिष्ठेन विधीयमानं
कर्माणि भस्मीकुरुते विशुद्धम् ।
किं प्रेर्यमाणाः पवनेन नाग्नि-
श्चितानि सद्योदहतींधनानि ॥ ९४ ॥

अर्थ—ज्ञानी पुरुषकरि करया भया निर्मल ध्यानहै सो कर्मनिकौ भस्म करैहै जैसै पवनकरि प्रेरयाभया अग्निहै सो संचयरूप जे ईंधन तिनहि शीघ्रकहा नाहीं दग्ध करैहै, करैहीहै ॥ ९४ ॥

त्यागेन हीनस्य कुतोऽस्ति कीर्त्तिः
सत्येन हीनस्य कुतोऽस्ति पूजा ।
न्यायेन हीनस्य कुतोऽस्ति लक्ष्मी
ध्यानेन हीनस्य कुतोऽस्ति सिद्धिः ॥ ९५ ॥

अर्थ—दानकरि हीन जो पुरुष ताकी कीर्ति कैसैं होय, अर सत्य करि हीन पुरुषकी पूजा कैसै होय, अर न्यायकरि हीन पुरुषकै लक्ष्मीं कैसै होय, अर ध्यान करि हीन जो पुरुष ताकै सिद्धि जो मोक्ष सो कैसै होय ॥ ९५ ॥

तपांसि रौद्राण्यनिशं विधत्तां
शास्त्राण्यधीतामखिलानि नित्यम् ।
धत्तां चरित्राणि निरस्ततंद्रो
न सिध्यति ध्यानमृते तथाऽपि ॥ ९६ ॥

अर्थ—घोर तपनिकौ निरंतर धारैहै तो धारो, बहुरि समस्त शास्त्रनिकौ पढैहै तो पढो, आलस्य रहित चारित्रनिकौ आचैरहै तो आचरो, तौ भी ध्यान विना सिद्धि न पावैहै। सर्व धर्मके अंगनिमैं ध्यान मुख्यहै ॥ ९६ ॥

ध्यानं यदह्नाय ददाति सिद्धिं
न तस्य खेदः परमर्शदाने ।
क्षयानलं हंति यदभ्रवृंदं
न तस्य खेदः परवह्निघाते ॥ ९७ ॥

अर्थ—जो ध्यान शीघ्रही सिद्धपदकौं देयहै ता ध्यानकैं और अहमिंद्रादि पदके देनेमै खेद नाहीं, जैसै जो मेघका समूह प्रलयकालकी अग्निका नाश करै ताकै और अग्नि वुझायवेविषैं खेद नाहीं ॥ ९७ ॥

तपोऽतरानंतरभेदभिन्ने
तपोविधाने द्विविधे कदाचित् ।
समस्तकर्मक्षपणे समर्थं
ध्यानेन शुद्धेन समं न दृष्टम् ॥ ९८ ॥

अर्थ—अंतरंग वहिरंग भेद करि भिन्न जो दोय प्रकार तपका विधान ता विषै निर्मल ध्यान समान सकल कर्मनिके नाश करनेमै समर्थ और तप न देख्या।

भावार्थ—और तपतो ध्यानके साधनहै अर ध्यान मोक्षका साधन है, तातै ध्यान सबनिमै मुख्यहै ॥ ९८ ॥

ध्यानस्य इ ति फलं विशालं
मुमुक्षुणाऽऽलस्यमपास्य कार्यम् ।
कार्ये प्रमाद्यंति न शक्तिमंतो
विलोकमानाः फलभूरिलाभम् ॥ ९९ ॥

अर्थ—या प्रकार ध्यानका बडा फल देखिकै मुक्तिका वांछक जो पुरुष ता करि आलस्यकौ छोडिकै ध्यान करना योग्य है, जातै अधिक फलरूप लाभकौं देखते जे सामर्थ्यवान पुरुषहै ते कार्यविषै आलस्य नाहीं करैहैं ॥ ९९ ॥

तपोविधानैर्वहुजन्मलक्षै-
र्यो दह्यते संचितकर्मराशिः ।
क्षणेन स ध्यानहुताशनेन
प्रवर्त्तमानेन विनिर्मलेन ॥ १०० ॥

अर्थ—अनेक लाख जन्मनिमै उपवासादि तपनि करि जो संचयरूप कर्मनिका समूह नाश कीजिए सो कर्मनिका समूह वर्त्त्या जो निर्मल ध्यानरूप अग्नि ता करि क्षणमात्रमै दग्ध कीजिए है ॥ १०० ॥

निर्वाणहेतोर्भवपातभीतै-
ध्याने प्रयत्नः परमो विधेयः।
यियासुभिर्मुक्तिपुरीमबाधा-
मुपायहीना न हि साध्यसिद्धिः ॥ १०१ ॥

अर्थ—संसारमै पडनेतै भयभीत अर बाधारहित अर मुक्तिपुरीके जानेके इच्छुक ऐसे जे पुरुष तिनकरि मोक्षके अर्थि ध्यान विषै उद्यम करना योग्य है, जातै उपाय विना कार्यकी सिद्धि नाहीं मोक्षका उपाय ध्यानहीहै ॥ १०१ ॥

देहात्मनोरात्मवता वियोगो
मनः स्थिरीकृत्य तथा विचिंत्यः।
हेतुर्भवानर्थ परंपरायाः
स्वप्नेऽपि योगो न यथाऽस्ति भूयः ॥ १०२ ॥

अर्थ—आत्मज्ञानी पुरुपकरि चित्तकौ थिर करकै देहका अर आत्माका वियोग कहिये भिन्न पना तैसै चितवना योग्यहै जैसै संसार दुःखकी परंपराका कारण जो देहका संयोग सो स्वप्न विषैं भी फेर न होय ॥ १०२ ॥

निरस्तसर्वेन्द्रियकार्यजातो
यो देहकार्यं न करोति किंचित्।
स्वात्मीय कार्योद्यतचित्तवृत्तिः
स ध्यानकार्यं विदधाति धन्यः ॥ १०३ ॥

अर्थ—नाश कियाहै स्पर्शनादि सर्व इंद्रियनिके कार्यनिका समूह जानै,

भावार्थ—जानै स्पर्शादि विषयनिमै इंद्रियनिका रागसहित परिणमन रोक्या है, बहुरि अपने आत्माके कार्यविषै उद्यम सहितहै चित्तकी परणति जाकी ऐसा जो धन्य पुरुषहै सो ध्यानरूप कार्यकौ करै है ॥ १०३ ॥

यद्धिंडमानं जगदंतराले
धर्त्तुं न शक्यं मनुजामरेंद्रैः ।
तन्मानसं यो विद्धाति वश्यं
ध्यानं स धीरो विद्धात्यवश्यम् ॥ १०४ ॥

अर्थ—जो जगतविषै हींडता डोलता नरेन्द्र देवेंद्रनिकरि न रोकने योग्य ऐसा जो मन ताहि वस करैहै सो धीर पुरुष निश्चयसेती ध्यानकौ करैहै ।

भावार्थ—जाके वशीभूत मन है सो ही ध्यान करनेकौं समर्थ है ॥ १०४ ॥

वाणैः समं पंचभिरुग्रवेगै-
र्विद्धस्त्रिलोकस्थितजीववर्गः ।
न मन्मथस्तिष्ठति यस्य चित्ते
विनिश्चलस्तिष्ठति तस्य योगः ॥ १०५ ॥

अर्थ—तीन लोकमै तिष्ठया जो जीवनिका समूह सो जानै उग्रहै वेग जिनका ऐसे जे पंच वाण तिनकरि एकै काल वेध्या ऐसा जो काम सो जाके चित्तत्रिषै न तिष्ठैहै ताकै ध्यान निश्चल तिष्ठैहै ॥ १०५

न रोषो न तोषो न मोषो न दोषो
न कामो न कंपो न दंभो न लोभः ।

न मानो न माया न खेदो न मोहः
यदीयेऽस्ति चित्ते तदीयेऽस्ति योगः ॥ १०६ ॥

अर्थ—जा पुरुषके चित्तमैं क्रोध नाहीं राग नाहीं चौरी नाहीं अन्यायादिदोष नाहीं काम नाहीं भय नाही दंभ नाही लोभ नाहीं मान नाहीं माया नाहीं खेद नाहीं मोह नाहीं ता पुरुषकै ध्यान होयहै, जाकै रागादिविकार है ताकै ध्यान न होय है ॥ १०६ ॥

प्रवर्द्धमानोद्धतसेवनायां
जीवस्य गुप्ताविव मन्यते यः ।
शरीरकुट्यां वसतिं महात्मा
हानाय तस्या यतते स शीघ्रम् ॥ १०७ ॥

अर्थ—वर्द्धमानहै तीव्र दुःखरूप परणति जा विषै ऐसा जो शरीररूप कुट्टी ताविषै वंदीखानेकी वसती समान वसतीकौ जो मानैहै सो महात्मा तिस शरीरकुट्टीके नाशके अर्थि शीघ्रही यत्न करैहै, मोक्ष होनेका उपाय करैहै ऐसा जानना ॥ १०७ ॥

समाधिविध्वंसविधौ पटिष्ठं
न जातु लोकव्यवहारपाशम् ।
करोति यो निस्पृहचित्तवृत्तिः
प्रवर्त्तते ध्यानममुष्य शुद्धम् ॥ १०८ ॥

अर्थ—जो पुरुष एकाग्रचित्तके नाश करनेमैं प्रवीण जो निंद्य लोकव्यवहार ताहि कदाचित् नाहीं करैहै अर वांछारहित है चित्तकी परणति जाकी ऐसे पुरुषके निर्मल ध्यान प्रवर्त्तै है ॥ १०८ ॥

विधीयते ध्यानमवेक्षमाणै-
र्यद्भूतबोधैरिह लोककार्यम् ।

रौद्रं तदार्त्तं च वदंति संतः
कर्मद्रुमच्छेदनबद्धकक्षाः ॥ १०९ ॥

अर्थ—जो इस लोकसंबंधी कार्यकौं वांछते जे अज्ञानी पुरुष तिन करि ध्यान करिएहै ता ध्यानकौं संतपुरुष रौद्र वा आर्त्त कहैहै, कैसेहै संत पुरुष कर्मवृक्षके छेदनेकौ वांधीहै कमर जिननै ॥ १०९॥

सांसारिकं सौख्यमवाप्तुकामै-
र्ध्यानं विधेयं न विमोक्षकारि।
न कर्षणं सस्यविधायि लोके
पलाललाभाय करोति कोऽपि ॥ ११० ॥

अर्थ—मोक्षका कर्त्ता जो ध्यान सो संसारके सुखकी वांछा करि करना योग्य नाहीं, जातै लोकमै धान्यकी उपजावनेवाली जो खेती सो पलालके लाभके आर्थ कोई भी करै नाहीं। धान्यके आर्थ जो खेती करैगा ताकै पलाल तौ स्वयमेव ही होयगा। तसैं मोक्षके आर्थ जो ध्यान करैहै ताकै संसारसुखतौ यावत् शुभरागहै तावत् स्वयमेव होयहै, बहुरि विषयसुखकी वांछा करै तौ उलटा रौद्रध्यान होय तातै संसारसुखकी वांछासहित ध्यान करना युक्त नाहीं ॥ ११० ॥

अभ्यस्यमानं बहुधा स्थिरत्वं
यथैति दुर्बोधमपीह शास्त्रम्।
नूनं तथा ध्यानमपीति मत्वा
ध्यानं सदाऽभ्यस्यतु मोक्तुकामः ॥ १११ ॥

अर्थ—जैसै दुःखतैं है जानना जाका ऐसा कठिन शास्त्रभी बहुत अभ्यास किया भया स्थिरताकौ प्राप्त होयहै तैसै ध्यानाभ्यास भी किया हुआ मोक्षकौ प्राप्त करैहै, तातैं मुक्त होनेका इच्छुक पुरुष निश्चयतैं ध्यानाभ्यास करो ॥ १११ ॥

अवाप्य मानुष्यमिदं सुदुर्लभं
करोति यो ध्यानमनन्यमानसः।
भनक्ति संसार दुरंतपंजरं
स्फुटं स सद्यो गुरु दुःखमंदिरम् ॥ ११२ ॥

अर्थ—जो यहु दुलभ मनुष्यपनेकौ पायकरि नाहीं है अन्यवस्तुविषैं मन जाका ऐसा ध्यान करैहै सो पुरुष दूर है अंत जाका ऐसा जो संसाररूपी पींजरा ताकौ प्रगटपने भेदैहै, कैसाहै संसाररूपी पींजरा वड़े दुःखनिके वसनेका घरहै ॥ ११२ ॥

यो जिनदृष्टं शमयमसहितं
ध्यानमपाकृतसकलविकारः।
ध्यायति धन्यो मुनिजनमहितं
चित्तनिवेशितपरमविचारः ॥ ११३ ॥

अर्थ—जो पुरुष जिनराजकरि कह्या जो कषायनिके अभावरूप शमभाव अर जन्मपर्यंत पापक्रियाका त्यागरूप यमभाव तिनकरि सहित जो ध्यान ताहि ध्यावैहै सो पुरुष धन्यहै, कैसाहै ध्यान मुनिजननिकरि पूजितहै, वहुरि कैसाहै सो ध्यानी पुरुष दूर कियेहै रागादि सकल विकार जानैं, वहुरि चित्तविषै निवेशित कहिए उपज्याहै परमविचार कहिए आत्माका विचार जाकै ऐसाहै ॥ ११३ ॥

नाकिनिकायस्तुतपदकमलो
दीर्णदुरुत्तरभवभयदुःखाम्।
याति स भव्योऽमितगतिरनघां
मुक्तिमनश्वरनिरुपमसौख्याम् ॥ ११४ ॥

अर्थ—सो पूर्वोक्त ध्यान करनेवाला भव्यपुरुष अविनाशा अर अनुपमहै सुख जाविषै ऐसी जो निर्मल मुक्ति अवस्था ताकौ प्राप्त होयहै,

कैसीहै मुक्ति अवस्था विदारेहैं नाशकियेहै दुस्तर संसारके भय दुःख जानै, बहुरि कैसाहै सो पुरुष देवनिके समूहनि करि स्तुतहै चरणकमल जाके बहुरि अमर्यादरूपहै ज्ञान जाका।

भावार्थ—ऐसैं ध्यानका फल मुक्ति अवस्था कही ॥ ११४ ॥

सवैया तेईसा।

ध्यानस्वरूप कह्यो जिनराज व्रतादिसमाजसमेत विचारै,
चित्त वसै परमारथमें सब रागविरोध विकार विडारै।
सो सुरपूजितपादसरोज अनंतगुणातम रूपनिहारै,
मत्त रहै सुखवारिधमें नहिं जन्म भवावलिमें फिर धारै॥

इत्युपासकाचारे पंचदश परिच्छेदः।

ऐसै श्री अमितगति आचार्यविरचित श्रावकाचारविषै पंद्रहमां परिच्छेद समाप्त भया।

ग्रंथकर्त्तुः प्रशस्तिः ।

अत्र आचार्य अपने गुरुकी परिपाटी कहैहै;—

> अभूत्समो यस्य न तेजसेनः
> स शुद्धबोधोऽजनि देवसेनः ।
> मुनीश्वरो निर्जितकर्मसेनः
> पादारविंदप्रणतेंद्रसेनः ॥ १ ॥

अर्थ—निर्मल हैं ज्ञान जाका ऐसा सो देवसेन नामा आचार्य मुनि-नका ईश्वर प्रगट होता भया, तेज करि सूर्य जाके समान न होता भया, कैसाहै सो आचार्य जीतीहै कामकी सेना जानै, बहुरि चरणक-मलनिविषै नम्रीभूत भएहैं इंद्रनिकी सेना कहिए देवनिका समूह जाकै ऐसा है ॥ १ ॥

> दोषांधकारपरिमर्दनबद्धकक्षो
> भूतस्ततोऽमितगतिर्भुवनप्रकाशः ।
> तिग्मद्युतेरिव दिनः कमलावबोधी
> मार्गप्रबोधनपरो बुधपूजनीयः ॥ २ ॥

अर्थ—तिस देवसेन आचार्यका शिष्य लोककौ प्रकाश करनेवाला अमितगतिनामा आचार्य भया, कैसाहै सो मिथ्यात्वादिदोषरूपी अंध-कारके नाश करनेकौ बांधीहै कमर जानै, सो जैसै सूर्यतै कमलनिका प्रफुल्लित करनेवाला अर मार्गकौ प्रगट करनेमै तत्पर ऐसा पंडितनिकरि पूजनीक दिन प्रगटै तैसै देवसेन आचार्यके शिष्य अमितगति सो भी

कमला कहिए लक्ष्मी ताकौं प्रफुल्लित करनेवाला अर मोक्षमार्गका प्रगट करनेवाला अर पंडितनिकरि पूजनीक होता भया ॥ २ ॥

विद्वत्समूहार्चितचित्रशिष्यः
श्रीनेमिषेणोऽजनि तस्य शिष्यः ।
श्रीमाथुरानूकनभः शशांकः
सदा विधूताऽऽर्हततत्त्वशंकः ॥ ३ ॥

अर्थ—ता अमितगति मुनिका शिष्य श्री नेमिषेण आचार्य होता भया कैसाहै सो पंडितानिके समूहकरि पूजितहै अनेक शिष्य जाके बहुरि श्रीमाथुरसंप्रदायरूप आकाशविषैं प्रकाशकरनेतै चंद्रमा समानहै, बहुरि सदा नाश करीहै अर्हंतभाषित तत्त्वानि विषै शंका जानैं ॥ ३ ॥

माधवसेनोऽजनि महनीयः
संयतनाथो जगति जनीयः
जीवनराशेरिव मणिराशी
रम्यतमोऽतोऽखिलतिमिराशी ॥ ४ ॥

अर्थ—तिस नेमिसेनके पदविषै जगतविषैं पूज्य संयमीनका नाथ श्री माधवसेन आचार्य प्रगट होता भया, कैसा है सो संसारी जीवनिका हितकारीहै अर सुंदर रत्ननिकी राशि ज्यौं समस्त मिथ्याभावरूप अंधकारका नाश करनेवाला ऐसा माधवसेन आचार्य भया ॥ ४ ॥

विजितनाकिनिकायमवज्ञया
जयति यो मदनं पुरुविक्रमम् ।
त्यजति मां किमयं परनाशधी–
रिति कषायगणो विगतो यतः ॥ ५ ॥

अर्थ—जीत्याहै देवनिका समूह जानैं ऐसा महापराक्रमी जो काम ताहि तिरस्कारकरि जो जीतैहै सो यहु आचार्य मौकौं कैसै छोड़ैगा

मौकौं भी जीतैगा ऐसी विचारिकै जिस माधवसेन आचार्यतै कषाय-निका समूह भगिगया, कैसाहै कपायनिका समूह अन्य जीवनिके नाशवेकी है बुद्धि जाकै।

भावार्थ—कामविकार जाका नशिगया ताकै क्रोधादि कपाय भी नशि जायहैं परद्रव्यनिकी वांछासहित जीवहीकौं कपाय पीड़ै है; ऐसा जानना ॥ ५ ॥

तस्मादजायत नयादिव साधुवादः
शिष्टार्चितोऽमितगतिर्जगति प्रतीतः।
विज्ञातलौकिकहिताहितकृत्यवृत्ते-
राचार्यवर्यपदवीं दधतः पवित्राम् ॥ ६ ॥

अर्थ—जैसैं न्यायतै सत्य बोलना उपजैहै तैसै तिस माधवसेन आचार्यतैं शिष्यनिकरि पूजित लोकविपै प्रतीतिरूप श्रीअमितगति आचार्य होता भया, कैसाहै माधवसेन आचार्य जानी है लोकसंबंधी हिताहित कार्यकी प्रवृत्ति जानै, अर पवित्र श्रेष्ठ आचार्यकी पदवीकौ धारै है ॥ ६ ॥

अयं तडित्वानिव वर्षणं घनो
रजोपहारी धिपणापरिस्कृतः।
उपासकाचारमिमं महामनाः
परोपकाराय महोन्नतोऽकृत ॥ ७ ॥

अर्थ—यहु अमितगति आचार्य इस उपासकाचार शास्त्रकौ करता भया जैसै मेघ वर्षा करै, मेघ तौ विजलीसहितहै आचार्य बुद्धिकरि युक्तहै मेघ धूलकौ हरैहै आचार्य पापरजकौ हरैहै मेघ लोकके उपकार-कौ वरसैहै आचार्यने भी परोपकार हीकै अर्थ शास्त्र रच्याहै यहु आचार्य

भी ज्ञानादिगुणनिकरि ऊंचाहै, मेघ ऊंचाहै ऐसै मेघसमान उपर्युक्त आमितगतिसूरि यह शास्त्र रचते भए॥ ७॥

यदत्र सिद्धांतविरोधि भाषितं
विशोध्य सद्ग्राह्यमिमं मनीषिभिः।
पलालमत्यस्य न सारकांक्षिभिः
किमत्र शालिः परिगृह्यते जनैः॥ ८॥

अर्थ—इस शास्त्रविषै जो किछू सिद्धांतविरोध कह्या होय ताहि सोधिकै बुद्धिवाननिकरि यहु शुद्ध ग्रहण करना योग्यहै, जातै लोकविषै सादके वांछक जे पुरुष तिनकरि पलाल छोड़िकै कहा चांवल ग्रहण न कीजिएहै, कीजिएहीहै॥ ८॥

(काव्य)

यावत्तिष्ठति शासनं जिनपतेः पापापहारोद्यतं
यावद्ध्वंसयते हिमेतररुचिर्विश्वं तमः शार्वरम्।
यावद्धारयते महीध्रधरवचितं वातत्रयी विष्टपं
तावच्छास्त्रमिदं करोतु विदुषामभ्यस्यमानं शुदम्॥

अर्थ—पापके हरनैमे उद्यमी जो जिनराजका मत सो जहां ताईं तिष्ठैहै अर जहां ताईं सूर्य रात्रि संबंधी सकल अंधकारकौ हरैहै बहुरि जहां ताईं पर्वतनिकरि जड़ित जो लोक ताहि तीनौं वातवलय धारैहै तहांताईं यह श्रावकाचार शास्त्र अभ्यास किया संता ज्ञानीजीवनिकौं आनंद करहु; ऐसै आचार्यनै आशीर्वाद दियाहै॥ ९॥

इति ग्रंथकर्त्तुः प्रशास्तिः।

भाषाकारकी प्रशस्ति ।

राागादिक हानि जहां वर्त्तै वर्द्धमानरूप
तातैं ज्ञानजनित प्रमोद वढ़वारीहै ।
सहित प्रमाद त्रसहिंसा आदि पाप मैल
धोय धोय अधिक विशुद्धिता सम्हारीहै ॥
ऐसै दर्शनादि थान एकादश श्रावकके
तामैं एक भी जो नर धारै दृगधारी है ।
साधुपद चाह जाकै नांहीं उर भोगदाह
"भागचंद" ताकी वार वार वलिहारी है ॥ १ ॥

गोपाचलके निकट सिंधिया नृपति कटकवर,
जैनी जन वहु वसैं जहां जिनभक्तिभारभर ।
तिनमैं तेरहपंथ गोष्ठि राजत विशिष्ट अति
पार्श्वनाथजिनधाम रच्यो जिन शुभ उतंग अति ॥
तहँ देशवचनिकामय भली "भागचंद" रचना करिय ।
जयवंत होउ सतसंग यह जा प्रसाद वुधि विस्तरिय ॥ २ ॥

शब्द अर्थ जो न्यून तहं सोधहु सुधी सुजान ।
मोहि अल्पश्रुत जानिकैं हंसहु न सगुण पिछान ॥ ३ ॥

साधर्मिनकी प्रेरणा वा जिनश्रुत अनुराग ।
उभयहेतुवस मैं लिख्यो किमपि अर्थ हि त्याग ॥ ४ ॥

भजूं देव सर्वज्ञ अज्ञजनभ्रमतमनाशक,
ध्याऊं सिद्धसमूह ध्यान जिस स्वपरप्रकाशक।
आचारज मुनिराज तने पदवारिज वंदूं
उपाध्याय गुण गाय पापतरुमूल निकंदूं ॥
पुनि सर्व साधु यह लोकमैं तहँ नितप्रति चितवन करूं।
यह मंगल उत्तम शरण लखि बार बार जिन चित धरूं ॥ ५।
संवतसर उगणीससौ द्वादश ऊपरि धार।
अष्टाह्निक आषाढ़की पूर्ण वचनिका सार ॥ ६ ॥

इति श्री आचार्य अमितगतिकृत श्रावकाचारकी
वचनिका समाप्त भई।

* *